बालसेवा

कार्यक्रम

आगम

2015

भाग – 2

श्रीमद्भगवद्गीता

* संक्षिप्त परिचय व तत्व अनुसंधान *

बाल एवं युवा संस्करण

प्रस्तुति

2022

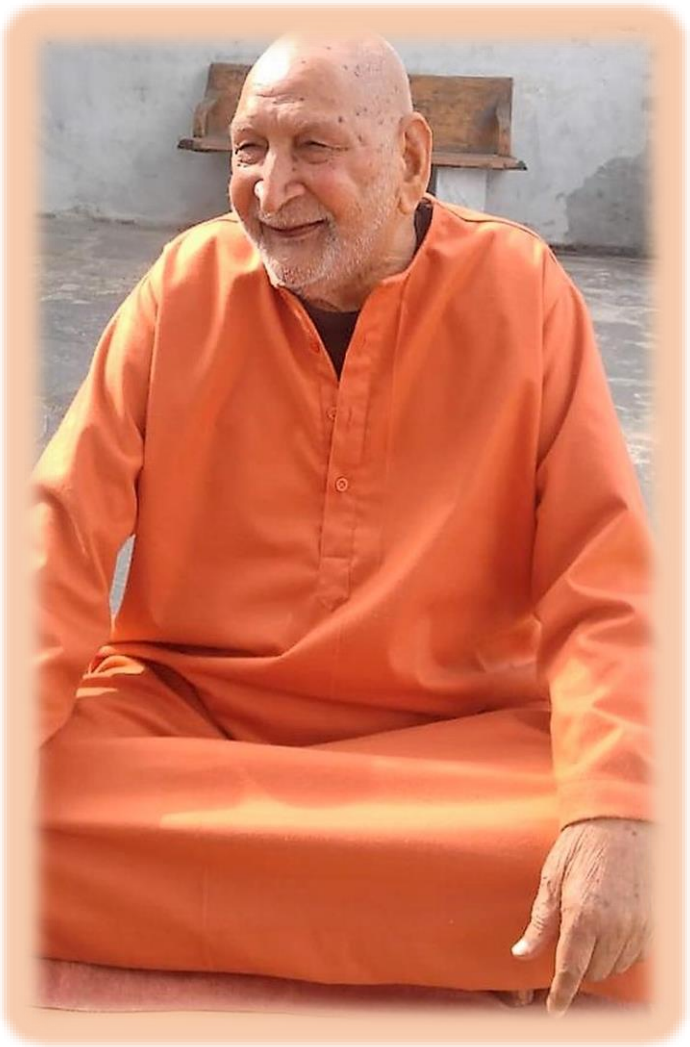

परम पूज्य गुरुदेव
परमहंस दण्डी स्वामी
श्रीमद्हंसानन्द सरस्वतीजी महाराज
के चरणों में सादर समर्पित

बालसेवा

कार्यक्रम

आ	ग	म	न
2	0	1	5

भाग – 2a

श्रीमद्भगवद्गीता

* संक्षिप्त परिचय *

बाल संस्करण

10 से 15 वर्ष

प्रस्तुति

2022

प्रस्तावना

परम पिता परमात्मा की प्रेरणा व अनुग्रह से बालसेवा 'भाग-२' का उद्देश्य बालक-बालिकाओं का श्रीमद्भगवद्गीता से परिचय कराना है। उनके जीवन में श्री गीताजी के अनुसंधान द्वारा उन्हें एक स्वस्थ्य, संयमित, सुव्यवस्थित, उद्यमी, निर्भीक, संवेदनशील, धार्मिक, सरल एवं शुद्ध अन्तःकरण का स्वामी-स्वामिनी बनाना है जिससे वह न केवल एक स्वस्थ्य एवं सुदृढ़ समाज व राष्ट्र के निर्माण में सहयोगी हों अपितु इस जीवन काल में ही आध्यात्मिक उत्सर्ग प्राप्त कर अपना कल्याण कर सकें व अति दुर्लभ इस मनुष्य शरीर प्राप्ति को सार्थक बनाएं।

डा० मुदिता–कमल

श्रीमद्भगवद्गीता

विषय सूची

* बाल संस्करण *

(सारांश के रूप में)

क्रम संख्या	विषय	कूट संकेत	पृष्ठ संख्या
1	Ch.01 – अर्जुनविषादयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.01	6
2	Ch.02 – सॉख्ययोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.02	7
3	Ch.03 – कर्मयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.03	9
4	Ch.04 – ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.04	11
5	Ch.05 – कर्मसंन्यासयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.05	13
6	Ch.06 – आत्मसंयमयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.06	15
7	Ch.07 – ज्ञानविज्ञानयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.07	17
8	Ch.08 – अक्षरब्रह्मयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.08	19
9	Ch.09 – राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.09	22
10	Ch.10 – विभूतियोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.10	25
11	Ch.11 – विश्वरूपदर्शनयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.11	29
12	Ch.12 – भक्तियोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.12	31
13	Ch.13 – क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.13	34
14	Ch.14 – गुणत्रयविभागयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.14	36
15	Ch.15 – पुरुषोत्तमयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.15	39
16	Ch.16 – दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.16	42
17	Ch.17 – श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.17	45
18	Ch.18 – मोक्षसन्न्यासयोगो नाम	BS-II-Summary - Ch.18	47

श्रीमद्भगवद्गीता

अर्जुनविषादयोगो नाम

प्रथमोऽध्याय:

(47 श्लोक)

यह गीता का प्रवेश द्वार है।

विषाद अथात् शोक, शोक का हेतु मोह तथा मोह का हेतु स्वयं के स्वरूप का अज्ञान है।

अज्ञान – स्वयं को आत्मा, द्रष्टा, साक्षी न जान कर यह देह-इन्द्रिय-मन-बुद्धि-प्राण जानना, स्वयं को BMI (Body-Mind-Intellect) जानना ही अज्ञान है।

मोह – 'मैं और मेरे, तू और तेरे' ऐसा भाव और स्वयं को शरीर जानकर इस शरीर में व इसके सम्बन्धियों में ममता होना अर्थात् *'अहं एषां मम एते'* बुद्धि से ग़लत निर्णय लेना मोह है।

मोह के लक्षण –

1. आँखों में अश्रु
2. शरीर में कंपन
3. अंग में शिथिलता
4. त्वचा का जलना
5. मुख सूखना
6. मन का भ्रमित होना
7. सिर चकराना, गिर जाना
8. सही निर्णय न होना

मोह का परिणाम –

- अपने कर्तव्य को ठीक ठीक न पहचानना
- कर्तव्य का परित्याग → जीवन में हताशा व शोक

विषाद कब योग बनता है – विषाद भी योग (परमात्मा से मिलने का साधन) बन जाता है यदि जीव को सद्गुरु मिल जाए और ईश्वर व सद्गुरु में शरणागति होवे - यही सीख है।

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन –

श्रीकृष्ण - 1- माधव 2- ऋषिकेश 3- अच्युत 4- केशव 5- कृष्ण 6- गोविन्द 7- मधुसूदन 8- जनार्दन 9- वार्ष्णेय

अर्जुन - 1- पाण्डव 2- धनंजय 3- गुडाकेश 4- पार्थ 5- कौन्तेय 6- अर्जुन

कुल श्लोक	धृतराष्ट्र	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
47	01	24	22	0

ओम् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

साँख्ययोगो नाम

द्वितीयोऽध्याय:
(72 श्लोक)

उपदेश का हेतु –

- शिष्य की शरणागति (V-07)

उपदेश का विषय –

- सांख्य बुद्धि
- योग बुद्धि
- स्थित प्रज्ञ
- संयम

1 सांख्य बुद्धि – आत्म-अनात्म विवेक – तीन दृष्टि

1. **आत्म दृष्टि** – तुम आत्मा हो। आत्मा अजर, अमर, नित्य, शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वरूप है। आत्मा न जन्मता है न मरता है अत: इस माया के बने शरीर की मृत्यु पर शोक मत करो।
2. **जीव दृष्टि** – यदि स्वयं को जीव मानकर शरीर संगी मानते हो कि यह जीवात्मा शरीर के साथ जन्मता मरता है तो भी शोक नहीं क्योंकि जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है एवं मरे हुए का जन्म निश्चित है अत: इस सिद्धान्त को जानकर शोक करना उचित नहीं।
3. **शरीर दृष्टि** – ये सब शरीर पंचमहाभूत - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश से बने हैं। ये जन्म से पहले अव्यक्त, मध्य में व्यक्त तथा मृत्यु पश्चात् फिर अव्यक्त अत: ऐसी स्थिति में शोक क्या करना? लौकिक दृष्टि – स्वधर्म की दृष्टि से भी अपना कर्तव्य कर्म करो।

सांख्य बुद्धि का फल – स्वयं को आत्मा जानकर इस संसार शोक सागर से मुक्ति

2 योग बुद्धि – गीता जी का सुदर्शन – निष्काम कर्म

द्वन्द्वों में सम रह कर अर्थात् सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय – इन छ: परिणामों में सम रह कर फलासक्ति व कर्मासक्ति का त्याग करके ईश्वर की प्रीति के लिये कर्म करना और अकर्मण्य न होना - यही योग बुद्धि है।

कर्म से पहले - छ: परिणामों में सम रह कर ईश्वर की प्रीति के लिये कर्म करें।

कर्म करते समय - दृष्टि कर्तव्य पर हो फल पर नहीं।

कर्म पश्चात् - फल में प्रसाद बुद्धि – पाप क्षयं, तितीक्षा, मंगल बुद्धि हो।

योग बुद्धि का फल –

- इस बुद्धि से किये गये कर्मों का नाश नहीं होता।
- प्रत्यवाय नहीं होता।
- ईश्वर द्वारा योग-क्षेम वहन तथा अन्त:करण की शुद्धि होती है।

3 स्थित प्रज्ञ

जिसकी प्रज्ञा 'मैं आत्मा ही ब्रह्म हूँ' इस रूप में स्थित हो गयी वह ज्ञानी ही स्थित प्रज्ञ है।

स्थित प्रज्ञ लक्षण –

- जिसकी कोई कामना नहीं – आत्मरति, आत्मतृप्त, आत्मसन्तुष्ट है।
- दु:ख से उद्विग्न नहीं व सुख बना रहे ऐसी कामना नहीं।
- राग, भय, क्रोध नहीं।
- शुभ-अशुभ प्राप्ति में न अभिनन्दन न द्वेष।

4 संयम उपनिषद्

- इन्द्रिय संयम – 'दम' - इन्द्रियों का सम्यक अनुशासन हो।
- मन संयम – 'शम' - मन को निषिद्ध क्षेत्र में न जाने दें, मन चुने हुए लक्ष्य में लगे।
- बुद्धि संयम – गुरु व शास्त्राज्ञा से जीवन चले, मन-मुखी न होकर गुरु-मुखी हो।

संयम का सुपरिणाम

- व्यक्ति अपनी ऊर्जा चुने हुए विषय, लक्ष्य प्राप्ति में लगाता है।
- मर्यादित एवं सुसंस्कृत व्यवहार होता है।
- प्राप्त प्रज्ञा की स्थिरता होती है।

संयम न करने का दुष्परिणाम –

विषय ध्यान → संग → काम → क्रोध → संमोह → स्मृति विभ्रम → बुद्धि नाश → प्रणश्यति (**पुरुष का नाश**)

अत: इन्द्रिय व मन के पूर्ण संयम से ही गुरु उपदेश पश्चात् श्र०म०नि० द्वारा **ब्रह्म प्रज्ञा** स्थिर होती है, संशय का नाश होता है व तत्काल **ब्राह्मी स्थिति** अर्थात् **'परम शान्ति'** प्राप्त होती है, और अन्तकाल में भी यदि ज्ञान हो जाये तो इस ब्राह्मी स्थिति में स्थित हो जाता है।। इति ।।

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन –

श्रीकृष्ण - 1- मधुसूदन 2- अरिसूदन 3- गोविन्द 4- ऋषिकेश 5- केशव

अर्जुन - 1- परन्तप 2- गुडाकेश 3- कौन्तेय 4- भारत 5- महाबाहो 6- पार्थ 7- कुरुनन्दन 8- अर्जुन 9- धनंजय

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
72	03	06	63

ओम् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

कर्मयोगो नाम

तृतीयोऽध्याय:

(43 श्लोक)

मुख्य विषय	प्रासंगिक विषय
• कर्मयोग	• यज्ञ कर्म • सृष्टि चक्र • लोकसंग्रह • आसक्ति-अनासक्ति • संयम उपनिषद्

अर्जुन का प्रश्न – ज्ञान (सॉख्य) अथवा कर्म (योग) दोनों में कौन श्रेष्ठ है?
भगवान् का उत्तर –

- जिनका अन्त:करण शुद्ध है वे कर्म से उपराम होकर ज्ञान में प्रवेश करते हैं → निवृत्ति मार्ग
- जिन्हें अन्त:करण शुद्ध करना है वे कर्मयोग करें → प्रवृत्ति मार्ग
  (कर्मयोग / निष्काम कर्म / यज्ञार्थ कर्म / भगवान् के लिये कर्म)

-1- कर्मयोग –

1. ईश्वर की प्रसन्नता हेतु – (अर्थात् ईश्वर के दिये दे०इ०म०बु० से, सर्व लोक हितार्थ तथा समष्टि की प्रसन्नता हेतु वर्णाश्रम-पदाधिकार के अनुसार किये गये कर्म)
2. फल की आसक्ति त्याग कर ।
3. कर्म की आसक्ति त्याग कर – (अर्थात् कर्तापन का अभिमान त्याग कर, यह जानकर कि ई०की प्रेरणा से, ई०के दिये साधनों से, ई०की बनाई सृष्टि में – मैं अपनी भूमिका निभा रहा हूँ, मैं ईश्वर का सेवक हूँ)
4. समाचर भाव से – (उत्साह से, भली प्रकार, मन लगाकर, ध्यान पूर्वक, शीघ्रतासे, शुद्धता से, न्याय से, बिना उलझे व बिना पक्षपात् के) करें।

-2- सृष्टि चक्र – सृष्टि में सब यज्ञ भावना से कर्म करते हैं :–

- पृथ्वी अन्न देती है, वरुण जल देते हैं, अग्निदेव–ऊष्मा, वायुदेव–स्वॉस, दिग्देव–आकाश में रहने का स्थान, सूर्यदेव–प्रकाश और चन्द्रमा–शीतलता व अन्न को पुष्टता देते हैं।
  अत: -
- पृथ्वी को सुगन्ध दो, जल को दूध दो व शुद्ध रखो, अग्नि को आरती दो, वायु को शुद्ध रखो, आकाश को घण्टा शंख का मधुर शब्द दो, सूर्य व चन्द्र को जल दो – यही यज्ञ है। तुम देवों को प्रणाम करो वे तुम्हारी इन्द्रियॉ, मन, बुद्धि, प्राण को शक्ति देंगे।

पंच यज्ञ – (गृहस्थ के लिये)

1. ब्रह्म यज्ञ – ईश्वर पूजा
2. देव यज्ञ – हवन व पंचमहाभूतों की पूजा
3. पितृ यज्ञ – पितरों को तर्पण
4. बलिवैश्वदेव यज्ञ – गाय, कौवा, चींटी, कुत्तों के लिये अन्न
5. अतिथि यज्ञ – ऋषि, माता, पिता, वृद्ध का सम्मान व उनकी आज्ञा में रहना।

कर्मयोग करने से लाभ	**कर्मयोग न करने से हानि**
• योग-क्षेम वहन	• न इस लोक में सुख
• चित्त शुद्धि	• न परलोक में सुख
• कर्म बन्धन (पाप-पुण्य) से मुक्ति	• संसार बन्धन

-3- **लोकसंग्रह** – 'उन्मार्ग निवृत्ति एवं सन्मार्ग प्रवृत्ति' - सही मार्ग पर चलाना

- ज्ञानी स्वभाव से लोकसंग्रह करता है।
- साधक चित्त शुद्धि के लिये लोकसंग्रह कर्म करता है।

-4- **आसक्ति का हेतु –** अज्ञानी स्वयं को कर्ता मानता है जब कि सर्व कर्म प्रकृति के बने BMI में होते हैं अत: कर्मों में आसक्त (Attached) होता है।

अनासक्ति का हेतु – तत्त्ववित्त ज्ञानी स्वयं को अकर्ता आत्मा जानता है व सर्व कर्म BMI में देखता है अत: कर्मों में अनासक्त (Non-attached) होता है।

-5- **संयम –**

- स्वधर्म करो – कर्तव्य परायण बनो - वर्णाश्रम धर्म का पालन करो - गुरु मुखी रहो।
- परधर्म नहीं करो – रुचि परायण नहीं बनो - मन्मुखी न बनो।

- इन्द्रिय-मन-बुद्धि (जो काम के रहने के स्थान हैं) उनका संयम करके काम का परित्याग करो।
- फिर आत्मज्ञान से काम रूपी शत्रु का नाश करो।

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन –

श्रीकृष्ण - 1-जनार्दन 2-केशव 3-वार्ष्णेय

अर्जुन - 1-अनघ 2-पार्थ 3-भारत 4-महाबाहो 5-कौन्तेय

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
43	0	03	40

ओम् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम

चतुर्थोऽध्याय:
(42 श्लोक)

मुख्य विषय	प्रासंगिक विषय
o ज्ञान से कर्म का संन्यास	1 - गुरु-शिष्य परम्परा 2 - अवतार वाद 3 - वर्णाश्रम धर्म 4 - यज्ञ प्रकरण 5 - गुरु प्रसक्ति 6 - ज्ञान प्रकरण

मुख्य विषय

*** ज्ञान से कर्म संन्यास –**

ऐसा जानना कि मैं आत्मा/ब्रह्म, द्रष्टा, साक्षी व अकर्म हूँ अर्थात् मुझमें कोई कर्म नहीं है परन्तु सारे कर्म प्रकृति के बने BMI (Body-Mind-Intellect) में हैं जैसे सही कर्म करना (**कर्म**), ग़लत कर्म करना (**विकर्म**) तथा कर्म न करना (**अकर्म/उपरामता**) है। ऐसा जानने से कर्म संन्यास होता है न कि कर्म के त्याग से। जैसे अग्नि लकड़ी के ढेर को जलाकर भस्म कर देती है वैसे ही ज्ञान की अग्नि सब कर्मों को जलाकर भस्म कर देती है।

प्रासंगिक विषय

-1- गुरु-शिष्य परम्परा – यह ज्ञान गुरु से ही प्राप्त किया जाता है

उदाहरण – कृष्ण → सूर्य → मनु → इक्ष्वाकु → वंश → अर्जुन

-2- अवतार वाद – ब्रह्म के 3 स्वरूप जानकर जन्म-मरण से मुक्त होते हैं।

1. निर्गुण-निराकार (चेतन रूप) – जिसका न जन्म हो न मृत्यु
2. सगुण-निराकार – 'ईश्वर' जिससे यह संसार उत्पन्न होता है, जिसमें रहता व लीन होता है।
3. सगुण-साकार – अवतार (उदा०-10 अवतार)

1. मत्स्य	4. नृसिंह	7. राम	10. कल्कि (जो कलयुग में आयेंगे)
2. कच्छप	5. वामन	8. बलराम	
3. वाराह	6. परशुराम	9. कृष्ण	

अवतार –

- धर्म की रक्षा व अधर्म का नाश करने आते हैं।
- पृथ्वी, गौ, ब्राह्मणों की रक्षा व असुरों को मारने आते हैं।

दिव्य सन्त – नित्यावतार होते हैं।

-3- वर्णाश्रम धर्म – 4 वर्ण, 4 आश्रम

वर्ण →	ब्राह्मण/सत्व प्रधान Thinkers	क्षत्रिय/रज-सत्व प्रधान Protectors	वैश्य/रज-तम प्रधान Entrepreneurs	शूद्र/तम प्रधान Working Class
आश्रम →	ब्रह्मचर्य Student	गृहस्थ Householder	वानप्रस्थ Seeker of knowledge	संन्यासी Detached, Renunciate

-4- यज्ञ प्रकरण –

- ब्रह्म यज्ञ – 'सृष्टि में सब ब्रह्म ही है' ऐसा जानकर जीवन व्यतीत करना।
- अन्य १२ यज्ञ

1. प्रतिदिन दिनचर्या का पालन – प्रात: जल्दी उठ कर, नहा कर दैनिक उपासना करना।
2. इन्द्रिय संयम (दम) तथा मन का संयम (शम)।
3. नियम पूर्वक पाठ्य क्रम के अनुसार पढ़ना।
4. भगवान् को अर्पण करके सम्यक् मात्रा में भोजन करना।
5. रात्रि में प्रार्थना करके समय से सोना।

-5- गुरु प्रसक्ति –

गुरु में ईश्वर बुद्धि रख कर श्रद्धा पूर्वक सत्संग सुनना और उनके आदेश का लगन व संयम से पालन करना – तब ज्ञान होता है।

-6- ज्ञान प्रकरण –

- पवित्र वस्तुएं – भगवान् का नाम, अग्नि, गंगाजल व तुलसीदल परन्तु इनमें ज्ञान सबसे पवित्र है।
- जानो कि मैं आत्मा ब्रह्म हूँ, सत् हूँ, मैं न जन्मता हूँ न मरता हूँ। मैं अकर्म हूँ तथा मेरा BMI असत् माया है यही जन्मता और मरता है तथा सभी कर्म इन दे०इ०म०बु०प्रा० (BMI) में हैं – ऐसा जानकर इस अशुभ संसार से मुक्त हो जाओ – यही मुक्ति है, परम-पद है, मोक्ष प्राप्ति है।। इति।।

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन –

श्रीकृष्ण - 0

अर्जुन - 1- परन्तप 2- अर्जुन 3- पार्थ 4- कुरुसत्तम 5- पाण्डव 6- धनंजय 7- भारत

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
42	0	01	41

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

कर्मसंन्यासयोगो नाम

पंचमोऽध्याय:
(29 श्लोक)

प्रेय मार्ग – सकाम कर्म व सकाम भक्ति → इससे संसार की प्राप्ति होती है
श्रेय मार्ग – निष्काम कर्म, निष्काम भक्ति व गुरु से ज्ञान प्राप्ति → इससे मोक्ष प्राप्ति

- **अर्जुन का प्रश्न** – मेरे लिये **कर्मयोग** अथवा **कर्मसंन्यास** दोनों में से कौन श्रेष्ठ है।

- **भगवान का उत्तर –** दोनों नि:श्रेयस देने वाले हैं परन्तु दोनों मे से कर्मयोग करने में सरल होने से श्रेयस्कर है।

अन्त:करण शुद्धि के २ साधन

1. कर्मयोग
2. कर्म संन्यास (विविदिशा संन्यास)

-1- कर्मयोगी –

- यह साधन प्रवृत्ति मार्गी के लिये है।
- कर्म करने व फल प्राप्ति में राग-द्वेष न हो। (स्वरूप)
- कर्तव्य बुद्धि से कर्म करें, प्रसाद बुद्धि से फल ग्रहण करें।
- ईश्वर समर्पित जीवन हो अर्थात् भगवान् की दी हुई दे०इ०म०बु०प्रा० से स्वधर्म पालन द्वारा विश्व विराट की सेवा।

-2- कर्म संन्यास/विविदिषा संन्यास –

- यह साधन निवृत्ति मार्गी के लिये है। (इसकी संसार में प्रवृत्ति नहीं है)
- यह गुरु की छत्र छाया में रह कर अनुशासन पूर्वक अन्त:करण शुद्धि करता है।
- उसका जीवन गुरु समर्पित है तथा यह जिज्ञासु है (भगवान को जानने की इच्छा वाला है)
- यह संसार के भय से भागने वालों का 'नाम मात्र' संन्यास नहीं है।

रूपक → देह = देवालय, आत्मा = शिव, बुद्धि = पार्वती, ५ ज्ञानेन्द्रियॉ व मन = षडानन्

सर्वकर्मसंन्यास – कर्मयोग से शुद्ध अन्त:करण का होकर, वैराग्य सम्पन्न होकर, शम साधना द्वारा संसार से ये उपराम हुआ है तथा श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरणागति लेकर ज्ञान प्राप्त करता है। श्रवण-मनन-निदि० से ज्ञान निष्ठा प्राप्त कर मोक्ष प्राप्ति होती है।

वह ये जानता है कि :—

आत्मा (शिव) तो असंग है। आत्मा अकर्ता-अभोक्ता चेतन तत्त्व है और वही स्वरूप मुझ जीव का है। 'मैं कुछ नहीं करता' अत: माया से उत्पन्न इस दे०इ०म०बु०प्रा० में जो भी कर्म होते हैं वो मुझ शिव का ही भजन-पूजन है।

(V 8 - 9) स्वयं को अकर्ता ब्रह्म जानता है - अब यह तत्त्ववित् कहलाता है, वह सब कर्म करते हुए मानता है कि मैं कुछ नहीं करता।

(V 13) यह संन्यासी जिसका अन्त:करण उसके वश में है, नवद्वार वाले शरीर में सुख पूर्वक बैठता है, न कुछ करता है न करवाता है।

दृष्टान्त – जिस प्रकार सोलह हज़ार आठ रानियों के पति होने पर भी भ०श्रीकृष्ण ने कहा कि यदि मैं अखण्ड ब्रह्मचारी हूँ तो? व भर पेट भोजन करने के बाद भी दुर्वासा ऋषि ने कहा कि यदि मैंने कुछ भी नहीं खाया हो तो? - यमुनाजी शान्त हो जायेंगी और ऐसा ही हुआ क्योंकि दोनों ही स्वयं को अकर्ता आत्मा ही जानते थे।

(V 18) तत्त्ववेत्ता ज्ञानी का लक्षण

- यह सभी प्राणियों में समदर्शन करता है अर्थात् ब्रह्म दर्शन करता है।
- सबके साथ समवर्तन नहीं करता अर्थात् समान व्यवहार नहीं करता।
- सबके साथ धर्म व मर्यादा पूर्वक व्यवहार करता है।

(V 19) यह स्थिर बुद्धि है – प्रिय को प्राप्त कर हर्षित नहीं होता व अप्रिय को प्राप्त होकर उद्विग्न नहीं होता।

(V 23) यह काम-क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को सहन करने में समर्थ है।

(V 29) ज्ञान का स्वरूप – भगवान् के तीनों स्वरूपों को जानना —
- निर्गुण-निराकार = ब्रह्म
- सगुण-निराकार = ईश्वर
- सगुण-साकार = अवतार

साधक की गति का क्रम

- निषिद्ध व सकाम कर्म का त्याग।
- प्रवृत्ति मार्गी के लिये कर्मयोग का पालन।
- निवृत्ति मार्गी के लिये उपरामता पूर्वक आत्म चिन्तन (ध्यान योग – Chapter-6)
- ज्ञान पश्चात् सर्वकर्मसंन्यास → मोक्ष रूप

।। इति ।।

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – कृष्ण

अर्जुन – 1- महाबाहो 2- कौन्तेय

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
29	0	01	28

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

आत्मसंयमयोगो नाम

षष्ठोऽध्याय:

(47 श्लोक)

आत्मसंयम योग / ध्यान योग / अभ्यास योग

यह सॉख्य योग में प्रवेश का अन्तरंग साधन है एवं आत्म चिन्तन स्वरूप है।

1 भगवान् कर्मयोगी को भी संन्यासी व योगी कहते हैं केवल अग्निरहित-अक्रिय संन्यासी को नहीं क्योंकि :—

- कर्मफल की आसक्ति का त्याग अत: **संन्यासी**
- फलासक्ति के त्याग से चित्त में शान्ति अत: **योगी**

2 यह कर्मयोगी (योगारुरुक्षु) ही अब ध्यान रूपी आत्मचिन्तन का अधिकारी (योगारूढ़) है।

3 स्वयं अपने दे०इ०म०बु०प्रा० का संयम करके अपने मित्र बनाकर अपना उद्धार करो, यही पुरुषार्थ है।

4 **युक्त के लक्षण** –

- जीते हुए शरीर इन्द्रिय मन वाला जितात्मन:, प्रशान्त मन, द्वन्द्वातीत को सब ओर आत्म रूप से परमात्मा प्राप्त है।
- सब पदार्थों में समान दृष्टि है जैसे मिट्टी, पत्थर, स्वर्ण। कोई पदार्थ तृप्ति का हेतु नहीं बस उपयोगिता बुद्धि है।
- सब प्रकार के सम्बन्धों जैसे सुहृद, मित्र, शत्रु, साधु, पापी आदि में समदृष्टि है – कौन? क्या? कैसे? क्यों? कर रहा है उसमें उदासीन है, सबको भगवान् की लीला देखता है।

5 **योगी से युक्त की यात्रा** –

- पवित्र देश में अकेले रह कर सम्यक आहार, विहार, निद्रा, जाग्रत काल हो। शरीर को आसन पर स्थिर कर, बाह्य विषयों का चिन्तन न करके नित्य कुछ काल के लिये आत्मचिन्तन करके अन्त:करण शुद्ध करें।
- इसकी रहनी आध्यात्म के अनुकूल हो – स्वाध्याय, भजन, चिन्तन।

6 **समाधिस्थ चित्त** –

- विषय चिन्तन से रहित आत्म चिन्तन से निष्कम्प प्रज्ञा का निर्माण होता है – स्वयं को आत्मा रूप से जानता है।
- इसे पाकर योगी बड़े से बड़े दु:ख से विचलित नहीं होता क्योंकि स्वरूप में स्थित है अत: अनाहत सुख प्राप्त।

7. **योग की परिभाषा** – गीताजी में दु:ख संयोग से वियोग ही योग है। अविद्या से दु:ख रूपी संसार से योग हुआ है अत: विद्या से उसका वियोग ही योग है।

8. **योगी की दृष्टि** –

a) सब भूतों में अपनी आत्मा को स्थित व आत्मा में सर्व भूतों को माया से अध्यस्थ देखता है।
b) सब भूतों में परमात्मा को व परमात्मा में सब भूतों को स्थित देखता है अत: दोनों एक दूसरे के लिये प्रत्यक्ष।
c) सर्व भूतों में परमात्मा को आत्मा रूप देखकर परमात्मा में ही स्थित है।

9. **योगी का व्यवहार** – वह योगी सर्वश्रेष्ठ है जो सबके सुख-दु:ख को अपने सुख-दु:ख के समान जानकर अहिंसक हुआ है।

10. **योगी की साधना** – 1- अभ्यास – निरन्तर दीर्घ काल तक आत्म-ब्रह्म चिन्तन
2- वैराग्य – संसार को अनित्य व दु:ख रूप जानकर

11. **योगी की गति** –

- **श्रद्धालु भोगी** – योगी जिसमें भोग की इच्छा थी मरने के पश्चात् पहले दीर्घ काल तक स्वर्गलोक में वास करता है फिर शुद्ध पवित्र धनवानों के घर में जन्म लेकर शीघ्र ही सकाम कर्मों को त्याग कर निष्काम कर्म करने लगता है।
- **वैरागी योगी** – जिस वैरागी योगी का ज्ञानसिद्धि से पहले ही देह त्याग हो जाता है वह तत्त्व ज्ञानी योगियों के घर में जन्म लेकर, तत्पर होकर प्रयास करके शीघ्र सिद्धि प्राप्त करता है।

12. **भगवान् का आदेश** –

- हे अर्जुन! तू योगी बन, भोगी न बन।
- **युक्ततम् योगी** – जो मुझ ईश्वर में मन लगाकर श्रद्धा व प्रेमपूर्वक मेरा भजन करता है वह श्रेष्ठतम् योगी है।। इति ।।

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – 1- मधुसूदन 2- कृष्ण 3- महाबाहो

अर्जुन – 1- पाण्डव 2- अर्जुन 3- महाबाहो 4- कौन्तेय 5- पार्थ 6- कुरुनन्दन

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
47	0	05	42

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

ज्ञानविज्ञानयोगो नाम

सप्तमोऽध्यायः

(३०श्लोक)

- भक्ति के द्वारा ईश्वर के ज्ञान का अधिकार प्राप्त करना
- ईश्वर द्वारा भक्त को अपने स्वरूप का सम्पूर्ण ज्ञान देना

1. मुख्य विषय

ईश्वर अपने मुख से अपने तीनों स्वरूप बताते हैं जिसे जानकर भक्त सर्वज्ञ हो जाता है। जो जानने योग्य है वह सब जान जाता है।

3 स्वरूप – 1. निर्गुण निराकार – सत्-चित्-आनंद ब्रह्म
2. सगुण निराकार – ईश्वर
3. सगुण साकार – अवतार

2. सृष्टि की उत्पत्ति

मेरे आधार-अधिष्ठान में मेरी 2 प्रकार की प्रकृति से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं :—

1. **अपरा** प्रकृति - जड़ प्रकृति
   - अष्टधा प्रकृति – 1-पृथ्वी 2-जल 3-अग्नि 4-वायु 5-आकाश (सूक्ष्म पंचभूत)
     (8 Fold) 6-मन 7-बुद्धि 8-अहंकार (मूल प्रकृति)
2. **परा** प्रकृति - चेतन प्रकृति
   - प्रतिबिम्ब रूप, जीव रूप } यह जगत को धारण करती है (देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि को सत्ता-स्फूर्ति देती है)

3. जगत में भगवान् अपना दर्शन इस प्रकार कराते हैं

समस्त नाम-रूपात्मक जगत मुझ ईश्वर का ही स्वरूप है – जैसे माला में सूत्र व मणि।

- मैं जल में रस, सूर्य/चन्द्र में प्रभा/चन्द्रिका, वेदों में प्रणव ओंकार, आकाश में शब्द, मनुष्य में पुरुषार्थ, पृथ्वी में पुण्य गन्ध, अग्नि में तेज, प्राणियों में जीवन शक्ति, तपस्वियों में तप, सर्व प्राणियों का सनातन बीज, बुद्धिमानों में बुद्धि (विवेक शक्ति), तेजस्वियों का तेज (प्रभाव), बलवान में कामना-आसक्ति रहित सात्विक बल, धर्मशील मनुष्यों में धर्मयुक्त काम हूँ – इस प्रकार मैं पूरे जगत में ओत-प्रोत हूँ।

4. संसार में मेरा दर्शन क्यों नहीं होता ?

माया से से बने तीन गुण व उनसे उत्पन्न भाव व पदार्थ जीव को मेरे दर्शन नहीं होने देते, वह मुझे नहीं जान पाता।

माया { सत्व गुण - से - राग
रजो गुण - से - द्वेष
तमो गुण - से - मोह

माया से शरीर में अहंता-ममता करके राग-द्वेष-मोह से अभिभूत होकर जीव मुझ परमात्मा को नहीं जान पाता जो हर जीव में द्रष्टा-साक्षी 'आत्मा' के रूप में स्थित है। मेरा दर्शन दुष्कर्म करने वाले, मूढ़, नराधम व असुर भाव वालों को नहीं होता।

5 संसार में मेरा दर्शन किसे होता है?

जो भी भक्त मेरा भक्त बनकर मेरा आश्रय लेता है वह मेरी कृपा से मेरी दुस्तर माया को पार कर लेता है।

6 ४ गुणों से युक्त भक्त

४ गुणों से युक्त भक्त →	1- सुकृत	2-श्रद्धालु	3-विवेकी	4-दैवी गुण युक्त
४ प्रकार के भक्त →	1-आर्त - प्रहलाद - द्रौपदी	2-जिज्ञासु - अर्जुन - उद्धव	3-अर्थार्थी - ध्रुव	4-ज्ञानी

- सब भक्त उदार हैं परन्तु ज्ञानी सबसे प्रिय है क्योंकि वह मेरा ही रूप है।
- ऐसा ज्ञानी भक्त अत्यन्त दुर्लभ है जो सबको परमात्मा रूप जानता है।
- एक परमात्मा को ही माया से ईश्वर-जीव-जगत रूप देखता है - यह महात्मा है।

7 भगवान को छोड़कर अन्य देवताओं को पूजने का कारण

1. शीघ्र कामना पूर्ति की इच्छा वाले – देवताओं की पूजा करते हैं तथा मृत्यु पश्चात् उन देवताओं के लोक में जाते हैं। परन्तु जो मुझे भजता है वह मुझे ही प्राप्त होता है।
2. जो अविवेकी है – जो मुझे जन्मने-मरने वाला समझते हैं वे मेरे प्रभाव को न जानकर मुझे नहीं पूजते। मैं अपनी योग-माया से छिपा हुआ उनके आगे प्रकट नहीं होता।

8 मैं सब जीवों के अतीत, वर्तमान व भविष्य को जानता हूँ क्योंकि मैं सर्वज्ञ ईश्वर हूँ। मेरे सोपाधिक रूप को तो मनुष्य जानता है परन्तु मेरे निर्गुण-निराकार रूप को मेरे शरणागत भक्त के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता।

9 जो भी साधक ईश्वर, गुरु व शास्त्र की शरण लेकर मेरी भक्ति करता है → वह जीवन काल में अथवा मृत्यु के समय भी यदि मुझे ही इन रूपों में जान ले तो मुझे ही प्राप्त होता है। सर्वत्र एक परमात्मा ही परमात्मा है, वही –
(1) ब्रह्म है (2) अध्यात्म है (3) कर्म है (4) अधिभूत है (5) अधिदैव है (6) अधियज्ञ है।। इति ।।

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – 0

अर्जुन – 1-पार्थ 2-महाबाहो 3-धनंजय 4-कौन्तेय 5-भरतर्षभ 6-अर्जुन 7-भारत 8-परन्तप

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
30	0	0	30

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

अक्षरब्रह्मयोगो नाम

अष्टमोऽध्याय:

(28 श्लोक)

1. मुख्य विषय

एक ब्रह्म ही उपाधि भेद से निम्न के रूप में भास रहा है :—

1- ब्रह्म – परम अक्षर 2- अध्यात्म – जीव, द्रष्टा 3- कर्म (त्याग)
4- अधिभूत – पंचभूत/शरीर 5- अधिदैव – पुरुष/ब्रह्मा 6- अधियज्ञ – अन्तर्यामी

परम अक्षर
- जिसका क्षरण (नाश) न हो।
- सब आकारों में रहकर एक निराकार, अविनाशी परम ब्रह्म।

अध्यात्म
- स्वभाव अर्थात् स्वयं की सत्ता **'मैं'**।
- जीव जो द्रष्टा है।

कर्म (**त्याग**)
- भगवान् सृष्टि कर्म करते हैं तो आप भी ऐसे कर्म करें जिससे आपके कर्म की दिशा भगवान् के कर्म में मिल जाए।
- अपने सर्व कर्म यज्ञ रूप में करो, सम्पूर्ण जीवन ही यज्ञ हो।
- यज्ञ कर्म के द्वारा भ० की आराधना हो अपनी वासना पूर्ति के लिये नहीं।

यज्ञ अर्थात् —
1. तप (संयम) करो अन्त:करण की शुद्धि के लिये।
2. अपने कर्तव्य पालन करो माता, पिता, परिवार, समाज के लिये
3. विश्वात्मा भगवान् के लिये सेवा व यथायोग्य दान
4. भूल के परिमार्जन के लिये प्रायश्चित कर्म

फल — उत्तम भावों की उत्पत्ति

अधिभूत क्षर भी भगवान का रूप है, बदलने वाले भी भगवान् ही हैं, भगवान् ही नये नये रूपों में प्रकट होते हैं क्योंकि सर्वरूप परमात्मा ही हैं। इस शरीर में माटी, पानी, आग, हवा, आकाश - यह सब परमात्मा हैं।

अधिदैव पुरुष अर्थात् हिरण्यगर्भ, वही हमारी इन्द्रियों में शक्ति देने के लिये भिन्न भिन्न देवता रूप में हैं जैसे ऑखों के लिये सूर्य, वाणी के लिये अग्नि, हाथों के लिये इन्द्र आदि अत: देव पूजा भी परमात्मा पूजा है।

अधियज्ञ • विष्णु रूप से वे ही अन्तर्यामी के रूप में इस देह के भीतर रह कर शरीर के भीतर व बाहर सृष्टि में सभी यज्ञ कर्मों का संचालन करते हैं।

यह शरीर एक नगरी है, परमपुरुष पुरुषोत्तम इसी नगर के निवासी हैं, इसी में रहते-बसते है व किसी का विरोध नहीं करते। मूक दर्शक बनकर रहते हैं, सबको प्रकाशित करते हैं तथा सबको जीवन व सुख-शान्ति देने वाले हैं, वही सबके सुहृद् हैं।

अत: जानो कि निराकार सर्वाधिष्ठान भी वही, द्रष्टा भी वही, कर्म भी वही, अधिभूत भी वही, अधिदैव भी वही तथा अधियज्ञ भी वही। मानो सर्वत्र सर्वरूपों में एक परमात्मा ही है – **वासुदेव: सर्वमिति** – सब वासुदेव है, ऐसा अनुभव करने वाला महात्मा दुर्लभ है।

मृत्यु के समय भगवान् की पहचान कैसे होगी?
इसका एक ही उपाय है – 'पहले से ही पहचान रखो कि सब परमात्मा है' तब मृत्यु के समय कोई घबराहट नहीं होगी। सबके रूप में परमात्मा को पहचान लो कि सत् (ब्रहम) भी वही व असत् रूपी जगत (माया) भी वही, मृत्यु भी वही और अमृत भी वही – सर्वत्र परमात्मा ही परमात्मा...है।

2- साधना – यदि श्रवण मात्र से ज्ञान न हो तो उपासना करो!

परमात्मा की उपासना की पद्धति

1- प्रवृत्ति रूप उपासना → (परमात्मा का **'वह'** रूप से ध्यान)

(a)- सगुण ब्रह्म उपासना
- पूजा, मंत्र जाप, रूप ध्यान, गुण चिन्तन।
- उन्हें श्रेष्ठ मानकर – नमन, **न मम:** - मेरा कुछ नहीं, सब आपका है।

(b)- निर्गुण ब्रह्म उपासना
- ओंकार घ्यान।
- ओंकार उपासना - जप के साथ-२ ओंकार से उपलक्षित ब्रह्म का ध्यान।

2- निवृत्ति रूप उपासना → (परमात्मा का **मैं'** रूप से ध्यान)
- धन, परिवार, शरीर को अपनी जगह रखकर आप अपने में बैठ जाइये।
- Ch.6 का ध्यानाभ्यास।

3- सिद्धान्त – जीवन भर जो जिसका ध्यान करता है, जिसे भजता है उसे ही प्राप्त करता है अत: जो मुझ भगवान् का नित्य सतत् ध्यान करेगा व संसार चिन्तन नहीं करेगा वह मुझ दिव्य पुरुष को अवश्य प्राप्त होगा।

4- गति –
1. पापी, दुष्कर्मी → अधोगति, नीच योनियों में जन्म।
2. संसारी व्यक्ति → जो संसार का ही चिन्तन करता है उसे पुन:-2 मनुष्य लोक प्राप्ति।
3. सकामी सत्कर्मी → इसको मृत्यु पश्चात् कृष्ण मार्ग दक्षिणायन से स्वर्ग प्राप्ति व संसार में पुनरावृत्ति।
4. योगी (ध्यानी-उपासक) → इस सगुण ब्रहम उपासक को शुक्ल-अर्चि मार्ग उत्तरायन से ब्रहमलोक प्राप्ति व ब्रहमाजी द्वारा ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति (क्रम मुक्ति), अपुनरावृत्ति।

5. ज्ञान से सद्य: मुक्ति → अर्थात् तुरन्त ही जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति।

5 आदेश – अत: हे साधक! तू सकाम कर्मी से निष्काम योगी बन तब तू इन 7 प्रश्नों के उत्तर पाकर सर्वोत्तम फल (मुक्ति) प्राप्त करेगा।

।। इति ।।

—०००—

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – 1- पुरुषोत्तम 2- मधुसूदन

अर्जुन – 1- कौन्तेय 2- पार्थ 3- अर्जुन 4- भरतर्षभ

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
28	0	2	26

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम

नवमोऽध्यायः

(34 श्लोक)

यह अध्याय भगवान् के स्वरूप के बारे में है। जीव को यह भ्रम हो गया है कि जीव, जगत व ईश्वर अलग अलग हैं।

ज्ञान – भगवान् यह परम गुह्य ज्ञान देते हैं कि एक निर्गुण-निराकार परमात्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं है। वही माया से **ईश्वर** बनकर इस जगत की उत्पत्ति.स्थिति व लय करता है, वही प्रेरक बनकर जगत का संचालन करता है और वही **जीव** रूप से सब प्राणियों में स्थित है तथा वही चराचर **जगत** रूप है। अतः यही गुह्यतमं ज्ञान है कि ईश्वर-जीव-जगत सब ब्रह्म हैं।

अधिकारी – जो भी अनुसूयवे है अर्थात् दोष दृष्टि से रहित है व चतुष्ट्यसाधन सम्पन्न है वह इस ज्ञान का अधिकारी है।

फल – ऐसा जानकर यह अधिकारी सर्व दुःखों से दूर होकर परमानन्द प्राप्त करता है। इस संसार में रहते हुए भी जीवन मुक्त है। यह सर्वज्ञ है – कृतकृत्य है।

1. यह ज्ञान कैसे प्राप्त होता है?

यह पवित्र ज्ञान शुद्ध अन्तःकरण वाले को गुरु मुख से उपदेश सुनकर सुखपूर्वक होता है, अश्रद्धालु को नहीं होता।

2. भगवान् के दो रूप क्या हैं?

निर्गुण-निराकार – सच्चिदानन्द ब्रह्म

सगुण-निराकार ब्रह्म – जिससे यह जगत उत्पन्न होता है, स्थित होता है व लय होता है। (माया सहित)

3. भगवान् की पहचान कैसे हो?

एक भगवान् के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, वही माया से अनेक रूपों में दीखता है इसलिये देखने वाला **द्रष्टा** (SEER) भी ब्रह्म और दीखने वाला **दृश्य** (SEEN) भी ब्रह्म, अतः हम चराचर जगत को परमात्मा रूप से पूजते हैं जैसे पशु-गाय, पक्षी-गरुड़, वृक्ष-पीपल, नदी-गंगा, पर्वत-हिमालय, समुद्र, पंचमहाभूत, पुरुष, नारी, संन्यासी सब का सब भगवान् का विश्व विराट रूप है।

4 इस जगत को कैसे देखें?

यह जगत भगवान का खेल है। यह जगत एक रंगमंच है। इसमें अपने कर्मों के अनुसार भूमिका मिलती है। We can't choose the role but we can choose to play our role nicely and rightly.

5 स्वरूप को न जानने का परिणाम?

संसार में स्वार्थी बनकर आसुरी व राक्षसी प्रवृत्ति वाला होना दूसरों को हानि पहुँचाना व हिंसा करना।

6 महात्मा कौन है?

जो चराचर जगत को भगवान् का रूप देखे, इस जगत को अपना कुटुम्ब माने। दैवीय सम्पदा से युक्त हो। परमात्मा से अन्य कुछ नहीं है तथा वह अनादि है, अज है - ऐसा जानकर वह परमात्मा को अनन्य भाव से भजता है।

7 भजन के प्रकार?

सबको परमात्मा जानकर पूजो

- अपने व दूसरों के हृदय में बैठे परमात्मा की पूजा
- देवी-देवताओं की, सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र की पूजा
- वृक्ष, नदी, पर्वत, पशु-पक्षी, की पूजा
- माता-पिता, आचार्य, अतिथि, पितरों की पूजा
- अन्न की पूजा
- वेदों व ओंकार की पूजा

8 भजन का फल?

जो इस प्रकार मेरा अनन्य चिन्तन करते हैं, उपासना करते हैं उनका मैं सदैव योग-क्षेम वहन करता हूँ।

9 भगवान् की पूजा कैसे करें?

- प्रेम से पत्ता, पुष्प, फल व जल अर्पित करो मैं उसे अवश्य ग्रहण करूँगा।
- सर्व लौकिक कर्म, सर्व भोग, सर्व यज्ञ कर्म, दान, तप मुझे अर्पित कर दो अर्थात् जानो परमात्मा का ही दिया सब है अत: उन्हें ही स्मरण करके सब कार्य करो।

10 भगवान् का स्वरूप व स्वभाव

- भगवान् का **स्वरूप** निर्गुण निराकार होने से असंग है।
- भगवान् का **स्वभाव** सगुण होने से दयालु है अत: जो मेरा भक्त है **मैं** उसके हृदय में और **वह** मेरे हृदय में रहता है।
- बुरे आचरण वाला भी भक्ति से धर्मात्मा बनकर मुझे प्राप्त करता है।
- पूर्व में अधिक पाप करने वाले स्त्री, वैश्य व शूद्र भी मेरी शरण होकर भक्ति से परांगति को प्राप्त होते हैं तो फिर पुण्यशील ब्राह्मण व क्षत्रिय तो मेरी शरण व भक्ति से मुझे सुलभता से प्राप्त करेंगे।

अत:

मन्मना – मेरा विचार करो, मुझमें मन वाला हो।
मद्भक्तः – मुझसे प्रेम करो।
मद्याजी – मेरे लिये सब कर्म करो, मेरा पूजन करो।
नमस्कुरु – मेरी शरण लो, मुझे नमन करो।
मत्परायणः – मुझ पर भरोसा रखो।
मामेवैष्यसि – बस तुम अपने को मुझसे जोड़ लो तुम मुझको ही प्राप्त होगे, मैं सब ठीक कर दूँगा।

।। इति ।।

—०००—

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – 0

अर्जुन – 1- अनुसूयवे 2- परन्तप 3- कौन्तेय 4- धनंजय 5- अर्जुन 6- पार्थ

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
34	0	34	0

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

विभूतियोगो नाम

दशमोऽध्याय:

(42 श्लोक)

मुख्य विषय

1. **विभूति योग क्या है?**
2. **इसे अविकम्प योग क्यों कहते हैं?**
   - **इसका अधिकारी कौन है?**
   - **इसका फल क्या है?**
3. **विभूति वर्णन**

1. विभूति योग क्या है?

योग – अर्थात् वास्तविक स्वरूप – **सत्-चित्-आनंद**

विभूति – अर्थात् माया से भगवान् का एक से अनेक बनना – भगवान् का **ऐश्वर्य/विभूति** जैसे जल और बर्फ, सूर्य और प्रभा, अत: —

- समाधि में भगवान् के यथार्थ तत्त्व का चिन्तन – योग है।
- व्यवहार में दृश्यमान जगत को भगवान् के रूप में देखना – विभूति/ऐश्वर्य है।
- इससे आप सर्वकाल में भगवान् से ही जुड़े रहेंगे।

2. इसे अविकम्प योग क्यों कहते हैं?

अविकम्प योग – जो तत्त्व से भगवान् के योग व विभूति को जानता है वह अविकम्प योग में स्थित होता है।

- योग – भगवान् अज, अव्यय हैं।
- विभूति – भगवान् लोक महेश्वर हैं। इस जगत में सम्पूर्ण सृष्टि भगवान् की विभूति है जैसे सूर्य, चन्द्र, तारे, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि

इसका अधिकारी कौन है?

- प्रीयमाणाय – जो भगवान् में अतिशय प्रेम रखता है अत: ऐसे भक्त को मैं अपना योग व विभूति पुन: पुन: बताऊँगा जिससे वह सर्वकाल में भगवान से ही जुड़ा रहता है।

इसका फल क्या है?

- इसे जानकर व्यक्ति असम्मूढ़ होता है अर्थात् परमात्मा के बारे में जानकर अज्ञान मिटता है।
- सर्व पापों से मुक्त होता है।
- स्वयं आत्मा को परमात्मा रूप से जानता है तथा जगत में सर्व नाम-रूप को परमात्मा रूप से देखता है।

3. परमात्मा से भूतों की उत्पत्ति कैसे होती है?

यह सारी सृष्टि मानस है। सभी भूत प्राणी परमात्मा के मानस पुत्र ऋषि व मनु की सन्तान हैं। मन के सारे भाव – 'बुद्धि, ज्ञान, असंमोह, क्षमा, सत्यं, दमः, शमः, सुखं-दुःखं, जन्म-मृत्यु, भय-अभय, अहिंसा, तुष्टि, समता, तप, दानं, यश-अपयश' – इन सर्व भावों के प्रेरक भगवान् ही हैं।

4. भगवान् का भक्त बनने का उपाय व फल

उपाय – मन से भगवान् से प्रेम करो, बुद्धि से भगवान् को जानो, प्राणों का सदुपयोग करो - भगवान् के लिये कर्म करो अर्थात् संसार में सेवा करो व आपस में संसार की बातें न करके भगवान् का कथन करो।

फल – मेरा जो भक्त सदैव मेरी भक्ति करता है उसे मैं **बुद्धि योग** देता हूँ जिससे मेरा भक्त मेरे निकट आ जाएगा। मेरी अनुकम्पा से मैं ही उसकं हृदय में स्थित होकर उसके अज्ञान का नाश करके उसे यह ज्ञान दूँगा कि हे जीव! मैं ईश्वर और तू एक ही हैं, तू ब्रह्म ही है।

5. इस अध्याय का महावाक्य व अवान्तर वाक्य

महावाक्य – परमात्मा कहते हैं कि मैं भगवान् ही सब भूतों के हृदय में आत्मा रूप से स्थित हूँ अतः परमात्मा और आत्मा एक हैं।

अवान्तर वाक्य – मैं परमात्मा ही इस जगत के सर्व भूतों व भावों की उत्पत्ति-स्थिति व प्रलय का स्थान हूँ।

6. विभूति वर्णन

मैं इस संसार को अपने एक अंश में धारण करके स्थित हूँ।

भगवान् की 71 विभूतियॉ

V 21	1 - आदित्य के १२ पुत्रों में	**विष्णु**	V 22	5 - वेदों में	**सामवेद**
	2 - ज्योतियों में	**सूर्य**		6 - देवों में	**इन्द्र**
	3 - ४९ वायु देवताओं मे	**तेज - मरीचि**		7 - इन्द्रियों में	**मन**
	4 - नक्षत्रों में	**चन्द्रमा**		8 - भूत-प्राणियों में	**चेतना/जीवन**
V 23	9 - एकादश रुद्रों में	**शंकर**	V 24	13 - पुरोहितों में	**बृहस्पति**
	10 - यक्ष व राक्षसों में	**कुबेर**		14 - सेनापतियों में	**स्कन्द**
	11 - आठ वसुओं में	**अग्नि**		15 - जलाशयों में	**समुद्र**
	12 - शिखर वाले पर्वतों में	**सुमेरु पर्वत**			
V 25	16 - महर्षियों में	**भृगु**	V 26	20 - वृक्षों में	**पीपल का वृक्ष**
	17 - शब्दों में एक अक्षर में	**ओंकार**		21 - देवर्षियों में	**नारद मुनि**
	18 - सब प्रकार के यज्ञों में	**जप यज्ञ**		22 - गन्धर्वों में	**चित्ररथ**
	19 - स्थिर रहने वालों में	**हिमालय पर्वत**		23 - सिद्धों में	**कपिल मुनि**
V 27	24 - घोड़ों में	**उच्चैःश्रवा घोड़ा**	V 28	27 - शस्त्रों में	**इन्द्र का वज्र**
	25 - श्रेष्ठ हाथियों में	**ऐरावत हाथी**		28 - गौओं में	**कामधेनु**

	26 - मनुष्यों में	**राजा**		29 - धर्ममय काम में	**कामदेव**
				30 - सर्पो में	**सर्पराज वासुकी**
V 29	31 - नागों में	**शेषनाग**	**V 30**	35 - दैत्यों में	**प्रह्लाद**
	32 - जलचरों का अधिपति में	**वरुण देवता**		36 - गणना में	**समय**
	33 - पितरों में	**अर्यमा पितर**		37 - पशुओं में	**मृगराज सिंह**
	34 - संयम रूप में	**यमराज**		38 - पक्षियों में	**गरुड़**
V 31	39 - पवित्र करने वालों में	**वायु**	**V 32**	43 - सृष्टियों का	**आदि-अन्त-मध्य**
	40 - शस्त्रधारियों में	**श्रीराम**		44 - विद्याओं में	**अध्यात्म विद्या**
	41 - मछलियों में	**मगर**		45 - परस्पर विवाद में	**वाद (तत्त्व निर्णय)**
	42 - नदियों में	**भागीरथी गंगाजी**			
V 33	46 - अक्षरों में	**अकार**	**V 34**	51 - सर्व के हरण में	**मृत्यु**
	47 – समासों में	**द्वन्द्व समास**		52 - उत्पन्न होनेवालों में	**उत्पत्ति का हेतु**
	48 - काल का	**महाकाल**		53 - स्त्रियों में **कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति,**	
	49 - धारण करने वालों में	**धाता**		**मेधा, धृति और क्षमा**	
	50 - सब ओर मुख वाला -	**विश्वतोमुखं**			
V 35	54 - गायन योग्य श्रुतियों में	**बृहत्साम**	**V 36**	58 - छल करने वालों में	**जुआ**
	55 - छन्दों में	**गायत्री छन्द**		59 - तेजस्वियों का	**तेज**
	56 - महीनों में	**मार्गशीर्ष**		60 - जीतने वालों में	**विजय भाव**
	57 - ऋतुओं में	**वसन्त**		61 - अनेक संकल्पों में	**निश्चय भाव**
				62 - सात्विक पुरुषों का	**सात्विक भाव**
V 37	63 - वृष्णिवंशियों में	**वासुदेव - मैं**	**V 38**	67 - दमन करने वालों का **दण्ड**	
	64 - पाण्डवों में	**धनंजय - तू**		68 - जीतने की इच्छा वालों में **नीति**	
	65 - मुनियों में	**वेदव्यास**		69 - गुप्त रखनेयोग्य भावों का रक्षक **-मौन**	
	66 - कवियों में	**शुक्राचार्य कवि**		70 - ज्ञानवानों का **तत्त्वज्ञान**	

V 39 71 - **सर्वभूतानां बीजं** - सब भूतों की **उत्पत्ति का कारण रूपी बीज मैं हूँ**।

।। इति ।।

—०००—

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – 1- केशव 2- पुरुषोत्तम 3- भूत भावन 4- भूतेश्वर 5- जगत्पते 6- देवदेव 7- योगिंस्त्वां 8- जनार्दन

अर्जुन – 1- महाबाहो 2- कुरुश्रेष्ठ 3- गुडाकेश 4- पार्थ 5- अर्जुन 6- धनंजय

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
42	0	7	35

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

विश्वरूपदर्शनयोगो नाम

एकादशोऽध्याय:

(55 श्लोक)

मुख्य विषय

प्रिय अर्जुन को भगवान् का अपने सगुण-साकार रूप का दर्शन कराना

1 विश्व रूप दर्शन

- अपने शरीर के एक छोटे से अंश में संपूर्ण विश्व दिखाया।
- विश्व रूप में देव, दानव, मनुष्य, यक्ष, गंधर्व, पितर, पशु-पक्षी, वृक्ष, नदियॉ, पर्वत, सूर्य, चन्द्र तथा जन्म एवं मृत्यु सब दिखाया।

2 दर्शन का हेतु

- यह सब देखने के लिये दिव्य चक्षु प्रदान किये अर्थात् वेदान्त-जन्य प्रमा – **बुद्धियोग** दिया।
- यह प्रमा **अनन्य भक्ति** से प्राप्त होती है।

अनन्य भक्ति

1	साधन भक्ति	- शरणागति	- मैं भगवान् का हूँ	}	प्रेमा
2	अभ्यास भक्ति	- आश्रय बोध	- भगवान् मेरे हैं	}	भक्ति
3	परिपाक भक्ति	- मैं और भगवान् एक हैं	- ज्ञान		

3 विश्व विराट दर्शन का अर्जुन पर प्रभाव

- अर्जुन भगवान् के इस रूप को देख कर भयभीत व व्यथित हो गया तथा हाथ जोड़कर शिरसा प्रणाम किया।

4 भगवान् का काल रूप से दर्शन व अर्जुन को 5 आदेश

- मैं महाकाल हूँ, सबका विनाश करने के लिये तत्पर हूँ। युद्ध में ये सब मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं अत: अर्जुन! तुम बस युद्ध करो।

भगवान् के युद्ध सम्बन्धी 5 आदेश :—

1 उत्तिष्ठ (उठो)।
2 यश का लाभ लो।
3 शत्रुओं को जीतो।
4 समृद्ध राज्य का भोग करो।
5 केवल निमित्त मात्र बनो।

-5- भगवान् की उपासना का स्वरूप

मत्कर्मकृत् – केवल मुझे मन में रखकर मेरे लिये अपने स्वधर्म कर।
मत्परमः – मेरा ही आश्रय व भरोसा कर।
मद्भक्तः – केवल मुझसे प्रेम कर, मुझसे मुख्य सम्बन्ध हो।
संग विवर्जितः – स्त्री, पुत्र, धन किसी से आसक्ति/प्रीति न कर।
निर्वैरः – किसी से वैर न कर।

-6- भगवान् की उपासना का फल

इस अध्याय में भगवान् ने यह दिखाया कि **विश्व-विराट रूप**, **चतुर्भुज नारायण रूप** (शंख, चक्र, गदा, पद्म सहित) तथा **कृष्ण द्विभुज** रूप सब एक ही हैं, किसी भी रूप की उपासना करो तुम परमात्मा को ही प्राप्त हो जाओगे।

।। इति ।।

—०००—

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – 1-कमल पत्राक्ष 2-परमेश्वर 3-पुरुषोत्तम 4-योगेश्वर 5-हे देव! 6-विश्वेश्वर 7-विश्वरूप 8-महात्मन् 9-महाबाहो 10-हे विष्णो! 11-हे देवेश! 12-हे जगन्निवास! 13-हृषीकेश 14-अक्षरं परं 15-हे अनन्तरूप! 16-हे अनन्तवीर्य! 17-हे कृष्ण! 18-हे यादव! 19-हे सखेति! 20-विश्वमूर्ते 21-सहस्त्रबाहो 22-जनार्दन

अर्जुन – 1-पार्थ 2-भारत 3-गुडाकेश 4-पाण्डव 5-अर्जुन 6-धनंजय 7-परन्तप

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
55	8	33	14

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

भक्तियोगो नाम

द्वादशोऽध्याय:

(20 श्लोक)

मुख्य विषय

अर्जुन का प्रश्न

- **सगुण और निर्गुण भक्ति में कौन सी भक्ति श्रेष्ठ है?**
- **सगुणोपासक व निर्गुणोपासक में कौन सा भक्त योगवित्तम है?**

श्रीभगवानुवाच

1 सगुणोपासना सरल है तथा उनके लिये मैं समुद्धर्ता रूप लेता हूँ।

सगुण भगवान् का उपासक जो भगवान् के विश्व-विराट रूप, चतुर्भुज विष्णु रूप अथवा द्विभुज कृष्ण रूप की उपासना करता है वह श्रेष्ठतम भक्त है क्योंकि देहाभिमानी के लिये सगुण उपासना करना सरल है तथा जो सतत व नित्य युक्त होकर मेरे सगुण रूप की उपासना करता है उसका मैं इस मृत्यु रूप संसार सागर से उद्धार कर देता हूँ।

2 निर्गुणोपासना देहाभिमान के कारण कठिन है

यदि पहले सगुणोपासना की जाए तब वही भक्त निर्गुण ब्रह्म की उपासना सुलभता से कर लेता है। यह भक्त निर्गुण-निराकार ब्रह्म की ओंकार रूप से उपासना अथवा चिन्तन करता है तथा यह भक्त –

1 दम-शम से युक्त है - (**सम्यक व्यवहार**)
2 बुद्धि में समता है - (**धीर बुद्धि**)
3 सर्व प्राणियों की सेवा करता है - (**कोमल चित्त**)

*** ऐसा भक्त मुझे ही प्राप्त करता है ***

3 उपासक के लिये क्रम से साधना

1 **सर्वकर्मफल त्याग** - कर्मफल को प्रसाद बुद्धि से ग्रहण करो।
2 **कर्मयोग** - फल एवं कर्म की आसक्ति को त्याग कर भगवान् की प्रीति के लिये स्वधर्म का पालन करो। विश्व-विराट की सेवा करो।
3 **ध्यानाभ्यास** - भगवान् का ध्यान-चिन्तन करो।
4 **ज्ञान** - भगवान् का ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाओ।

4 **भक्त के गुण**

किसी से द्वेष न करना, सबसे मैत्री भाव रखना, दीन-दु:खी पर करुणा करना, मेरा-मेरा न करना, बल बुद्धि जाति धन व पद का अहंकार न करना, सुख-दु:ख व मान-अपमान में सम रहना तथा इन्हें भगवान् का प्रसाद देखना अथवा निजकर्म फल जानना, अपराधी को क्षमा कर देना, सदैव संतुष्ट रहना, मन-वाणी व शरीर से तप करना तथा बुद्धि को स्थिर रखना।

5 जो इन धर्मों को श्रद्धा पूर्वक मेरे परायण होकर धारण करता है अथवा इन धर्मों में महत् बुद्धि रखकर उनकी उपासना करता है वह भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है।

	प्रवृत्ति मार्गी	**निवृत्ति मार्गी**
जिज्ञासा का विषय	■ सगुण ब्रह्म उपासना	■ निर्गुण ब्रह्म उपासना
अधिकारी	शरणागत, श्रद्धा से ओतप्रोत 1- मत्कर्मकृत् 4- संगवर्जित: 2- मत्परम: 5- निर्वैर: 3- मद्भक्त: 6- सर्वभूतेषु **(BG – 09.34 & BG – 18.65)**	सम्यग्दर्शी, वैरागी, सर्वकर्मसंन्यासी 1- सन्नियम्येन्द्रिय ग्रामं – सम्यक व्यवहार 2- सर्वत्रसमबुद्धय – धीर बुद्धि 3- सर्वभूतहिते रता: – कोमल चित्त **(BG – 18.51 To BG – 18.55)**
उपासना का स्वरूप	• सगुण ब्रह्म का रूप व गुण चिन्तन • **(BG – 08.09 & BG – 09.18)** • दासोऽहम् इति वृत्ति अखण्डा • सगुण ब्रह्म का नाम जप द्वारा ध्यान • करने में सरल	• श्र०म०नि० – अक्षर ब्रह्म के 8 लक्षणों का चिन्तन • **(BG – 12.03)** • सोऽहम् अस्मि इति वृत्ति अखण्डा • निर्गुण ब्रह्म का ओंकार द्वारा जप ध्यान • करने में कठिन (अधिक क्लेश)
फल	• क्रम मुक्ति • भगवत् लोक की प्राप्ति • **'मैं'** भगवान् स्वयं उन्हें समुद्धर्ता बनकर संसार सागर से पार करता हूँ।	• सद्य: मुक्ति • साधन चतुष्ट्य सम्पन्न जिज्ञासु भक्त श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु से ज्ञान प्राप्त कर श्र०म०नि० पश्चात् आवरण भंग करके मुझ भगवान् को प्राप्त करते हैं।

।। इति ।।

—०००—

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – 0

अर्जुन – धनंजय

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
20	0	1	19

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम

त्रयोदशोऽध्याय:

(34 श्लोक)

13वॉ अध्याय वेद, उपनिषद, पुराण, इतिहास सबका सार है।

श्रीभगवानुवाच

	क्षेत्र (शरीर)		**क्षेत्रज्ञ (जीव/आत्मा)**
1	• 3 शरीर (स्थूल, सूक्ष्म, कारण) – **दृश्य**	1	• एकरस – **द्रष्टा-साक्षी**
2	• शरीर खेत के समान हैं – **अज्ञान रूप**, यह किसी को नहीं जानता।	2	• क्षेत्रज्ञ किसान के समान है – **ज्ञानवान**, शरीर के भीतर रहकर शरीर को और संसार को जानता है।
3	• जिस प्रकार खेत में बीज बोने पर उनसे फल प्राप्त होते हैं वैसे ही शरीर (क्षेत्र) से पाप-पुण्य रूपी कर्म करने से सुख-दु:ख रूपी फल प्राप्त होते हैं।	3	• क्षेत्रज्ञ क्षेत्र (शरीर) में होने वाले कर्मों का द्रष्टा व प्रेरक मात्र है वह स्वयं कुछ नहीं करता।
4	• क्षेत्र में विकार हैं। • अव्यक्त (मूल प्रकृति) + महत्तत्त्व (समष्टि बुद्धि) + अहंतत्त्व (समष्टि मन) + पंचतन्मात्रा + पंच ज्ञानेन्द्रियॉ + पंच कर्मेन्द्रियॉ + मन + पंचविषय = यह 24 क्षेत्र के विकार हैं। • क्षेत्र में ही गुण धर्म हैं – इच्छा-द्वेष, सुख-दु:ख, संघात चेतना व धृति।	4	• क्षेत्रज्ञ निर्विकार है। • निर्गुण है। • यह क्षेत्र के विकार एवं गुण धर्मों को देखने वाला है।
5	• ब्रह्म से माया का प्रादुर्भाव व इस संसार के रूप में परिवर्तित होने की प्रक्रिया को जानना ही क्षेत्र को जानना है। { ब्रह्म → माया → पंचमहाभूत → शरीर एवं पंच विषय संसार }	5	• क्षेत्रज्ञ को माया राज्य का द्रष्टा-साक्षी जानना ही क्षेत्रज्ञ को असंग आत्मा रूप से जानना है।
6	• प्रकृति – कर्ता-भोक्ता है, • कर्तृत्व-भोक्तृत्व साभास अन्त:करण में है।	6	• पुरुष – अकर्ता-अभोक्ता है, • किन्तु पुरुष भूल से प्रकृति के गुणों को अपना मानकर स्वयं को कर्ता-भोक्ता मानता है एवं 84 लाख योनियों में भ्रमण करता है जबकि यथार्थ में वह असंग द्रष्टा है।

महावाक्य

भगवान् कहते हैं कि मैं परमात्मा ही प्रत्येक शरीर (**क्षेत्र**) में आत्मा (**क्षेत्रज्ञ**) रूप से स्थित होकर सबको देखता हूँ। हे जीव (**क्षेत्रज्ञ**)! तू मेरा ही स्वरूप है अत: तू स्वयं को सच्चिदानन्द ब्रह्म ही जान। **भगवान् कहते हैं –**

- **क्षेत्रज्ञ** भी मैं हूँ → **यथार्थ** तथा
- मायाकृत **क्षेत्र** भी मैं हूँ → **मिथ्या/प्रतीति मात्र**

1- असंगता का दृष्टान्त

जैसे व्यापक आकाश सर्व भूतों में असंग रूप से स्थित है वैसे ही आत्मा सब भूत प्राणियों में रहते हुए भी सदैव असंग रहता है, किसी के गुण-दोष से लिप्त नहीं होता।

2- अकर्तापन का दृष्टान्त

जिस प्रकार एक सूर्य स्वयं कुछ कर्म नहीं करता परन्तु सभी प्राणी इस संसार में उसके प्रकाश में भाँति-भाँति के कर्म करते हैं उसी प्रकार यह आत्मा भी कुछ कर्म नहीं करता, वह सर्व क्षेत्र को प्रकाशित करता है एवं क्षेत्र में भाँति-भाँति के कर्म होते हैं।

गुरु व शास्त्र के उपदेश से जो क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के भेद को जानता है वह इस कार्य-कारण रूप प्रकृति से, इस प्रपंच से मुक्त होकर परम ब्रह्म को प्राप्त होता है।

।। इति ।।

—०००—

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – 0

अर्जुन – 1-कौन्तेय 2-भरतर्षभ 3-भारत

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
34	0	0	34

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

गुणत्रयविभागयोगो नाम

चतुर्दशोऽध्यायः

(27 श्लोक)

- **यह ज्ञान सब ज्ञानों में उत्तम ज्ञान है।**
- **इसे जानकर मुनि परमात्मा रूप हो जाते हैं।**
- **जन्म-मरण से मुक्त हो जाते हैं।**

भगवान् बताते हैं –

- **मैं ईश्वर प्रेरक चेतन ही बीजप्रद पिता हूँ – महादेव**
- **मेरी पत्नी महद्योनि ही भूतों की माता है – जगदम्बा**

प्रकृति के ३ गुण – 1. सत्त्व, 2. रज, 3. तम } जो इस देह में देही **(आत्मा)** को बाँध लेते हैं।

1 साधन रूप

सत्त्वगुण – विवेक का पोषक है व ज्ञान का अधिकारी बनाता है।
रजोगुण – रचनात्मक क्रिया का पोषक है।
तमोगुण – विश्राम का पोषक है।

2 बन्धन रूप

सत्त्वगुण – सुख व ज्ञान की आसक्ति से बाँधता है।
रजोगुण – कर्म व फल की आसक्ति से बाँधता है।
तमोगुण – अज्ञान, आलस्य, निद्रा, प्रमाद से बाँधता है।

3 गुण बदलते हैं

स्वाभाविक – प्रातःकाल में सत्त्व, दिन में रजोगुण व रात्रि में तमोगुण।
साधना से – दो गुणों को दबाकर तीसरा गुण बढ़ाया जा सकता है।

4 गुणों के लक्षण

सत्त्वगुण बढ़ा हो तो – सर्व इन्द्रियों व बुद्धि में स्पष्ट ज्ञान।
रजोगुण बढ़ा हो तो – लोभ, प्रवृत्ति, अशान्ति, स्पृहा।
तमोगुण बढ़ा हो तो – समझ का नाश, कुछ न करने का मन, समय पर बात भूल जाना व मोह।

5 मरण काल में गति

प्रवृद्ध सत्त्वगुण – ऊर्ध्व गति – स्वर्ग प्राप्ति
प्रवृद्ध रजोगुण – मनुष्य लोक प्राप्ति
प्रवृद्ध तमोगुण – अधोलोक व नरक की प्राप्ति – पशु-पक्षी-वृक्ष योनि

6 गुणों का फल

सत्त्वगुण से – ज्ञान
रजोगुण से – लोभ
तमोगुण से – प्रमाद, मोह व अविवेक

7 प्राण श्लोक (V 19)

तुम गुणातीत आत्मा हो, द्रष्टा हो। सभी गुण प्रकृति में हैं अत: सर्व कर्म माया-प्रकृति में हैं। उदासीन भाव से इन गुणों के आने-जाने को देखो। तुम जन्म-मृत्यु-जरा सर्व दु:खों से मुक्त होकर अमृत रूप हो जाओगे।

8 अर्जुन के तीन प्रश्न

(a) **गुणातीत का आचरण** – जो गुणों के आने-जाने में न उन्हें जाने के लिये तथा न उन्हें रुकने के लिये कहता है, जैसे हम बच्चों को खेलते-कूदते-झगड़ते देखते हैं वैसे ही वह बैठकर इन गुणों के व्यवहार को देखता है।

(b) **गुणातीत के लक्षण** – सुख-दु:ख में सम, स्वस्थ, पदार्थों (मिट्टी-लोहा-स्वर्ण) में सम, प्रिय-अप्रिय में सम, धीर, निंदा-स्तुति में सम।

(c) **गुणातीत होने का उपाय** – **अनन्य भक्ति** –
1- जानो कि आत्मा अकर्ता है व गुण कर्ता हैं।
- आत्मा द्रष्टा है व गुण दृश्य हैं।
2- आत्मा व परमात्मा एक हैं, गुणातीत हैं अत: आत्मा अथवा परमात्मा का चिन्तन करो, संसार का नहीं।

9 आत्मा – परमात्मा की एकता

परमात्मा ब्रह्म की प्रतिष्ठा अहम् 'मैं' आत्मा हूँ जो अमृत, अव्यय, शाश्वत, धर्मरूप ज्ञान, एकरस व सुखरूप है।

।। इति ।।

—०००—

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – 1- प्रभो

अर्जुन – 1- कौन्तेय 2- महाबाहो 3- अनघ 4- भारत 5- भरतर्षभ 6- कुरुनन्दन 7- पाण्डव

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
27	0	1	26

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

पुरुषोत्तमयोगो नाम

पंचदशोऽध्यायः

(20 श्लोक)

पुरुषोत्तम योग को 'शास्त्र' कहा है क्योंकि गीता व वेदों का सार है।

पॉच विषय

1 संसार प्रकरण

यह संसार मायामय है। इसकी उपमा एक उल्टे अश्वत्थ वृक्ष के रूप में दी है जिसमें—

a)	मूल (जड़)	–	ऊपर की ओर, अर्थात्	– सोपाधिक - सगुण ब्रह्म
b)	तना व शाखा	–	नीचे की ओर, अर्थात्	– ब्रह्माजी व 14 लोक
c)	पत्ते	–	वेदों के छन्द	
d)	फूल	–	पाप व पुण्य रूपी कर्म	
e)	फल	–	सुख व दुःख	

- अश्वत्थ अर्थात् क्षणभंगुर, क्षण-क्षण में बदलने वाला यह संसार दुःख रूप है परन्तु यह संसार मायामय है, इसका मूल सच्चिदानंद ब्रह्म है। संसार को ऐसा जानने वाले को वेदवित् कहते हैं।
- इस वृक्ष पर यह जीव रहता है व नवीन-नवीन कर्म करके नये-नये शरीर प्राप्त कर ऊपर-नीचे की योनियों में धूमता रहता है।
- जीव का यह 'अज्ञान' कि वह यह देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण है, इसे संसार की 84 लाख योनियों में भ्रमण कराता है।

2 मुक्ति प्रकरण

- भगवान् का आश्रय लेकर हे जीव! – कर्मयोग से निर्मल-निश्छल मन
– भक्तियोग से निश्चल मन } प्राप्त करके विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पदा (शम, दम, उपरम, तितीक्षा, श्रद्धा, समाधान) तथा मुमुक्षुत्वम् से युक्त होकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु का आश्रय लो।
- गुरु से श्रवण करके मनन व निदिध्यासन करो तथा –
- इस जगत को स्वप्न की तरह मायामय जानकर इसके मूल सच्चिदानन्द ब्रह्म को अपनी आत्मा जानकर अभी और यहीं मुक्त हो जाओ।

अधिकारी के गुण – (गुरु के आश्रय में संतों का संग करके)

- **त्याज्य** - मान, मोह, संग को त्याग दे।
- **ग्राह्य** - अध्यात्म में लगा रहे।
- **अवान्तर फल** - काम व द्वन्द्व से मुक्त होवे।

- **फल** - ऐसा अधिकारी जो अमूढ़ हो अर्थात् बुद्धिमान हो, मुझ परमात्म पद को प्राप्त करता है। इस पद को न सूर्य, न चन्द्र, न अग्नि ही प्रकाशित करते हैं, यह स्वप्रकाश है।

3 जीव प्रकरण

- इस संसार में यह अज्ञानी जीव स्वयं को देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण मानकर पाप-पुण्य का कर्ता , सुख-दु:ख का भोक्ता , जन्म-मरण का धर्ता तथा लोक-लोकान्तर में आने-जाने वाला मानता है जबकि वह परमात्मा का ही अंश है, अजर-अमर-अविनाशी है, व्यापक चेतन है, वह कहीं आता-जाता नहीं है।
- अज्ञानी जीव की ही ऊर्ध्व और अधोगति होती है। जैसे वायु फूलों से गंध निकाल कर ले जाता है वैसे ही यह जीव अपने साथ मन व इन्द्रियों को पुराने शरीर से निकाल कर नये शरीर में ले जाता है।
- जो जीव स्वयं को यह स्थूल व सूक्ष्म देह मानते हैं, 'मैं' और 'मेरा' मानते हैं, उनसे अच्छे और बुरे कर्म करते हैं तो पुन: पुन: कर्मों को भोगने के लिये स्वर्ग-नर्क व अनेक योनियों में जाते हैं।
- जो देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि को अपना स्वरूप मानता है वह विमूढ़ है व जो देहादि को माया का मानता है व स्वयं को आत्मा-परमात्मा जानता है वह ज्ञान चक्षु वाला है।

संस्कारी प्रयत्नशील समाहित चित्त वाला योगी गुरु आज्ञा में रहकर स्वयं को द्रष्टा आत्मा जानता है जो वस्तुत: परमात्मा है। बुद्धि में ऐसा निश्चय होता है कि मैं देह नहीं अपितु आत्मा-परमात्मा हूँ। परन्तु अकृतात्मान: (प्राकृत जीव) **व अचेतस:** (अविवेकी और असावधान) **ऐसा नहीं जान पाते क्योंकि उनमें शास्त्र व गुरु के लिये श्रद्धा नहीं है।**

4 विभूति प्रकरण (V 12 - 15)

- सूर्य, चन्द्र, अग्नि का तेज मैं हूँ। मैं ही देखने, सोचने व बोलने की शक्ति देता हूँ।
- मैं ही अपने बल से पृथ्वी को धारण करके सर्व भूतों को रहने का स्थान देता हूँ।
- मैं ही रस रूप चन्द्रमा होकर अन्न को पौष्टिक व स्वादिष्ट बनाता हूँ।
- मैं ही वैश्वानर रूप अग्नि होकर भोजन को पचाता हूँ।
- मैं ही सबके हृदय में आत्मा रूप से रहता हूँ।

5 ईश्वर प्रकरण

क्षर पुरुष – समस्त शरीर (जाग्रत और स्वप्न)
अक्षर पुरुष – प्रकृति/माया शक्ति (निद्रा रूप), क्षर की अपेक्षा से अक्षर है परन्तु परम अक्षर नहीं है।
उत्तम पुरुष – इसे ही पुरुषोत्तम (क्षर-अक्षर से उत्तम), परमात्मा (परम आत्मा) , बिभर्ति (जगत का पोषण करने वाला), ईश्वर (ईशन करने वाला), अव्यय (अविनाशी) कहते हैं

जीव चेतन व ईश्वर चेतन के एकत्व से लक्षित जो अखण्ड चेतन है वही अखण्ड व्यापक चेतन पुरुषोत्तम है। जो इसे 'अहम्'- 'मैं' रूप से जानता है वही सर्वविद् है, वह सर्वक्रिया एवं सर्वभाव से भगवान् को ही भजता है।

।। इति ।।

—०००—

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – 0

अर्जुन – 1- भारत 2- अनघ

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
20	0	0	20

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम

षोडशोऽध्याय:

(24 श्लोक)

इस अध्याय में दैवी एवं आसुरी दोनों सम्पदा का विवरण है।

- **दैवी सम्पदा मोक्ष का हेतु है अत: इसे जानकर इन्हें धारण करना चाहिये।**
- **आसुरी सम्पदा बन्धन का हेतु है अत: इसका प्रयत्न पूर्वक त्याग करना चाहिये।**

दैवी सम्पदा

26 दैवी गुण

V 01 9 गुण

1.	**अभय**	–	भय से बुद्धि भ्रष्ट होती है और ग़लत काम होता है अत: न डरो न डराओ।
2.	**सत्त्वसंशुद्धि**	–	अन्त:करण को शुद्ध करो । राग-द्वेष से प्रेरित कर्म न करो। रुचि परायण न होकर शास्त्र व विवेक परायण होकर कर्म करो।
3.	**ज्ञानयोग व्यवस्थिति**	–	गुरु का आश्रय लो, सत्संग करो, ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान के साधन कर्मयोग, भक्ति, ध्यान व यज्ञ, दान, तप करो।
4.	**दान**	–	यथा शक्ति सबको विभाग करके अन्न, वस्त्र, धन आदि दान करो।
5.	**दम**	–	इन्द्रिय संयम करो, सभ्य सुसंस्कृत जीवन जियो।
6.	**यज्ञ**	–	अपने वर्णाश्रम के कर्म भगवान् की प्रीति के लिये सेवक भाव से करो।
7.	**स्वाध्याय**	–	आत्म निरीक्षण करो, शास्त्र पारायण करो।
8.	**तप**	–	शरीर, वाणी व मन का तप करो।
9.	**आर्जवम्**	–	सरल, कपट रहित शुद्ध व्यवहार करो।

V 02 11 गुण

1.	**अहिंसा**	–	मन, वाणी, व शरीर से किसी को कष्ट न देना।
2.	**सत्य**	–	सत्य भाषण हो एवं प्रिय, मधुर व हितकर हो अन्यथा मौन रहो।
3.	**अक्रोध**	–	क्रोध आने पर उसे रोक लेना।
4.	**त्याग**	–	हानिकारक प्रिय वस्तु को छोड़ने की सामर्थ्य होना।
5.	**शान्ति**	–	अन्त:करण की शान्ति होना।
6.	**अपैशुनम्**	–	किसी की चुगली न करना।
7.	**दया भूतेषु**	–	सब प्राणियों पर दया करना।
8.	**अलोलुप्त्वम्**	–	अधिक लोभ न करना।
9.	**मार्दवम्**	–	कोमल चित्त होना, कठोरता न होना।
10.	**ह्री**	–	बड़ों व गुरुजनों के सामने बुरा काम होने में लज्जा होना।
11.	**अचापलम्**	–	उचित-अनुचित जानकर कर्म करना, बुद्धि की स्थिरता होना।

V 03 6 गुण

1.	**तेज**	–	प्रभाववान् होना जिसके सामने ग़लत कर्म न हो सके।
2.	**क्षमा**	–	द्वेष व प्रतिशोध की वृत्ति का न होना।
3.	**धृति**	–	उत्साह वृत्ति का होना।
4.	**शौच**	–	बाह्य शुद्धि व इन्द्रिय, मन, बुद्धि की शुद्धता होना।
5.	**अद्रोह**	–	किसी के साथ विश्वासघात न करना।
6.	**नातिमानिता**	–	अपने में बड़प्पन का न होना व दूसरे को छोटा न समझना।

आसुरी सम्पदा

(संक्षेप में)

6 आसुरी गुण

V 04 6 गुण

1.	**दम्भ**	–	पाखण्ड, जो गुण अपने में न हों उसे लोगों को दिखाना।
2.	**दर्प**	–	धन बल, जन बल, शारीरिक बल एवं बुद्धि बल पाकर गर्व होना।
3.	**अहंकार**	–	अपने में अतिशय पूज्य भाव होना, 'मैं-मैं' करना जैसे दक्ष प्रजापति।
4.	**क्रोध**	–	प्रतिशोध वृत्ति, हिंसा एवं क्रोध से बुद्धि नाश।
5.	**पारुष्य**	–	कठोर वचन, कटाक्ष करना, ताना मारना।
6.	**अज्ञान**	–	किसी भी बात को ठीक-ठीक न समझना, समझाने पर भी बात न मानना एवं उल्टा निश्चय होना।

ये कपटी, दुराचारी, झूठ बोलने वाले, उग्र कर्म करने वाले, क्रोधी एवं कठोर वचन बोलने वाले तथा ईश्वर को न मानने वाले होते हैं। इनकी अनेक कामनाएं होती हैं, अनेक चिन्ताएं होती हैं और ये अन्याय से धन इकट्ठा करते हैं। केवल दिखाने के लिये नाम मात्र यज्ञ करते हैं और तिरस्कार करके दान देते हैं।

गति

ऐसी आसुरी सम्पत्ति वालों की अधो गति होती है। ये नरकों में पड़तें हैं। भगवान् इन्हें नीच योनियों में फेंकते हैं अत: इन्हें भगवान् की प्राप्ति नहीं होती।

3 मूल दोष

काम-क्रोध-लोभ तीनों नरक के द्वार हैं, इनमें प्रवेश कर व्यक्ति धर्म व मोक्ष को प्राप्त नहीं करता। मनमाना कर्म जो शास्त्र विधि को त्याग कर किया जाए उससे न इस लोक में सिद्धि, न अन्त:करण शुद्धि, न स्वर्ग प्राप्ति होती है और न मोक्ष प्राप्ति होती है।

परम गति की प्राप्ति

अत: आत्म कल्याण के लिये गुरु निर्देश, शास्त्र आज्ञा व ईश्वर शरणागति लेकर शास्त्रानुकूल कर्म करो जिससे शुद्ध हृदय होकर ज्ञान प्राप्त हो।

।। इति ।।

—०००—

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – 0

अर्जुन – 1- भारत 2- पार्थ 3- पाण्डव 4- कौन्तेय

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
24	0	0	24

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम

सप्तदशोऽध्याय:

(28 श्लोक)

- शास्त्र विधि न जानकर वृद्धजनों के व्यवहार व कुल परम्परा को आदर्श मानकर पूजा करने वालों की श्रद्धा **'सात्विक, राजसी व तामसी'** इनमें से क्या होती है?
- सबकी श्रद्धा पूर्व जनित संस्कार व अन्त:करण की बनावट के अनुसार होती है। यह पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार ही होती है।
- श्रद्धेय को देखकर श्रद्धा का अनुमान होता है –
  - सात्विक श्रद्धा वाले देवी-देवता की पूजा करते हैं।
  - राजसी श्रद्धा वाले यक्ष, किन्नर, गन्धर्व की पूजा करते हैं।
  - तामसी श्रद्धा वाले भूत-प्रेत की पूजा करते हैं।
- अविवेकी तामसी पुरुष घोर तप करके मुझ भगवान को, जो सबके भीतर बैठा हूँ, कष्ट देते हैं।
- आहार, यज्ञ, तप व दान के 3-3 भेद हैं – सात्विक, राजसी व तामसी।

	सात्विक	**राजसी**	**तामसी**
आहार –	रसीला, चिकना, स्थिर व मन को प्रिय	○ अति कटु व खट्टा, ○ अति नमकीन व गर्म ○ अति तीक्ष्ण व रूखा	अधपका, रस रहित, दुर्गन्ध युक्त, बासी, जूठा व अपवित्र (मॉस-मछली)
यज्ञ –	○ शास्त्र विहित, ○ फल की कामना से रहित, ○ कर्तव्य रूप।	○ शास्त्र विहित, किन्तु ○ फल की कामना से, ○ अहंकार एवं दम्भ सहित	○ विधिहीन, ○ श्रद्धारहित, ○ केवल लोक-लाज के लिये किया गया यज्ञ
तप –	○ अफलाकांक्षी, ○ युक्त व ○ आस्तिक बुद्धि से आनन्द सहित।	○ फलाकांक्षी, ○ दम्भी, ○ सत्कार-मान व पूजा की चाह से।	○ स्वयं को पीड़ा देकर दूसरे के विनाश के लिये मूढ़ता पूर्वक किया गया तप।
दान –	○ कर्तव्य व दायित्व बोध से उचित देश-काल-पात्र को दान	○ क्लेश पूर्वक, ○ मान-बड़ाई, ○ रोग निवृत्ति व स्वर्ग प्राप्ति के लिये दान	○ तिरस्कार पूर्वक, ○ अयोग्य देश-काल-पात्र को अविवेक से दिया गया दान

- यज्ञ, दान, तप से पूर्व **'ओम् तत् सत् इति'** ऐसे परमात्मा का नाम लेने से उस यज्ञ, दान, तप के विगुण दूर होते हैं, त्रुटि दूर होती है व कर्म निर्मल हो जाते हैं।

- श्रद्धा रहित किये गये यज्ञ, दान, तप निष्फल होते हैं।

—०००—

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – 1- कृष्ण

अर्जुन – 1- भारत 2- भरतश्रेष्ठ 3- पार्थ

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
28	0	1	27

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

मोक्षसंन्यासयोगो नाम

अष्टादशोऽध्याय:

(78 श्लोक)

विषय

1. **त्याग** (प्रवृत्ति मार्ग) **व संन्यास** (निवृत्ति मार्ग) **के तत्त्व का निरूपण**
2. **कर्मों के पॉच हेतु**
3. **गुण मीमांसा**
4. **वर्ण व्यवस्था**
5. **कर्मजा सिद्धि, नैष्कर्म्य सिद्धि एवं परा भक्ति/निष्ठा**
6. **सम्प्रदाय विधि का वर्णन**
7. **श्रीकृष्ण-अर्जुन सम्वाद की महिमा**

1- **त्याग** (प्रवृत्ति मार्ग) व **संन्यास** (निवृत्ति मार्ग) **के तत्त्व का निरूपण**

a) **त्याग** (प्रवृत्ति मार्ग)
- **तामस त्याग –** अपने नियत कर्मों का मोह से किया त्याग
- **राजसी त्याग –** कर्तव्य कर्म करने में शरीर व मन में क्लेश के भय से कर्मों का त्याग
- **सात्विक त्याग –** अपना कर्तव्य जानकर फलासक्ति-कर्मासक्ति त्याग कर, ईश्वर का सेवक बनकर ईश्वर की प्रीति के लिये कर्म करना

b) **संन्यास** (निवृत्ति मार्ग) **विविदिषा संन्यास**
(गुरु सेवा, भिक्षाटन, ब्रह्मचर्य का पालन, उपरामता)

- प्रवृत्ति मार्गी अन्त:करण शुद्धि प्राप्त कर ज्ञान पश्चात् – परमार्थ योगी
- निवृत्ति मार्गी अन्त:करण शुद्धि प्राप्त कर ज्ञान पश्चात् – परमार्थ संन्यासी
- दोनों ही मार्ग से ज्ञानी बन सकते हैं।
- ज्ञान पश्चात् सर्व कर्म संन्यास → क्योंकि यह ज्ञानी स्वयं को अकर्म आत्मा जानता है एवं सर्व कर्म प्रकृति में देखता है।

2- **कर्म के पॉच हेतु**

सर्व कर्म प्रकृति राज्य में हैं –

1- अधिष्ठान – शरीर
2- कर्ता – साभास बुद्धि
3- करण – मन व 10 इन्द्रियॉ
4- पृथक्-2 चेष्टा – प्राणों की क्रिया
5- दैवम् – इन्द्रिय व अन्त:करण के देवता

3- गुण मीमांसा

- ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति व सुख के सात्विक, राजसी एवं तामसी भेद

4- वर्ण व्यवस्था

- गुण व कर्म के आधार पर 4 वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) व उनके स्वभाव

5- संसिद्धि, नैष्कर्म्य सिद्धि व परानिष्ठा के क्रम का वर्णन

- कर्मों का दोष न लगे इसका उपाय है **सॉख्य योग**, ऐसा मनुष्य सॉख्य योग द्वारा ब्रह्म को आत्मा रूप से जानकर मुक्त होता है।

1-	**संसिद्धि**	– कर्मजा सिद्धि	– निष्काम भाव से स्वधर्म अनुष्ठान
2-	**नैष्कर्म्य सिद्धि**	– सॉख्य योग	– संन्यास पश्चात् ज्ञान निष्ठा
3-	**परा निष्ठा**	– ब्रह्म की आत्मा रूप से प्राप्ति	– स्वरूपावस्थान

6- सम्प्रदाय विधि का वर्णन

a) किसको उपदेश न किया जाए
b) वक्ता को फल – भगवान् को प्राप्त होगा, वह भगवान् को अत्यन्त प्रिय है
c) पठन का फल – भगवान् का ज्ञान-यज्ञ से पूजन होता है
d) श्रवण का फल – पुण्य लोकों की प्राप्ति

- **उपदेश की फल श्रुति** – मोह का नाश एवं स्वरूप ज्ञान

7- श्रीकृष्ण अर्जुन सम्वाद की महिमा

जो यह सुनता अथवा सुनाता है तथा जो तत्त्व का अनुसंधान करता है वहॉ 4 चीज़ें अवश्य हैं यह मेरा निश्चय है –

1. **श्री - समृद्धि** – a) भौतिक b) आध्यात्मिक
2. **विजय** – धर्म की अधर्म पर एवं ज्ञान की अज्ञान पर विजय
3. **भूति** – विकासोन्मुखी समृद्धि
4. **ध्रुव नीति** – उच्च व पवित्र विचार एवं भावना

।। इति ।।

—०००—

इस अध्याय में श्रीकृष्ण व अर्जुन के सम्बोधन

श्रीकृष्ण – 1- महाबाहो 2- हृषिकेश 3- केशिनिषूदन 4- वासुदेव 5- योगेश्वरात्कृष्णा 6- केशव 7- हरे: 8- कृष्णो

अर्जुन – 1- भरतसत्तम 2- अर्जुन 3- महाबाहो 4- धनंजय 5- पार्थ 6- भरतर्षभ 7- परन्तप 8- भारत 9- धनुर्धर:

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
78	5	2	71

ओ३म् तत् सत्

—०००—

बालसेवा

का र्य क्र म

आ	ग	म	न
2	0	1	5

भाग – 2b

श्रीमद्भगवद्गीता

* तत्व अनुसंधान *

युवा संस्करण

प्रस्तुति
2022

श्रीमद्भगवद्गीता

विषय सूची

* युवा संस्करण *

क्रम संख्या	विषय	कूट संकेत	पृष्ठ संख्या
1	मंगलाचरण	Prayer - A	53
2	श्री गुरु-स्तोत्रम्	Prayer - B	54
3	निर्वाणषटकम्	Prayer - C	56
4	लिंगाष्टकम्	Prayer - D	57
5	सरस्वती स्तुति	Prayer - E	58
6	वेद (अपौरुषेय)	YE-BS-II - 01	59
7	ब्रह्म, माया, ईश्वर, जीव और जगत	YE-BS-II - 02	60
8	पंचभूतों का पंचीकरण, ३ देह संरचना, अवस्थात्रय एवं पंचकोश विवेक	YE-BS-II - 03	61
9	भगवद्गीता का स्वरूप एवं गीता महात्म्य (भाग-1)	YE-BS-II - 04	64
10	गीता महात्म्य (भाग-2)	YE-BS-II - 05	68
11	Ch.01 – अर्जुनविषादयोगो नाम	YE-BS-II - 06	69
12	Ch.02 – सॉख्ययोगो नाम	YE-BS-II - 07	78
13	Ch.03 – कर्मयोगो नाम	YE-BS-II - 08	88
14	Ch.04 – ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम	YE-BS-II - 09	97
15	Ch.05 – कर्मसंन्यासयोगो नाम	YE-BS-II - 10	104
16	Ch.06 – आत्मसंयमयोगो नाम	YE-BS-II - 11	109
17	Ch.07 – ज्ञानविज्ञानयोगो नाम	YE-BS-II - 12	116
18	Ch.08 – अक्षरब्रह्मयोगो नाम	YE-BS-II - 13	121

19	Ch.09 – राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम	YE-BS-II - 14	127
20	Ch.10 – विभूतियोगो नाम	YE-BS-II - 15	135
21	Ch.11 – विश्वरूपदर्शनयोगो नाम	YE-BS-II - 16	144
22	Ch.12 – भक्तियोगो नाम	YE-BS-II - 17	152
23	Ch.13 – क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम	YE-BS-II - 18	160
24	Ch.14 – गुणत्रयविभागयोगो नाम	YE-BS-II - 19	166
25	Ch.15 – पुरुषोत्तमयोगो नाम	YE-BS-II - 20	173
26	Ch.16 – दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम	YE-BS-II - 21	180
27	Ch.17 – श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम	YE-BS-II - 22	186
28	Ch.18 – मोक्षसन्न्यासयोगो नाम	YE-BS-II - 23	191
29	सरस्वती स्तुति (अर्थ सहित)	YE-BS-II - 24	199

।। इति ।।

ओ३म् तत् सत्

—०००—

मं ग ला च र ण

शंकरमठ संप्रदाय शान्ति मन्त्र

ओ३म् नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकर्तृभ्यो, वंशर्षिभ्यो महत्भ्यो नमो गुरुभ्य:।
सर्वोपप्लवरहित: प्रज्ञानघन: प्रत्यगर्थो ब्रह्मैवाहमस्मि।। १ ।।
ओ३म नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यासं शुकं गौड़पदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम्।। २ ।।
श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम्।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद् गुरूरुन्संततमानतोऽस्मि।। ३ ।।
श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम्।।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।। ४ ।।
शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुन: पुन:।। ५ ।।
ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नम:।। ६ ।।

अनध्यायमंगलपाठ:

अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिम्, स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मंगलं परम् ।। १ ।।
अतिकल्याणरूपत्वान्नित्यकल्याणसंश्रयात्, स्मर्तृणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तन्मंगलं विदु:।। २ ।।
ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मण: पुरा, कण्ठं भित्वा विर्निर्यातौ तस्मान्मांगलिकावुभौ ।। ३ ।।

ओ३म् तत्सत् परब्रह्मणे नम:

—०O०—

श्री गुरु-स्तोत्रम्

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। १ ।।

अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानान्जन-शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। २ ।।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। ३ ।।

स्थावरं जंगमं व्याप्तं यत्किंचित् सचराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। ४ ।।

चिन्मयं व्यापि यत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। ५ ।।

सर्व-श्रुति-शिरोरत्न विराजित-पदाम्बुजः ।
वेदान्ताम्बुज-सूर्यो यः तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। ६ ।।

चैतन्यः शाश्वतः शान्तः व्योमातीतो निरन्जनः ।
बिन्दु-नाद-कलातीतः तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।। ७ ।।

ज्ञान-शक्ति-समारूढ़ः तत्त्वमाला-विभूषितः ।
भुक्ति-मुक्ति-प्रदाता च तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। ८ ।।

अनेक-जन्म-सम्प्राप्त कर्म-बन्ध-विदाहिने ।
आत्मज्ञान-प्रदानेन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। ९ ।।

शोषणं भवसिन्धोश्च ज्ञापनं सार-सम्पदः ।
गुरोपादको सम्यक तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। १० ।।

न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः ।
तत्त्वज्ञानात् परं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। ११ ।।

मन्नाथः श्रीजगन्नाथः मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः ।
मदात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। १२ ।।

गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवतम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। १३।।

ध्यान मूलं गुरुर्मूर्ति, पूजामूलं गुरुर्पदम् ।
मंत्र मूलं गुरुर्वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरुर्कृपा ।। १४।।

अखण्डानंद बोधाय शिष्यसंतापहारिणीम् ।
सच्चिदानंद रूपाय रामाय गुरुवे नमः ।। १५ ।।

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षीभूतं,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ।। १६।।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम्देव देव ।। १७।।

—०००—

निर्वाणषटकम्

मनो बुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहम् न च श्रोत्र जिह्वे न च घ्राण नेत्रे,
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायु: चिदानन्द रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।

न च प्राण संज्ञो न वै पंचवायु: न वा सप्तधातुर्न वा पंचकोश:,
न वाक्पाणिपादौ न चोपस्थपायू चिदानन्द रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।

न मे द्वेष रागौ न मे लोभ मोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्य भाव:,
न धर्मो न चार्थो न कामो ना मोक्ष: चिदानन्द रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दु:खम् न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा: न यज्ञा:,
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता चिदानन्द रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।

न मृत्युर्न शंका न में जातिभेद: पिता नैव मे नैव माता न जन्म,
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य: चिदानन्द रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।

अहं निर्विकल्पो निराकार रूपो विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्,
सदामे समत्वं न मुक्तिर्न बन्ध: चिदानन्द रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।

—०००—

लिंगाष्टकं

ब्रह्ममुरारि सुरार्चित लिङ्गं निर्मलभासित शोभित लिङ्गम् ।
जन्मज दुःख विनाशक लिङ्गं तत्.प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥ १ ॥

देवमुनि प्रवरार्चित लिङ्गं कामदहन करुणाकर लिङ्गम् ।
रावण दर्प विनाशन लिङ्गं तत्.प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥ २ ॥

सर्व सुगन्ध सुलेपित लिङ्गं बुद्धि विवर्धन कारण लिङ्गम् ।
सिद्ध सुरासुर वन्दित लिङ्गं तत्.प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥ ३ ॥

कनक महामणि भूषित लिङ्गं फणिपति वेष्टित शोभित लिङ्गम् ।
दक्ष सुयज्ञ विनाशन लिङ्गं तत्.प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥ ४ ॥

कुङ्कुम चन्दन लेपित लिङ्गं पङ्कज हार सुशोभित लिङ्गम् ।
सञ्चित पाप विनाशन लिङ्गं तत्.प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥ ५ ॥

देवगणार्चित सेवित लिङ्गं भावै.र्भक्तिभिरेव च लिङ्गम् ।
दिनकर कोटि प्रभाकर लिङ्गं तत्.प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥ ६ ॥

अष्टदलोपरिवेष्टित लिङ्गं सर्वसमुद्भव कारण लिङ्गम् ।
अष्टदरिद्र विनाशन लिङ्गं तत्.प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥ ७ ॥

सुरगुरु सुरवर पूजित लिङ्गं सुरवन पुष्प सदार्चित लिङ्गम् ।
परात्परं परमात्मक लिङ्गं तत्.प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥ ८ ॥

लिङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेत्.शिव सन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥

लिंगाष्टकं संपूर्ण

—०००—

सरस्वती स्तुति

* अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपंचकम्, आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् *

चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम, मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती ।। १ ।।

नमस्ते शारदे देवि काश्मीरपुरवासिनी, त्वामहं प्रार्थये नित्यं विद्यादानं च देहि मे ।। २ ।।

अक्षसूत्रांकुशधरा पाशपुस्तकधारिणी, मुक्ताहारसमायुक्ता वाचि तिष्ठतु मे सदा ।। ३ ।।

कम्बुकण्ठी सुताम्रोष्ठी सर्वाभरणभूषिता, महासरस्वती देवी जिह्वाग्रे संनिविश्यताम् ।। ४ ।।

या श्रद्धा धारणा मेधा वाग्देवी विधिवल्लभा, भक्तजिह्वाग्रसद्ना शमादिगुणदायिनी ।। ५ ।।

नमामि यामिनीनाथलेखालंकृतकुन्तलाम्, भवानीं भवसन्तापनिर्वापणसुधानदीम् ।। ६ ।।

यः कवित्वं निरातंकं भक्तिमुक्ती च वांछति, सोऽभ्यैर्च्यैनां दशश्लोक्या नित्यं स्तौति सरस्वतीम् ।। ७ ।।

तस्यैवं स्तुवतो नित्यं समभ्यर्च्य सरस्वतीम्, भक्तिश्रद्धाभियुक्तस्य षण्मासात्प्रत्ययो भवेत् ।। ८ ।।

ततः प्रवर्तते वाणी स्वेच्छया ललिताक्षरा, गद्यपद्यात्मकैः शब्दैरप्रमेयैर्विवक्षितैः ।। ९ ।।

अश्रुतो बुध्यते ग्रन्थः प्रायः सारस्वतः कविः, इत्येवं निश्चयं विप्राः सा होवाच सरस्वती ।। १० ।।

मयि जीवत्वमीशत्वं कल्पितं वस्तुतो नहि, इति यस्तु विजानाति सनेछन्नपि मुच्यते ।। ११ ।।

अभेद दर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः, स्नानं मनोमल त्यागः शौच इन्द्रिय निग्रह ।। १२ ।।

-०००-

बीज मंत्र — उँ ऐं ह्रीं क्लीं श्री सरस्वत्यै नमः

-०००-

या कुन्देन्दु तुषार हार धवला, या शुभ्र वस्त्रावृता ।
या वीणा वर दण्ड मण्डित करा, या श्वेत पद्मासना ।।
या ब्रह्मा च्युत शंकर प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता ।
सा माम् पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।।

वेद

अपौरुषेय

- यह भगवान् की वाणी है
- यह अपौरुषेय है क्योंकि मनुष्य के द्वारा नहीं कही गयी।
- वेदव्यासजी भगवान् विष्णु के अवतार हैं। उन्होंने भगवान् की वाणी को सुन कर उसका विस्तार किया एवं 4 भागों में विभाजन किया।
- वेदों में कुल 1 लाख मंत्र हैं।

वेदों के तीन काण्ड हैं :—

1 कर्मकाण्ड – इसमें 80000 मंत्र हैं।
2 भक्तिकाण्ड – इसमें 16000 मंत्र हैं।
3 ज्ञानकाण्ड – इसमें 4000 मंत्र हैं, इसे वेदान्त - उपनिषद् भी कहते हैं।

वेदों के 4 भाग, उनके ऋषि एवं उपवेद :—

वेद	ऋषि	उपवेद
ऋग्वेद	पैल ऋषि	आयुर्वेद
सामवेद	जैमिनी ऋषि	गंधर्व वेद
यजुर्वेद	वैशम्पायन ऋषि	धनुर्वेद
अथर्ववेद	अंगिरा ऋषि/सुमन्त ऋषि	स्थापत्य वेद/अर्थशास्त्र

उपनिषद् - यह ज्ञानकाण्ड है, वेदों के अन्तिम भाग होने से इसे वेदान्त कहते हैं। कुल 1180 उपनिषद् हैं।

- ऋग्वेद में 21 उपनिषद्
- सामवेद में 1000 उपनिषद्
- यजुर्वेद में 109 उपनिषद्
- अथर्ववेद 50 उपनिषद्

इन 1180 में से 108 उपनिषद् प्रमुख हैं व 108 में से 10 उपनिषद् मुख्य हैं।

1. ईश 2. केन 3. कठ 4. प्रश्न 5. मुण्डक
6. माण्डूक्य 7. ऐतरेय 8. तितिर 9. छान्दोग्य 10. वृहदारण्यक

प्रस्थान त्रयम्

(जिन शास्त्रों से स्वरूपावस्थान हो)

1. श्रुति प्रस्थान – ज्ञानकाण्ड, उपनिषद्
2. स्मृति प्रस्थान – श्रीमद्भगवद्गीता
   – मनु स्मृति (धर्म शास्त्र)
3. सूत्र प्रस्थान – ब्रह्म सूत्र
   – नारद भक्ति सूत्र

ब्रह्म, माया, ईश्वर, जीव और जगत्

जगत् में ब्रह्म और माया केवल २ ही हैं बस इन्हें ही जानना है।

ब्रह्म (ज्ञान स्वरूप)	**माया** (अज्ञानरूपा)
आत्मा	अनात्मा
पुरुष	प्रकृति
क्षेत्रज्ञ	क्षेत्र
देही / शरीरी	देह / शरीर
द्रष्टा / SEER	दृश्य / SEEN
सत् / REAL	असत् / EPHIMERAL
सत्-चित्-आनंदरूप	असत्-जड़-दु:खरूप
इन्हीं को सीता-राम, लक्ष्मी-नारायण, गौरी-शंकर कहते हैं।	

ब्रह्म ही माया से ईश्वर, जीव और जगत् के रूप में दिखाई देता है।
जगत् — चर-अचर जीवों के अनंत शरीरों के समूह को जगत् कहते हैं। इसी को संसार भी कहते हैं। जगत् = 'गच्छति इति जगत्'- अर्थात् जो चलता जा रहा है
संसार = 'संसरति इति संसार:'- अर्थात् पल पल में जिसका संसरण / परिवर्तन / विनाश हो रहा है।

*** ईश्वर की प्रेरणा से माया ही पलभर में सारे शरीर बना देती है ***

	जाग्रत (कार्य माया)	**स्वप्न** (कार्य माया)	**सुषुप्ति** (कारण माया) * अज्ञान रूपा *
जीव	व्यष्टि जीव का **स्थूलशरीर**	व्यष्टि जीव का **सूक्ष्मशरीर**	व्यष्टि जीव का **कारणशरीर**
ईश्वर	(सभी जीवों के स्थूलशरीर मिलकर होता है ईश्वर का स्थूलशरीर) **विराट**	(सभी जीवों के सूक्ष्मशरीर मिलकर होता है ईश्वर का सूक्ष्मशरीर) **हिरण्यगर्भ**	(सभी जीवों के कारणशरीर मिलकर होता है ईश्वर का कारणशरीर) **अव्याकृत्**
ब्रह्म ← सबका आधार - अधिष्ठान →			

ईश्वर के शरीर :— राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, गणेश, कच्छ, मच्छ, वामन, वाराह, नरसिंह आदि
जीव के शरीर :— मनुष्य, देव-दानव, यक्ष-किन्नर, पशु-पक्षी, मक्खी-मच्छर, कीट-पतंगे, वृक्ष-पर्वत, नदी आदि

पंचभूतों का पंचीकरण

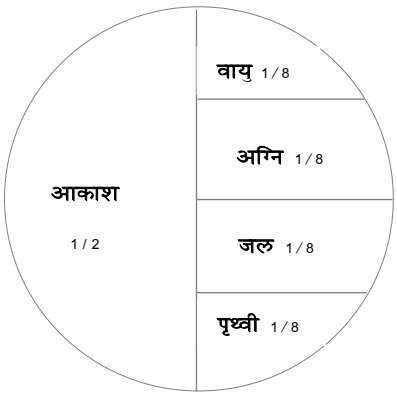

स्थूल शरीर **तमोगुण**	पंचीकृत् पंचभूतों से रचित	
सूक्ष्म शरीर **सत्वगुण** & **रजोगुण**	अपंचीकृत् पंचभूतों के **सत्वगुण** से →	* पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ * चतुष्ट्य अन्त:करण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार)
	अपंचीकृत् पंचभूतों → के **रजोगुण** से	* पॉच कर्मेन्द्रियॉ * पॉच प्राण (प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान)
कारण शरीर **अज्ञान**	अपने को शरीर मानना	

तीन देह संरचना, अवस्थात्रय एवं पंचकोश विवेक

प्रकृति और पुरुष दो ही हैं। पुरुष अनादि अनंत है तथा प्रकृति अनादि सान्त है। प्रकृति से 'सत्-रज-तम्' तीन गुण और इन ३ गुणों से 'आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी' पंचभूत उत्पन्न होते हैं, तथोपरान्त पूर्ण सृष्टि :-

पंचभूतों के पंचीकरण से उत्पन्न २५ तत्वों से 'स्थूल शरीर' की रचना निम्न प्रकार होती है :-

आकाश	→	काम	क्रोध	लोभ	मोह	भय
वायु	→	फैलाना-सिकोड़ना	स्थूल-कृष होना	पलक झपकाना	स्वॉस लेना छोड़ना	मुँह खोलना बन्द करना
अग्नि	→	क्षुधा	तृषा	आलस्य	मोह	मैथुन
जल	→	मूत्र	श्लेष्म	रक्त	शुक्र	स्वेद
पृथ्वी	→	अस्थि	चर्म	नाड़ी	रोम	मॉस

अपंचीकृत पंचमहाभूतों अथवा तन्मात्राओं से १६ तत्व के 'सूक्ष्म शरीर' की रचना निम्न प्रकार होती है :-

		तन्मात्रा	इन्द्रिय	विषय	देवता
पॉचों तन्मात्राओं के सत्वगुण से	५ ज्ञानेन्द्रियॉ	आकाश	**श्रोत्र**	शब्द	दिग्
		वायु	**त्वचा**	स्पर्श	वायु
		अग्नि	**चक्षु**	रूप	सूर्य
		जल	**रसना**	रस	वरुण
		पृथ्वी	**घ्राण**	गन्ध	अश्विनि
	चतुष्अन्तःकरण	वायु	**मन**	संकल्प—विकल्प	चन्द्रमा
		अग्नि	**बुद्धि**	निश्चय	ब्रह्मा
		जल	**चित्त**	चिन्तन	वासुदेव
		पृथ्वी	**अहंकार**	कर्तृत्व.भोक्तृत्व	रुद्र
पॉचों तन्मात्राओं के रजोगुण से	५ कर्मेन्द्रियॉ	आकाश	**वाक्/मुँह**	वाणी	अग्नि
		वायु	**पाणि/हाथ**	ग्रहण—अग्रहण	इन्द्र
		अग्नि	**पाद/पैर**	गमनागमन	विष्णु
		जल	**उपस्थ/मूत्रेन्द्रिय**	मूत्र विसर्जन	प्रजापति
		पृथ्वी	**पायु/गुदा**	मल विसर्जन	यम
	५ प्राण	प्राण - स्वॉस/शुद्धवायु लेना अपान - स्वॉस छोड़ना + गुदामार्ग से अशुद्ध वायु त्याग समान - नाभिस्थान, खाये-पिये का पाचन, रस रक्त बनाना, नाड़ियों द्वारा वितरण व्यान - व्याप्त होकर रहती है + जोड़ों/अंगों का हिलना उदान - कंठस्थान, खाये-पिये अन्न-जल का विभाजन			

साभास बुद्धि (चिदाभास) को अपने चेतन/ब्रह्म स्वरूप का अज्ञान ही कारण शरीर है.
'कारण शरीर' ही प्रकृति का स्वरूप है वह अविद्या/अज्ञान/निद्रारूप है। इस अज्ञानरूप प्रकृति से **'सत्—रज—तम्'** तीन गुण होते हैं व ये ही जीव को बन्धन करते हैं।

अवस्थात्रय		तीन देह		पंचकोश		संरचना
जाग्रत	→	स्थूल देह (व्यक्त-साकार)	→	अन्नमय कोश	→	अन्न
स्वप्न	→	सूक्ष्म देह (व्यक्त-निराकार)	→	प्राणमय कोश	→	५ कर्मेन्द्रियॉ + ५ प्राण
			→	मनोमय कोश	→	५ ज्ञानेन्द्रियॉ + मन
			→	विज्ञानमय कोश	→	५ ज्ञानेन्द्रियॉ + बुद्धि
सुषुप्ति	→	कारण देह (अव्यक्त-निराकार)	→	आनंदमय कोश	→	स्वरूप अज्ञान

सृष्टि क्रम :-

माया/अज्ञान/निद्रा/प्रकृति → तीनगुण → पंचभूत → अपंचीकृत पंचभूत → सूक्ष्म शरीर **स्वप्न**

पंचीकृत पंचभूत → स्थूल शरीर **जागृत**

सुषुप्ति

आत्मा/परमात्मा → माया/निद्रा → आकाश → वायु → अग्नि → जल → पृथ्वी → औषधियॉ → अन्न → भूत-प्राणी

अन्न से सात धातुएं → १. रस → २. रक्त → ३. मॉस → ४. मेदा → ५. अस्थि → ६. मज्जा → ७. वीर्य

जीव, चेतन आत्मा पुरुष है। जब वह अज्ञानवश प्रकृति का संग करता है यानि वह अपना स्वरूप न जानकर सूक्ष्म शरीर में अभिमान करके कर्ता–भोक्ता तथा स्थूल शरीर में अभिमान करके स्त्री–पुरुष, ब्राह्मण–क्षत्रिय आदि और जन्मने–मरने वाला मान बैठता है। जीव का स्वरूप दोनों शरीर से भिन्न है, वह इन सबमें है पर इन सबसे अलग एवं न्यारा है व इन सबको देखता मात्र है। जीव का वास्तविक स्वरूप तो सच्चिदानंद ही है।

प्रिय मोद प्रमोद – ये कारण शरीर के धर्म हैं, मुझ चेतन आत्मा के ये धर्म नहीं हैं। हमारा चेतन आत्मा तो तीनों शरीरों से न्यारा असंग, अकर्म, द्रष्टा–साक्षी है। अज्ञानतावश जीवात्मा को संग भ्रान्ति हो गयी है। द्रष्टा कभी दृश्य से मिल नहीं सकता, भ्रम के कारण ही वह स्वयं को कर्ता–भोक्ता मानकर ८४ लाख योनियों में भटकता फिरता है।

१६ तत्त्व के सूक्ष्म शरीर में ही सारे कर्म होते हैं, स्थूल शरीर तो केवल रहने का स्थान मात्र है ।

—०००—

भगवद्गीता का स्वरूप

१. ग्रन्थ का नाम — श्रीमद्भगवद्गीता
२. वक्ता — स्वयं भगवान् नारायण श्रीकृष्ण
भगवान् — जिसमें छ: भग हों :—
१.समग्र धर्म २.ऐश्वर्य ३.यश ४.श्री ५. वैराग्य ६.मोक्ष
ईश्वर — षडैश्वर्य युक्त :—
१.ज्ञान २.शक्ति ३.ऐश्वर्य ४.बल ५.वीर्य ६.तेज
३. श्रोता — अर्जुन, उत्तम अधिकारी
- गुण — परम वैरागी, उद्यमी, संयमी, गुडाकेश — निद्रा विजयी, काम विजयी
- सव्यसॉची — Ambidextrous
- धनन्जय — Collector of wealth
- परन्तप — शत्रु को भयभीत करने वाला
- महाबाहो — सर्व समर्थ
- महातपस्वी — शिव की आराधना कर पशुपतास्त्र प्राप्त किया

४. ग्रन्थनकर्ता — भ० वेदव्यास
५. लेखन — श्री गणपति
६. विषय — अद्वैत अमृत — ब्रह्म विद्या
ब्रह्म—आत्म ऐक्यम्
That Thou Art = तत्त्वमसि
I am That = अहं ब्रह्मास्मि
७. प्रयोजन — प्रवृत्ति मार्गी → अभ्युदय — सुख—समृद्धि प्राप्ति , चित्त शुद्धि
— निवृत्ति मार्गी → नि:श्रेयस — मोक्ष प्राप्ति
— संसार के दु:खों का नाश, परम सुख की प्राप्ति
८. आकार — १८ अध्याय व ७०० श्लोक वाली
९. वास स्थान — मध्येभारत
१०. सम्बन्ध — हे अम्ब (मात्र स्मृति)
११. उपदेश का हेतु — शरणागति, प्रपत्ति, मुमुक्षुत्वं
Pure dedicated questioning mind.

जैसे शरीर को जन्म देने वाली मॉ है वैसे ही साधक को जन्म देने वाली गीता मॉ हैं। यह बताती हैं कि शरीर (BMI) भोग के लिये नहीं अपितु अपना स्वरूप जानने के लिये उपकरण मात्र (only an instrument) है।

अत: गीता मॉ :—
- साधक को जन्म देने वाली हैं
- अच्छे विचारों का पालन—पोषण करने वाली हैं — Nurturer of Good / Nobel thoughts
बुरे विचारों से उसकी रक्षा करने वाली है — Protector from evil thoughts

गीता जयन्ती

मार्गशीर्ष की शुक्ल एकादशी (मोक्षदा एकादशी) को गीता जी की जयन्ती मनायी जाती है क्योंकि गीता जी का अवतरण हुआ। महाभारत में कुल १८ पर्व हैं। उसके भीष्म पर्व में २५वें अध्याय में गीता जी का अवतरण हुआ एवं ४२वें अध्याय तक चलीं अत: इन्हें भीष्म पर्वणी भी कहते हैं। ये महाभारत के हृदय स्थान में स्थित हैं।

साधक की प्रतिज्ञा (Vow / Promise)

- हे अम्ब ! हे भगवत् गीते ! मैं साधक आपका अनुसन्धान करता हूँ। मैं अपने आपको आपसे जोड़ता हूँ। मैं आपके उपदेश को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करता हूँ।
- मेरा जीवन कामना एवं लौकिक जीवन से प्रेरित न हो।
- जन्म–मरण, भूख–प्यास, सुख–दु:ख – ६ उर्मियों से मेरा जीवन प्रभावित न हो।
- मैं अपना जीवन गीता माँ से प्राप्त विवेक के अनुसार जिऊँ।
- मैं अपने जीवन में धर्म का पालन करूँ :–

अहिंसा (Non-violence)	सत्यं (Truth)	अस्तेय (Non-stealing)
ब्रह्मचर्य (Sense control)	अपरिग्रह (Non-hoarding)	अक्रोध (Non-anger)
गुरुसुश्रुषा (Reverence to Guru)	शौचं (Cleanliness)	सन्तोषं (Satisfaction)
आर्जवम् (Simplicity)	अमानित्वम् (Non-vanity)	अदम्भित्वम् (Non-hypocrisy)
आस्तिकत्वम् (Belief in God)		

शुद्ध अन्त:करण से प्रश्न करें –

क्या मेरा वास्तविक स्वरूप देह है या मैं इस देह का द्रष्टा–साक्षी चेतन तत्त्व Pure Consciousness हूँ जो उक्त ६ उर्मियों से प्रभावित नहीं होता?

उत्तर –

I am the **SEER** of the BMI and not the BMI, e.g. I live in the house but I am not the house.

—०००—

गीता महात्म्य

भाग – १

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतम् महत् ।।

सर्व उपनिषद् – गाय
गोपाल नन्दन कृष्ण – दोग्धा (दूध दोहने वाले)
पार्थ–अर्जुन – वत्स (बछड़ा)
सुधीर्भोक्ता – शुद्ध एवं एकाग्र बुद्धि वाले श्रोता गण
गीतामृतम् महत् – दुग्ध जो अमृत समान है

अन्य अमृत जो गौण रूप से अमृत हैं :–

१. अग्धौ – समुद्र के १४ रत्नों में से एक अमृत
२. विधौ – चन्द्रमा में अमृत
३. चन्द्रमुखी कान्ता – के मुख में अमृत
४. वासुकी – नाग लोक में अमृत
५. देवताओं के – स्वर्ग लोक में अमृत

भक्त गण इन सब अमृतों का खण्डन करते हैं और कहते हैं :–

- समुद्र में अमृत है तो वह खारा क्यों है और उसका जल पीकर मरते क्यों हैं?
- चन्द्रमा में अमृत है तो उसका क्षय क्यों होता है? अमावस्या एवं प्रतिपदा को तो वह दिखाई भी नहीं देता।
- चन्द्रमुखी कान्ता के मुख दर्शन में अमृत है तो नित्य प्रति मुख दर्शन करने वाले पति की मृत्यु ही क्यों होती है?
- वासुकी नाग लोक में अमृत है तो सर्पों के मुख में विष क्यों? उन सर्पों की मृत्यु क्यों? एवं सर्पों के काटने से मनुष्य की मृत्यु क्यों?
- स्वर्ग लोक में अमृत तो स्वर्ग से देवताओं का पतन क्यों? उनका पुण्य क्षीर्ण होने पर मृत्यु लोक में आना क्यों?

अतः सिद्ध हुआ कि यह सब गौंण रूप से अमृत हैं। मुख्य अमृत तो भगवत् गीता है जो भगवान् कृष्ण (जो पद्मनाभ विष्णु हैं) के मुखारविन्द से निकली है तथा महात्माओं के कण्ठ में बसती है। यह भगवत् गीता वक्ता एवं श्रोता दोनों को अमृतत्तव प्रदान करती है अतः –

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिः सृता ।।

गीता सुगीता करने योग्य है अर्थात् श्रीगीताजी को भली प्रकार पढ़ कर अर्थ और भाव सहित अन्त:करण में धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है जो कि स्वयं पद्मनाभ भगवान् श्री विष्णु के मुखारविन्द से निकली हुई हैं अत: अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन है?

स्वयं श्री भगवान् ने भी इस महात्म्य का वर्णन किया है – गी०अ० १८, श्लोक ६८ से ७१ तक

श्लोक ६८ – जो पुरुष मुझमें परम प्रेम कर इस परम रहस्ययुक्त गीता शास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा वह मुझको ही प्राप्त होगा इसमें कोई संशय नहीं।

श्लोक ६९ – उससे बढ़ कर मेरा प्रिय कार्य करने वाला कोई भी नहीं है तथा पृथ्वी भर में उससे बढ़ कर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्य में होगा भी नहीं।

श्लोक ७० – जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के सम्वाद रूप गीता शास्त्र को पढ़ेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञान यज्ञ से, जो सब द्रव्य यज्ञों से उत्तम है, पूजित होऊँगा – ऐसा मेरा मत है।

श्लोक ७१ – जो मनुष्य श्रद्धा युक्त और दोष दृष्टि से रहित होकर इस गीता शास्त्र का श्रवण करेगा वह भी पापों से मुक्त होकर उत्तम कर्म करने वालों के श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त करेगा।

०००

वसुदेव सुतं देवं, कंसचाणूर मर्दनम् ।
देवकी परमानन्दं, कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ।।

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्।।

(To memorize)

—०००—

गीता महात्म्य

(वाराह पुराण)

भाग – २

पृथ्वी देवी का प्रश्न :– इस संसार में मनुष्यों को अचल भक्ति कैसे प्राप्त होती है?

श्रीविष्णु उवाच :–

1. नित्य गीता पारायण से इस लोक में सुख व कर्म से निलिप्तता होती है।
2. नित्य गीता के ध्यान से महापाप-अतिपाप स्पर्श नहीं करते।
3. जहॉ गीता का पारायण होता है वहॉ प्रयाग आदि सर्वतीर्थ विराजते हैं तथा वहॉ समस्त देवता, ऋषि, योगी, नाग, नारद, उद्धव व गोप-गोपिकाएं सहायक होती हैं।
4. जहॉ गीता का विचार, पठन-पाठन व श्रवण होता है वहॉ भगवान विष्णु का वास होता है
5. गीता में मेरा निवास है। गीता के ज्ञान द्वारा मैं तीनों लोकों का पालन करता हूॅ।
6. गीता मेरी ब्रह्मरूपा परा विद्या है।
7. प्रतिदिन १८ अध्याय के पारायण से ज्ञानसिद्धि व इसके द्वारा परम पद की प्राप्ति होती है।
8. प्रतिदिन आधी गीता (९ अध्याय) के पारायण से गोदान का पुण्य प्राप्त होता है।
9. प्रतिदिन गीता के तिहाई अंश (६ अध्याय) के पाठ से गंगा स्नान का फल प्राप्त होता है।
10. प्रतिदिन गीता के छटे अंश (३ अध्याय) के पारायण से सोमयोग का फल प्राप्त होता है।
11. प्रतिदिन गीता के एक अध्याय के पारायण से रुद्रलोक में (रुद्र-गण के रूप में) निवास प्राप्त होता है।
12. जो एक अध्याय के चौथाई अंश का प्रतिदिन पारायण करता है वह मनवन्तर के लिये मनुष्यत्व को प्राप्त होता है अर्थात् निम्न योनियों में जन्म नहीं लेता है।
13. जो मनुष्य गीता के १०, ७, ५, ४, ३, २, १, या १/२ श्लोक का प्रतिदिन पारायण करता है वह अयुत वर्षों के लिये चन्द्रलोक को प्राप्त होता है।
14. पुनः पुनः गीता पाठ करके मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त करता है।
15. मरण काल में गीता शब्द का उच्चारण करने वाले की भी सद्गति होती है।
16. गीता के श्रवण से महापापी व्यक्ति भी वैकुण्ठ को प्राप्त होता है व भ०विष्णु के साथ वास करता है।
17. अनेक प्रकार के कर्मों को करता हुआ भी जो नित्य गीतार्थ का ध्यान करता है उसे जीवन मुक्त ही जानना चाहिये। मृत्यु पश्चात् वह विदेह मुक्ति प्राप्त करता है।

जो इस महात्म्य के साथ गीता का पाठ करता है उसे उक्त कथनानुसार फल अवश्य ही प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं।

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

अर्जुनविषादयोगो नाम

प्रथमोऽध्याय:

(47 श्लोक)

रूप रेखा

	विषय	विवरण
1	विषाद का हेतु	○ अर्जुन का मोह
2	युद्ध का हेतु	○ धृतराष्ट्र का मोह व दुर्योधन का द्वेष ○ संसार में शोक का हेतु है अज्ञान → मोह → द्वेष जनित कर्म → पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम्
3	दुर्योधन व अर्जुन चरित्र	
4	जीवन जीने का तरीका	○ 4 बार नारायण स्मरण करने का लाभ
5	सेना का विवरण	○ पाण्डव सेना – 7 अक्षौहिणी ○ कौरव सेना – 11 अक्षौहिणी
6	सेनापति	○ पाण्डव सेनापति – धृष्टद्युम्न (द्रुपद पुत्र) ○ कौरव सेनापति – भीष्म आदि
7	शंखों का विवरण	○ युद्ध घोषणा
8	अर्जुन का युद्ध में प्रवेश	○ अर्जुन का वीर वृत्ति से युद्ध में प्रवेश ○ भगवान् को युद्ध क्षेत्र के मध्य में रथ की स्थापना का आदेश
9	अर्जुन के मोह का जाग्रत होना	○ मोह युक्त शोक से शरीर एवं मन पर प्रभाव
10	अर्जुन का विषाद ग्रस्त होना	○ युद्ध न करने के हेतु देना, ○ विषाद से ग्रस्त होकर युद्ध विमुख होना, हताश होना
11	भगवान् की अर्जुन को फटकार व अर्जुन की शरणागति	○ अध्याय 2 के V-01 से V-10 तक

1. **अर्जुन के विषाद का हेतु**
   - यह अध्याय गीता जी का प्रवेश द्वार है। अर्जुन के विषाद का कारण मोह है अर्थात् शरीर में अहंता व परिवार जन में ममता जिससे वह इस युद्ध का वास्तविक ध्येय, उद्देश्य ही भूल गया कि ये एक धर्म युद्ध था।

- कौरव – दुर्योधन आदि आसुरी सम्पदा के प्रतीक हैं, पाण्डव – अर्जुन आदि दैवी सम्पदा के प्रतीक हैं।
- भगवान् के अवतार का प्रयोजन साधु, ब्राह्मण, गौ की रक्षा व असुरों का नाश अत: भगवान धर्म के पक्ष में हैं।
- उद्योग पर्व में भगवान् ने हस्तिनापुर जाकर इस युद्ध को टालने के लिये केवल पॉच गॉवों की मॉग की लेकिन दुर्योधन ने सुई की नोक के बराबर भी पृथ्वी देने से मना कर दिया तथा कहा कि पाण्डव यदि वीर हैं तो युद्ध करके ले लें। भीष्म व द्रोण के मना करने पर भी अपने भाइयों व शकुनि मामा से कहा कि कृष्ण को बन्दी बना लो। इस पर भगवान् हॅसे और अपनी माया से अपना परम ऐश्वर्य विश्व विराट रूप दिखाया। वह रूप सहस्त्र सूर्यों के प्रकाश से भी अधिक था उसको देखकर दुर्योधन आदि सब मूर्छित हो गये। अब भगवान् ने इस युद्ध को अवश्यम्भावी जाना क्योंकि दुर्योधन अति तमोगुणी था, अपना हित-अनहित नहीं देखता था। उस दिन से ७तवें दिन युद्ध आरम्भ हुआ। वेदव्यासजी द्वारा संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की गयी जिससे धृतराष्ट्र युद्ध के समाचार जान सकें।

2. युद्ध का हेतु

महाभारत का युद्ध 18 दिन चला जिसमें 10वें दिन जब भीष्म पितामह शरशैय्या पर गिरे तब धृतराष्ट्र ने संजय से प्रश्न किया — धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में युद्ध की इच्छा से एकत्र हुए मेरे व पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया ?

(V - 1.01) – इस प्रश्न में संसार के शोक का हेतु छिपा हुआ है, वह है मोह-अहंता-ममता (मैं और मेरे, तू और तेरे) इस मोह के कारण ही राग-द्वेष की उत्पत्ति, फिर उससे जनित पाप व पुण्य कर्म तथा उसका फल सुख-दु:ख और पुन: पुन: शरीर की प्राप्ति।

मोह का हेतु – अज्ञान (अपने को सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा न जानकर यह शरीर मानकर उसमें अहंता करना व शरीर के सम्बन्धियों में ममता करना)

अज्ञान → मोह → कर्म → शोक → बन्धन 'पुनरपि जननम्, पुनरपि मरणम्' (संसार सागर)

अत: ज्ञान से मुक्ति है अर्थात् स्वयं के स्वरूप को जानकर ही संसार बन्धन से मुक्ति सम्भव है।

3. दुर्योधन का अर्थ

नाना प्रकार की दुष्टता करके, कूट नीति द्वारा, धन प्रपंच से जीवन को चलाने वाला स्वार्थी मनुष्य जिसका दृष्टिकोण है कि मैं ज़िन्दा रहूँ, मैं राजा बनूँ भले ही सारी सेना मर जाए।

अर्जुन का अर्थ –

सरल, सीधा, ज्ञानार्जन के लिये तत्पर मनुष्य। अर्जुन के रथ व सारथि दोनों का वर्णन है।

4. जीवन जीने का तरीका

- इस मनुष्य शरीर को जीवन यात्रा के लिये उपयोगी रथ के रूप में समझें।
- इस शरीर रूपी रथ को **'मैं'** न समझें।
- इन्द्रिय रूपी घोड़ों को सफेद रखें अर्थात् इनसे ग़लत कर्म न करें, इन्हें सात्विक रखें।
- बुद्धि रूपी सारथि के रूप में कृष्ण का आह्वाहन करें।
- आप किसी का पक्ष इसलिये न लें क्योंकि वह आपका अपना है अपितु इसलिये लें क्योंकि वह अच्छा है व धर्म के पक्ष में है। यदि अपना मानकर पक्ष लेते हैं तो अन्तरात्मा

में दुर्योधन प्रकट हो रहा है और यदि योग्यता स्वीकार करके पक्ष लेते हैं तो अन्दर अर्जुन प्रकट होता है।

अर्जुन रथी व कृष्ण सारथि हैं अर्थात् **'नर और नारायण'**, एक का नाम **जीवात्मा** व एक **विश्वात्मा**। जो जीव नारायण को सारथी बनाता है वह सफल होता है और जो अकेले चलता है वह नष्ट हो जाता है अत: स्वयं को असहाय कभी न समझो, यह जानते रहो कि आप जो भी काम करने जा रहे हैं नारायण आपके साथ हैं इसलिये कार्य प्रारम्भ करने से पहले 4 बार नारायण का स्मरण कर लें इससे मूल उद्गम (Source) से आपका सम्बन्ध बना रहेगा,

अत: **4 बात स्मरण रखें** :—

- परमेश्वर से सम्बन्ध रखने से संसार में व्यवहार करने में शक्ति बनी रहती है।
- जीवन धारा कभी विच्छिन्न नहीं होती।
- बुद्धि पर बुद्धि निकलती रहती है।
- जीवन में सदा आनंद बना रहता है।

5. **सेना का विवरण**

कौरव = 11 अक्षौहिणी सेना (इसमें 1 अक्षौहिणी नारायणी सेना)
पाण्डव = 7 अक्षौहिणी सेना
1 अक्षौहिणी सेना = रथ, हाथी, घोड़े व पद सैनिक
इसमें अर्धरथी, रथी, अतिरथी, महारथी सम्मिलित थे।

6. **सेनापति का विवरण**

कौरव - 01st से 10th दिन तक सेनापति – भीष्म
11th से 15th दिन तक सेनापति – द्रोणाचार्य
16th व 17th दिन सेनापति – कर्ण
18th (अन्तिम) दिन सेनापति – शल्य
(कौरव सेना में मुख्य योद्धा – 7) - (V 8)

पाण्डव - सेनापति – धृष्टद्युम्न
रक्षक – भीम
(पाण्डव सेना में मुख्य योद्धा – 17) - (V 4 to V 6)

7. **दोनों सेनाओं का क्रमशः शंखनाद से युद्ध घोष**

भीष्म ने दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिये सिंह की तरह दहाड़ कर बजाया तथा बाकी सेना ने अनुशासन रहित शंख व रणभेरी बजायी।
पाण्डवों द्वारा अनुशासन बद्ध शंख ध्वनि — कृष्ण (पांचजन्य) → अर्जुन (देवदत्त) → युधिष्ठिर (अनंतविजय) → भीम (पौण्ड्र) → नकुल (सुघोष) → सहदेव (मणिपुष्पक) - (V 15 & V 16)

8. **अर्जुन का वीर वृत्ति से युद्ध में प्रवेश** – (शत्रु पक्ष के सैन्य निरीक्षण के लिये)
   - अर्जुन द्वारा भगवान् को रथ के दोनों सेनाओं के मध्य में स्थापित करने की आज्ञा।
   - भगवान् द्वारा दोनों सेनाओं के बीच में भीष्म, द्रोणाचार्य एवं समस्त राजाओं के सामने रथ को स्थापित करना व इस प्रकार कहना कि हे पार्थ! युद्ध के लिये जुटे इन कौरवों को देख (V 25) जिससे अर्जुन का मोह जाग्रत हुआ।

9. **मोह का शरीर पर परिणाम** — (मोह युक्त शोक से शरीर व मन पर प्रभाव) - (V 29 & V 30)

- अंग शिथिल हो रहे हैं
- शरीर में कंपन व रोमांच हो रहा है
- हाथ से गांडीव फिसल रहा है
- त्वचा जल रही है
- मुख सूख रहा है
- मन भ्रमित हो रहा है
- सिर घूम रहा है इसलिये मैं खड़ा भी नहीं हो पा रहा हूँ

भगवान् चाहते थे कि अर्जुन राग-द्वेष से अभिभूत होकर युद्ध न करे अपितु धर्म बुद्धि से इस युद्ध को कर्तव्य मानकर करे अत: उन्होंने ऐसा किया। यदि भगवान् दुर्योधन-दु:शासन के समक्ष रथ खड़ा करते तो अर्जुन तुरन्त ही युद्ध प्रारम्भ कर देता परन्तु वह द्वेष प्रेरित युद्ध होता।

10. **अर्जुन का विषाद ग्रस्त होना तथा युद्ध न करने के अनेक हेतु देना**— (V 31 to V 47)
(विपरीत बुद्धि)
    - युद्ध में अनिष्ट सूचक अपशकुन देख रहा हूँ जैसे उल्कापात्, असमय ग्रहण एवं पशु पक्षियों की भयंकर बोली
    - युद्ध अभिलाषी स्वजन समुदाय को कैसे मारूँ?
    - मैं न तो विजय, न राज्य, न सुख ही चाहता हूँ
    - इस राज्य, सुख व भोग को कैसे भोगूँगा जब सुहृद ही न होंगे
    - धृतराष्ट्र पुत्रों को मार कर हमें क्या प्रसन्नता अपितु आतताइयों को मारकर पाप ही लगेगा। आततायी :— (आततायी को देखते ही मारने की आज्ञा है)
        1- घर में आग लगाने वाला
        2- विष देने वाला
        3- नि:शस्त्र पर शस्त्र से आक्रमण करने वाला
        4- धन को चुराने वाला
        5- भूमि को चुराने वाला
        6- पत्नी को चुराने वाला
    - ये लोग लोभ से भ्रमित युद्ध में दोष नहीं देख रहे हैं परन्तु हम तो कुल नाश से उत्पन्न दोष जानते हैं तो हम ये पाप क्यों करें?
    - कुल नाश से सनातन कुलधर्म का नाश, पाप बढ़ने से कुल की स्त्रियाँ दूषित, वर्णसंकर की उत्पत्ति व पितरों की अधोगति।
    - अत: यदि ये शस्त्रधारी धृतराष्ट्र पुत्र मुझ नि:शस्त्र को रण में मार भी डालें तो ये अधिक कल्याणकारी होगा। ऐसा कह कर गाण्डीव को त्याग कर शोकाकुल होकर रथ के पिछले भाग में बैठ गया।

11. **भगवान की अर्जुन को फटकार व अर्जुन की शरणागति —** (V 2.01 to V 2.10)
भगवान ने पूर्ण अध्याय में बस अर्जुन को सुना अब द्वितीय अध्याय में कहते हैं कि —
हे अर्जुन! यह कल्मश (मोह) तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुआ? यह इस लोक में कीर्ति, परलोक में स्वर्ग देने वाला नहीं है तथा यह आर्यों द्वारा सेवित नहीं है। हे परन्तप! तू वीर है तू नपुन्सकता को प्राप्त न हो, हृदय की क्षुद्र दुर्बलता को त्याग दे।

अर्जुन कहता है — ये मेरे पितामह व गुरु हैं इनको वाणी से भी क्षति नहीं पहुँचानी चाहिये तो शस्त्र से कैसे क्षति करूँ? ये तो पूजा के योग्य हैं मैं इन्हें नहीं मारूँगा।

तब भगवान कहते हैं — यह सारा संसार मेरा विश्व विराट रूप है। अर्जुन! तुम मेरे उत्तम अंग हो व दुर्योधन आदि अधम अंग हैं। यदि मेरे किसी अंग में फोड़ा हो जाय तो मेरी आज्ञा से तुम वैद्य बन कर उस रोगी अंग का छेदन करो एवं क्योंकि ये भीष्म व द्रोण यद्यपि धर्मात्मा हैं परन्तु ये अधर्म की सहायता कर रहे हैं अत: इनका भी छेदन करो, तुम्हें पाप नहीं लगेगा अपितु पुण्य ही प्राप्त होगा।

12. **अर्जुन को गीता का उपदेश देने का हेतु — अर्जुन की शरणागति** (V 1.07)

अर्जुन शिष्य बना और बोला मैं युद्ध नहीं करूँगा, मेरे देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्राण आपको समर्पित हैं, इन्हें आप चाहे रखें अथवा मार दें लेकिन मैं युद्ध नहीं करूँगा। तब भगवान् ने युद्ध रोक कर अर्जुन को गीता का उपदेश दिया।

—०००—

प्रथम अध्याय की सीख

विषाद, **'योग'** (अर्थात् परमात्मा को मिलाने का साधन) बन सकता है
यदि जीव को सद्गुरु मिल जाय।

जीव मन की समस्या का समाधान कैसे करता है?

- समस्या को अनदेखा करके (By ignoring)
- मन को बहला कर (By distracting)
- समस्या का कारण किसी दूसरे को बता कर (By accusing)
- स्वयं को बेहोश करके (By dousing the sorrow)

समाधान कैसे करना चाहिये? जीवन जीने का तरीका सीखो!

1. अपनी समस्या को जानो (क्रोध, ममत्व, मोह आदि)।
2. धर्म व शास्त्र की शरण लो।
3. ईश्वर व गुरु से सहायता माँगो।
4. जानो कि आप दूसरों को नहीं बदल सकते परन्तु अपनी प्रतिक्रया व मन बदल सकते हैं।
5. राग-द्वेष के वश में न आओ, कर्तव्य बुद्धि से कर्म करो, क्या सही है व क्या ग़लत है ये जान कर कर्म करो।
6. जीवन में संयम लाओं (Discipline yourself)
7. यदि ग़लत कर्म (पापम्) हो जाय तो प्रायश्चित कर्म करो।

—०००—

प्रथम अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन

1	V – 14, 37	माधव	मा = लक्ष्मी, धव = पति • लक्ष्मीपति • महाऐश्वर्यवान्
2	V – 15, 20, 24	ऋषिकेश	ऋष + केश = छोटे केश ऋषीक + ईश = इन्द्रियों के स्वामी, प्रेरक अन्तर्यामी, सर्वज्ञ
3	V – 21	अच्युत	• अचल, महाधैर्यवान् • जो अपने स्थान से च्युत न हो
4	V – 31	केशव	क = ब्रह्मा – उत्पत्तिकर्ता, आ – विष्णु ईश = शिव – संहारकर्ता व = इन तीनों का स्वरूप तथा • केशि राक्षस को मारने वाले • लम्बे सुन्दर बालों वाले विष्णु
5	V – 28, 32	कृष्ण	• जो अपनी ओर आकर्षित करे (यह सम्बोधन गीता में ९ बार आया है) • सच्चिदानंद – सबसे प्रिय नाम
6	V – 32	गोविन्द	गो = इन्द्रिय • इन्द्रियों के ईश
7	V – 35	मधुसूदन	मधु = मोह-ममता सूदन = नाशक • मोह-ममता के नाशक • मधु दैत्य को मारने वाले
8	V – 36, 39, 44	जनार्दन	• सर्व भूतों के पालक एवं पोषक • प्रलय काल में संहारकर्ता
9	V – 41	वार्ष्णेय	वृष्णि वंश में उत्पन्न होने के कारण

प्रथम अध्याय में अर्जुन के सम्बोधन

1	V – 14, 20	पाण्डव	• यह सम्बोधन अर्जुन के लिये है क्योंकि वे पाण्डवों में सर्वश्रेष्ठ हैं। **'वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः'** - (V - 10.37)
2	V – 15	धनंजय	• यह अर्जुन के लिये प्रेम सम्बोधन है- (V - 10.37) • अर्जुन ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के लिये अनेक राजाओं से धन एकत्र किया। • जिसने धन की तृष्णा पर विजय प्राप्त की।
3	V - 24	गुडाकेश	गुडा + केश = घुँघराले बाल गुडाका + ईश = निद्रा पर विजय प्राप्त करने वाला • यह अर्जुन के तप का बल दिखाता है
4	V – 25	पार्थ	पृथा पुत्र (कुन्ती पुत्र) प्रेम का सम्बोधन पार्थिव (पंचभूत शरीर) **'यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः'** - (V - 18.78)
5	V – 27	कौन्तेय	• कुन्ती पुत्र • क्षत्राणी का पुत्र जिसने कहा कि क्षत्राणी धर्मयुद्ध के लिये ही प्रसव करती है अतः गरिमा का भान कराने वाला सम्बोधन
6	V - 47	अर्जुन	• सरल, निष्पाप • जिसने बहुत पुण्यों का अर्जन किया जिससे भ०कृष्ण उसे सखा रूप में प्राप्त हुए

कुल श्लोक	धृतराष्ट्र	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
47	01	24	22	0

ओम् तत् सत्

—०००—

महाभारत युद्ध की सेनाओं का विवरण

कौरव = 11 अक्षौहिणी सेना
पाण्डव = 7 अक्षौहिणी सेना
कुल = 18 अक्षौहिणी सेना

1 अक्षौहिणी का आकार :— 21,870 रथ (1 : 1 : 3 : 5)
21,870 हाथी
65,610 घोड़े
109,350 सैनिक

2,18,700 कुल

युद्ध कौशल में निपुणता व शक्ति-सामर्थ्यानुसार तुलनात्मक वर्गीकरण

शक्ति परिमाण		पद्वी	योद्धाओं के नाम
		अर्धरथी ⇨	अनेक
12 अर्धरथी	=	1 रथी ⇨	शिखण्डी, युधिष्ठिर, भीम, दुर्योधन, नकुल, सहदेव एवं दुर्योधन तथा उसके 98 भाई
12 रथी	=	1 अतिरथी ⇨	5 द्रौपदी पुत्र, प्रतिविन्ध्य, सुतसोम (व्यूह रचना ज्ञाता), कृपाचार्य, धृष्टद्यम्न, शल्य, सात्यकी, युयुत्सु (कुरु)
12 अतिरथी	=	1 महारथी ⇨	द्रुपद, अभिमन्यु, विराट, द्रोण, अश्वत्थामा तथा '**भीष्म, अर्जुन और कर्ण**' - ये 3 महारथी 2 महारथियों के बराबर थे।
12 महारथी	=	1 अतिमहारथी ⇨	कृष्ण एवं परशुराम
24 अतिमहारथी	=	1 महामहारथी ⇨	शिव एवं काली अश्वत्थामा में भी क्षमता थी (रुद्रावतार व चिरंजीवी होने से)

दिवस	व्यूह	सेना	व्यूह रचनाकार
Day - 1	सर्वतोमुखी दण्ड व्यूह	कौरव	भीष्म
	वज्र व्यूह	पाण्डव	अर्जुन
Day - 2	गरुड़ व्यूह	कौरव	भीष्म
	क्रौंच व्यूह	पाण्डव	अर्जुन
Day - 3	गरुड़ व्यूह	कौरव	भीष्म
	अर्धचन्द्र व्यूह	पाण्डव	अर्जुन
Day - 4 to 9	मकर व्यूह, मंडल व्यूह, श्येन व्यूह, कूर्मा व्यूह, त्रिशूल व्यूह, सर्वतोभद्र व्यूह, नक्षत्र व्यूह, शकट व्यूह	कौरव पाण्डव	भीष्म अर्जुन
Day - 10	असुर व्यूह	कौरव	भीष्म → शरशैया पर गिरे
	देव व्यूह	पाण्डव	अर्जुन
Day - 11&12	?	कौरव	द्रोणाचार्य
	?	पाण्डव	अर्जुन
Day - 13	चक्रव्यूह	कौरव	द्रोणाचार्य → अभिमन्यु को वीरगति
	—	पाण्डव	—
Day - 14	चक्रशकट व्यूह	कौरव	द्रोणाचार्य
	खड्ग सर्प व्यूह	पाण्डव	अर्जुन
Day - 15	पद्म व्यूह	कौरव	द्रोणाचार्य → द्रोणाचार्य वध
	वज्र व्यूह	पाण्डव	अर्जुन
Day - 16	मकर व्यूह	कौरव	कर्ण
	अर्धचन्द्र व्यूह	पाण्डव	अर्जुन
Day - 17	सूर्य व्यूह	कौरव	कर्ण
	महिष व्यूह	पाण्डव	अर्जुन
Day - 18	सर्वतोभद्र व्यूह	कौरव	शल्य
	क्रौंच व्यूह	पाण्डव	अर्जुन
	क्रौंच व्यूह की रचना CRANE पक्षी के आकार में होती है जिसके सिर के स्थान पर सेनापति एवं दोनों पंखों के स्थान पर 2 महारथी होते हैं। (Both offensive & defensive)		

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

साँख्ययोगो नाम

द्वितीयोऽध्याय:

(72 श्लोक)

1- प्रस्तावना

- अधिकारी प्रकरण (वैराग्यवान्)
- गुरु प्रसक्ति (श्रद्धा से शरणागत)
- जिज्ञासा का स्वरूप (श्रेय साधन बताओ)

अधिकारी प्रकरण (**V 01 – 10**)

अर्जुन के विषाद का हेतु मोह तथा मोह का हेतु बना कर्तव्य के सम्बन्ध में अनिश्चय। कर्ता कौन है? इसे लेकर भ्रम हुआ – मैं क्षत्रिय राजकुमार हूँ अथवा पौत्र या शिष्य या कुलधर्म रक्षक हूँ। अत: उसकी तेजस्विता, ओजस्विता, विद्वता, कर्म कौशल सब उसके लिये अनुपलब्ध हो गये। उसे स्मरण रहना चाहिये था कि वह धर्म युद्ध करने आया है अत: कर्म में महत्वपूर्ण प्रेरक तत्त्व है 'शुद्ध द्रष्टिकोण'।

I- कर्म के लौकिक प्रेरक तत्त्व
  - केवल देह के लिये कर्म – स्वार्थी
  - धन के लिये कर्म – क्षुद्र व्यक्ति
  - परिवार के लिये कर्म – साधारण जीवन

II- धार्मिक प्रेरक तत्त्व
  - समाज, राष्ट्र रक्षा व सेवा – राजा व समाज सेवी
  - ईश्वर के लिये कर्म – कर्मयोग
  - स्वरूपावस्थान के लिये कर्म – मोक्ष पुरुषार्थ

गुरु प्रसक्ति व जिज्ञासा का स्वरूप (**V 07**)

कार्पण्यदोषोपहतस्वभाव: पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेता:,
यच्छ्रेय: स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यतेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। BG-2.07 ।।

अर्जुन के मन में द्वन्द्व है कि क्या करूँ क्या न करूँ? क्योंकि –

- स्वयं के पक्ष में भाव व विचार दोष हैं
- भगवान् का पक्ष प्रबल है, युक्ति युक्त व न्याय संगत है

वह जान गया कि मेरी बुद्धि से समाधान नहीं अत: भगवान् की शरणागति लेता है, शरण तो लेता है लेकिन भगवान के कथनानुसार उनके कहे हुए को जीने में स्वयं को असमर्थ पा रहा है। **शिष्य** स्वतन्त्र है गुरु बनाने में किन्तु **गुरु** स्वतन्त्र नहीं है शिष्य बनाने में, गुरुत्व शिष्य की अपेक्षा से ही है।

कार्पण्य दोष – अज्ञानता रूपी दोष के कारण मोह से मेरा वीर क्षात्र स्वभाव बाधित हो गया है अन्यथा मैंने तो भगवान् शिव से भी युद्ध किया है। धर्म के बारे में भी मेरी बुद्धि निर्णय नहीं ले पा रही है, मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में हूँ मुझे निश्चित करके वह बताइये जिसमें मेरा श्रेय हो।

* भगवान् का उपदेश द्वारा अर्जुन के शोक को अनुचित बताना *

2 आत्म दृष्टि (V 11 – 25)

V - 11 (**प्रतिज्ञा**) - हे अर्जुन! तुम प्रज्ञावान् पण्डितों की तरह बात करते हो और शोक भी करते हो लेकिन **'नानुशोचन्ति पण्डिता:'** जो किसी भी व्यक्ति या विषय को लेकर शोक करते हैं वे मूढ़ अथवा उन्मत्त होते हैं।

पण्डित के शोक न करने के हेतु - 1. अज्ञान से मुक्ति

2. पण्डा बुद्धि – आत्मा-परमात्मा एकत्व ज्ञान प्राप्त

– स्वयं को नित्य निर्विकार आत्मा जानते हैं

वह इस शरीर को **'मैं'** व शरीर से सम्बन्धित लोगों को **मेरा** नहीं मानते अत: मृत व जीवित लोगों के संयागे-वियोग से प्रभावित नहीं होते। इस जगत को भगवान् की लीला/माया जानकर संसार में उदासीन रह कर धर्म पूर्वक अपनी भूमिका निभाते हैं। **ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या**।

V - 12 - तीनों काल में आत्मा सत्य है नित्य है सर्वदा है। जन्म से पहले जब ये सब शरीर नहीं थे, जब हैं तथा निधन पश्चात् जब ये शरीर नहीं रहेंगे तब भी हम थे हम हैं व हम रहेंगे क्योंकि चेतन आत्मा का न जन्म है न मरण है।

V - 13 - देही आत्मा निर्विकार है, देह में विकार आते हैं – कुमारावस्था-युवावस्था-वृद्धावस्था। देह के अवस्था परिवर्तन से ये परिवर्तन देही को प्राप्त **'से'** होते हैं उसी प्रकार देही को देह की मृत्यु पश्चात् नये देह की प्राप्ति होती है। ऐसा जानकर विवेकी मोहित नहीं होता। देही (जीव) तो इस देह में बैठकर उस देह के परिवर्तन को देखने वाला है।

अर्जुन का प्रश्न — मेरी समस्या लौकिक है और आप पारमार्थिक समाधान दे रहे हैं!

V - 14 - लौकिक समस्या का समाधान है तप बुद्धि से **'द्वन्द्व'** सहना,

(द्वन्द्व नाम जोड़े का है जैसे सुख-दु:ख, मान-अपमान, शीत-उष्ण जो इन्द्रिय और विषय के संयोग से प्राप्त होता है)

जन्म-मरण हैं देह के सुख-दु:ख मन के जान,
भूख-प्यास हैं प्राण के सॉख्य शास्त्र निर्वाण।।

शरीर व मन के दु:ख जाग्रत-स्वप्न तक ही हैं निद्रा में नहीं क्योंकि वहॉ तन व मन नहीं हैं बस आनंद ही आनंद है अत: आने जाने वाले दु:खों को सहो।

V - 15 - जो द्वन्द्व में व्यथित नहीं होते वे अमृतत्त्व के अधिकारी हैं।

V - 16 - सत् आत्मा का अभाव नहीं, असत् मायाकृत संसार का भाव नहीं जैसे बन्ध्या का पुत्र।

V - 17 - सत् आत्मा का लक्षण – ये अविनाशी है, इस सर्वव्यापक सर्वकारण आत्मा का विनाश करने में कोई समर्थ नहीं है, आत्मा अवध्य है।

V - 18 - देह = अन्तवन्त, देही/शरीरी = नित्य, अनाशि, अप्रमेय। ऐसा जानकर युद्ध कर।

V - 19 - जो ऐसा जानता है कि आत्मा मरता है या मारता है वह आत्मा को नहीं जानता।

V - 20 - आत्मा निर्विकार है क्योंकि आत्मा में षट् विकार का अभाव है – न जायते, न म्रियते, दर्शन से अदर्शन व अदर्शन से दर्शन नहीं होता, पुराण - वृद्धि नहीं होती, न हन्यते हन्यमाने शरीरे - विपरीत परिणाम प्राप्त नहीं।

जन्म	अस्ति	वर्धते	विपरिणमते	अपक्षीयते	विनश्यते	→ **शरीर**
अज	न भविता	पुराण	न हन्यते हन्यमाने	शाश्वत्	नित्य	→ **आत्मा**

V - 21 - निर्विकार होने से कर्ता, कर्म व कर्तृत्व का निषेध अत: कैसे किसी को मारेगा या मरवायेगा?

V - 22 - जैसे वस्त्रों के त्याग से पुरुष ज्यों का त्यों रहता है वैसे ही शरीरों के त्याग से आत्मा ज्यों का त्यों रहता है। ऐसे ही शरीर, मन, बुद्धि के परिवर्तनों में द्रष्टा आत्मा ज्यों का त्यों निर्विकार रहता है।

V - 23 - आत्मा निर्विकार कैसे है? - 'निरवयव' अर्थात् अवयव रहित व अति सूक्ष्म होने से। पृथ्वी के कार्य अस्त्र.शस्त्र आत्मा का छेदन नहीं करते पर शरीर का छेदन करते हैं।
अग्नि देही का नाश नहीं करता पर जलाकर देह का नाश करता है।
जल देही का नाश नहीं करता पर गलाकर देह का नाश करता है।
वायु देही का नाश नहीं करता पर सुखाकर देह का नाश करता है।
ये चार भूत अपने कारण आकाश का ही नाश नहीं कर सकते क्योंकि आकाश सूक्ष्म, निष्क्रिय, निरवयव व निर्विकार है अत: आकाश से भी सूक्ष्म आत्मा का नाश कैसे करेंगे?

उपसंहार

V - 24 & 25 - आत्मा के लक्षण – आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, नित्य, सर्वगत्, स्थाणु, अचल, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य, अविकार्य है अत: अपने स्वरूप आत्मा को इस प्रकार से जानकर एवं ये शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति सब दृश्य हैं माया राज्य के हैं, आते जाते व बदलते हैं → **नानु शोचितुम् अर्हसि।**

3. जीव दृष्टि

V - 26 & 27 - जीव दृष्टि से भी शोक अनुचित है जो स्वयं को शरीर संगी मानकर गमनागमन करता है। यदि तुम आत्मा को नित्य न मानकर शरीर के साथ अपनी उत्पत्ति व शरीर की मृत्यु के साथ अपनी मृत्यु मानते हो अर्थात् स्वयं को शरीर संगी जीव मानते हो तो भी **'न एवं शोचितुमर्हसि'** इतना शोक उचित नही क्योंकि – जीव सतत् प्रवाही है, सब जीवों की यात्रा अपनी अपनी है कुछ समय के लिये संयोग फिर वियोग अत: सम्बन्धों में स्वस्थ सहयात्री बनकर जीवन जियो।

तुलसी इस संसार में भॉति भॉति के लोग,
सबसे हिल मिल चालिये नदी नाव संयोग।।
'सब चला-चली का खेल'

धर्म का आदेश इसी जीव को है जिससे उसकी ऊर्ध्वगति हो। जन्म व मृत्यु जीवन के सत्य हैं, जिसका जन्म है उसकी मृत्यु व जिसकी मृत्यु उसका जन्म अवश्यम्भावी है – इस सत्य को जानकर स्वीकार करो क्योंकि बिना उपाय वाला विषय है।

4. देहात्मवाद

V - 28 - शोक अनुचित है, **'तत्र का परिदेवना'** – व्यर्थ प्रलाप क्यों? यदि तुम स्वयं को केवल पंचभूत से बना शरीर मानते हो, शरीर से अलग शरीरी/देही/आत्मा नहीं मानते हो तो पंचभूत में कौन किसका सम्बन्धी अत: शोक कैसा? इस व्यक्ति के जीवन का एक ही लक्ष्य – यही एक जीवन है इसे भरपूर जियो, अर्थ व काम उसके प्रयोजन हैं, धर्म और मोक्ष उसके प्रयोजन नहीं हैं। ये शरीर जन्म से पहले अव्यक्त – मध्य में व्यक्त – फिर निधन के बाद अव्यक्त, अत: जो केवल कुछ समय के लिये प्रकट हो उसके लिये क्या शोक?

V - 29 - आत्मा को आश्चर्य रूप अर्थात् दुर्विज्ञेय बताना (कठिनता से समझ आना)

आत्मा का वक्ता - आश्चर्य रूप

आत्मा का श्रोता - आश्चर्य रूप

सुनकर भी आत्मा को न जानना – आश्चर्य रूप क्योंकि वह साधन सम्पन्न नहीं।

V - 30 - ग्यारहवें श्लोक/**V 11** की प्रतिज्ञा का **V 30** में उपसंहार

हे अर्जुन! मैं ब्रह्म ही सर्व देहों में देही/आत्मा रूप से विराजमान हूँ अत: अवध्य हूँ इसलिये सम्पूर्ण प्राणियों के लिये तुझे शोक नहीं करना चाहिये।

5. लौकिक न्याय

V - 31 to 37 - तक शोक-मोह को दूर करने का लौकिक न्याय बताया अर्थात् कर्तव्य पर दृष्टि रख कर स्वधर्मानुसार (वर्णाश्रम व पदाधिकार अनुसार) कर्म करना।

- मनुष्य को पूर्व जन्म के गुण व कर्मानुसार एक स्वभाव प्राप्त होता है जिसके अनुसार वर्ण विभाजन है। यदि हम स्वभावानुसार अर्थात् वर्ण व आश्रम धर्म का पालन करेंगे तो वासना का क्षय होगा, चित्त शुद्ध होगा व आध्यात्मिक प्रगति होगी।
- यदि स्वधर्म का पालन नहीं करेंगे तो पूर्व वासना क्षय नहीं होगी अत: 'स्वधर्म त्याग'. आध्यात्मिक प्रगति का बाधक रूप प्रत्यवाय पाप बनेगा तथा साथ ही देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण से परधर्म पालन होगा जो भयावय है अर्थात् पाप देने वाला है।
- तू क्षत्रिय है अत: तेरा स्वधर्म है युद्ध करना, यह योद्धा के लिये स्वर्ग प्राप्ति का द्वार है।
- यदि तू धर्मयुद्ध नहीं करेगा तो स्वधर्म व कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा।
- सब तेरी अपकीर्ति का कथन करेंगे एवं सम्मानित व्यक्ति के लिये यह मरने से भी अधिक है।
- जो तुझे महारथी समझ कर सम्मान करते थे वे कहेंगे तू भय के कारण युद्ध से भाग गया।
- तेरे सामर्थ्य की निन्दा करके तेरे लिये न कहने योग्य वचन कहेंगे।

अब आदेश –

- यदि तू मारा गया तो वीर स्वर्ग की प्राप्ति।
- यदि जीत गया तो पृथ्वी का राज्य भोगेगा।
- अत: युद्ध का निश्चय करके खड़ा हो जा।

यहाँ युद्ध स्वधर्म है परन्तु युद्ध बाकी सब कर्मों का एक उपलक्षण है अत: प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शास्त्रीय व व्यवहारिक पहचान प्राप्त परिस्थितियों में यथाशक्ति कर्म करना स्वधर्म है।

6. निष्काम भाव से स्वधर्म करने का विज्ञान – गीताजी का सुदर्शन

V - 38 - **कर्म के आरम्भ में** –

कर्म किसके लिये? - ईश्वर प्रीति के लिये, तब कर्म सरस होता है।

कर्म कैसे करें? - सम बुद्धि से ईश्वर के लिये, 6 परिणामों में सम रह कर–'सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय' में आसक्ति रहित होकर कर्म करें।

कर्म करते समय –

दृष्टि कर्तव्य पर रहे फल पर नहीं। यह कर्म हमें सेवारूप से प्राप्त है, कर्म करने की योग्यता, सामर्थ्य व सामग्री भगवान ने दी है।

कर्म पश्चात् –

फल को प्रसाद बुद्धि से ग्रहण – पाप क्षयं, तितीक्षा, मंगल बुद्धि

*राजा व सैनिक दृष्टान्त - सैनिक राजा का, हथियार राजा के, शत्रु राजा का व जय-पराजय राजा की परन्तु शत्रु के अनेकों सैनिकों को मारने पर भी सैनिक को पाप नहीं लगता बल्कि उसे वीरता के लिये पुरस्कार ही मिलता है।

7. सम्पूर्ण गीता में दो बुद्धि का निरूपण

- सॉख्य बुद्धि - ज्ञानयोग के विषय में
- योग बुद्धि - कर्मयोग के विषय में

V - 39 - सॉख्य बुद्धि –

1. आत्मा के याथात्म्य के विषय में बुद्धि।
2. ब्रह्म-आत्मा के एकत्व के ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति।

'एकम् एव परम् ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन'

3. माया से उत्पन्न गुण ही गुण में बरतते हैं ऐसा समझ कर दे०इ०म०बु०प्रा० से होने वाले समस्त कर्मों में कर्तापन के अभिमान से मुक्त होकर सर्वव्यापी सच्चिदानंद ब्रह्म में एकीभाव से स्थित रहना ही सॉख्य बुद्धि है।
4. यह ज्ञान-अज्ञान एवं अज्ञान जनित संसार के हेतु शोक मोह आदि दोष की निवृत्ति का साक्षात् कारण है।

योग बुद्धि –

1. फल व कर्म आसक्ति को त्याग कर भगवान् की आज्ञानुसार समत्व बुद्धि से कर्म करना - (निष्काम कर्म) कर्म योग है।
2. यह अन्त:करण शुद्धि का साक्षात् कारण है तथा ज्ञान प्राप्ति के लिये परम्पर्यार्थ साधन है।
3. यह व्यक्ति सुखपूर्वक सरसता से अनायास ही ईश्वर, वेद व गुरु कृपा से शुद्ध अन्त:करण प्राप्त कर आत्म लाभ लेकर कर्म बन्धन को प्रहास्त करके जन्म-मरण से मुक्त होता है।

8. योग बुद्धि की महिमा/स्तुति

V - 40 & 41 -

- आरम्भ का नाश नहीं व कोई क्रम अथवा निश्चित कर्म मात्रा की अपेक्षा नहीं।
- प्रत्यवाय रूपी दोष नहीं तथा पाप-पुण्य को छुड़ाने वाली।
- थोड़ा भी करने से जन्म-मरण रूपी भय से रक्षा क्योंकि यही बुद्धि सॉख्य में प्रतिष्ठित कर स्थित प्रज्ञ बनाती है।
- यह बुद्धि निश्चय स्वभाव वाली है तथा एक है → कर्म अनेक पर कर्म करने की बुद्धि एक।

9. निषिद्ध कर्मी को धर्म में प्रवृत्त करने के लिये सकाम कर्मों की प्रशंसा तथा बाद में सकाम कर्मों की निन्दा

V - 42 & 44 - वेद में प्रशंसा व भयंकर वचन कहे हैं – विधि व निषेध वचन।

- ये वचन अधर्म से निवृत्त एवं धर्म में प्रवृत्त कराने के लिये कहे गये हैं।
- अधर्म से नरकों की प्राप्ति – रौरव नर्क, कुम्भी पाक नर्क।
- धर्म में अभ्युदय व स्वर्ग प्राप्ति।
- सकाम कर्म बन्धन के हेतु हैं → पुनरपि जननम्.....अत: निन्दा।

10. अत: निष्काम कर्म करने की प्रेरणा - ध्येय ईश्वर प्राप्ति

(योग-क्षेम वहन, अन्त:करण शुद्धि, ज्ञाननिष्ठा योग्यता प्राप्ति → ज्ञान (मुक्ति))

V - 45 - 5 **आदेश** – योग बुद्धि के वरण के लिये साधना (निगमन श्लोक)

1. निस्त्रैगुण्य भव – इस त्रिगुण से बने संसार का वरण न कर। प्रभु का वरण कर। सकामी से निष्काम कर्मी बनो।

2. निर्द्वन्द्व भव – सुख दु:ख को आने जाने वाला स्वीकार कर व्यथित न होने दो।

तितीक्षा करो – द्वन्द्वों को चिन्ता विलाप रहित होकर सहर्ष सहन करो, समता साधो।

3. नित्यसत्त्वस्थ: भव – त्रिगुण में सत्त्व विवेक का पोषक है
   सत्त्व के प्रकाश में रजस सृजन का पोषक बने → सत्कर्म होवें
   सत्त्व के प्रकाश में तमस विश्राम का पोषक बने

4. निर्योगक्षेम भव – योग - अप्राप्त की प्राप्ति, क्षेम - प्राप्त की रक्षा | श्रेय मार्ग पर चलने वालों का योग-क्षेम - भगवान् स्वयं वहन करते हैं।

5. आत्मवान्भव – स्वधर्मानुष्ठान करते हुए आत्म विषय में तत्परता, कोई प्रमाद नहीं।

V - 46 - **फल** – इस साधना का फल है सॉख्य बुद्धि प्राप्त कर आत्म ज्ञान होना।

- आत्मा आनंद सिन्धु है अत: श्रेय सुख में सभी प्रेय सुख अन्तर्निहित हैं।
- बिम्ब पकड़ने से सभी प्रतिबिम्ब पकड़े जाते हैं।

11. योग बुद्धि का स्वरूप व उसकी परिपक्व स्थिति (V – 47 to 52) – कर्मयोग का सिद्धान्त

V - 47 - इस श्लोक के प्रथम व द्वितीय चरण **सिद्धान्त** हैं तथा तीसरे व चौथे चरण **उपदेश** हैं।

a. हे मनुष्य तुम्हारा **कर्म पर ही अधिकार** है।

मनुष्य कर्म योनि – बुद्धि होने से कर्म स्वतन्त्रता है
त्रिजग व देवता – भोग योनि में नवीन कर्म की स्वतन्त्रता नहीं है अत: पाप नहीं होता
कर्म स्वातन्त्र्य का प्रमाण – विधि निषिद्ध में चुनाव

- जो निषिद्ध कर्म करता है, विहित में रुचि नहीं – वह **प्राकृत** है
- जो निषिद्ध कर्म नहीं करता है वह **संयमी** व **सदाचारी** है
- जो विहित कर्म सहजता से करता है वह **सुसंस्कृत** - **कर्तव्यनिष्ठ** व **धर्मनिष्ठ** है
- जो सर्व कर्म भगवान् के लिये करता है वह **भक्त** है, **साधक** है
- जो सर्व कर्म माया-प्रकृति में देखता है, स्वयं को अकर्म द्रष्टा देखता है वह **ज्ञानी** है

b. फलासक्ति का त्याग

हे मनुष्य! तुम्हारा फल पर अधिकार नहीं है क्योंकि फल ईश्वराधीन है। ईश्वर कर्मफल दाता है - Rule of 25% फल तो अवश्य मिलेगा।

c. कर्म हेतु

तू कर्म फल के लिये कर्म करने वाला न हो क्योंकि ये कर्म ही पुनर्जन्म का हेतु हैं।

d. जब फल नहीं मिलेगा तो कर्म क्यों करें? ऐसा सोचकर अकर्मण्य न बनें अपितु अपने कर्तव्य कर्म करें।

साधारण मनुष्य के लिये कर्म के प्रेरक तत्त्व व उसके दुष्परिणाम

- उच्च पद व वेतन या दण्ड (Promotion or Demotion)
- विशिष्ट सेवा के लिये मान्यता (Recognition)
- सराहना (Appreciation)

इस प्रकार फलासक्ति से बुद्धि में उद्विग्नता, मन में संशय व अशान्ति होती है। इच्छित फल न मिलने पर निरुत्साहित होता है तथा यदि फल न दीखे तो आलसी, प्रमादी व अकर्मण्य होता है। फल से बॅधकर जीवन-मृत्यु के चक्र में फॅसता है।

कर्म सिद्धान्त पर आधारित जीवन शैली

- जानो मनुष्य का अधिकार कुछ सीमा तक केवल कर्म करने में है अर्थात् प्रारब्ध वशात् व वासना से उत्पन्न क्या परिस्थितियॉ सामने आयेंगी हमें नहीं मालूम परन्तु विधि व निषिद्ध कर्म करने में अथवा न करने में हम स्वतन्त्र हैं।
- जानो फल पर मनुष्य का अधिकार नहीं। ईश्वर कर्मफल दाता है यह फल रुचि अनुरूप नहीं होते हैं अपितु ईश्वर के बनाये नियमानुसार निजकर्मकृत ही निश्चित समय में फल रूप से प्राप्त होते हैं। पाप कर्म – दु:ख, पुण्य कर्म – सुख, कर्तव्य कर्म न करने से – प्रत्यवाय पाप।
- अत: कर्म का प्रेरक तत्त्व शास्त्र निर्देशित वर्णाश्रम धर्म होने चाहिये न कि रुचिपरयण कर्म। ऐसे व्यक्ति में फल की पराधीनता न होने से कर्तव्य कर्म में निरन्तर उत्साह बना रहता है, यह अकर्मण्य नहीं होता।
- जब कर्म का प्रेरक तत्त्व ईश्वर हो तब कर्म सरस हो जाता है। भक्तिपूर्वक कर्म करने से एकाग्रता आती है व सॉख्य बुद्धि धारण करने से योग्यता आती है।

इस योग बुद्धि से कर्म करने का फल – समत्व योग

V - 48 - इस समत्व योग से – कर्म काल में समता बनी रहती है,
फल काल में सिद्धि (संकल्प पूर्ण) व असिद्धि (संकल्प अपूर्ण) दोनों में समता।

V - 49 - इस समत्व बुद्धि से किये कर्मों से सकाम कर्म निकृष्ट होते हैं अत: इस योग बुद्धि की शरण लेकर स्वधर्मानुष्ठान करो।

V - 50 - **सकाम कर्म** – श्रम युक्त, अनित्य फल, संशय युक्त फल, बन्धन का हेतु
योग बुद्धि से कर्म – अल्प श्रम, नित्य फल प्राप्ति का निश्चित साधन, पाप-पुण्य रूपी बन्धन से मुक्त कराने वाला → यही कर्मों का कौशल है।

V - 51 - मनीषी लोग इसी योग से युक्त होकर, जन्म-मरण रूपी बन्धन से मुक्त होकर अनामय पद को (उपद्रव रहित पद को) प्राप्त करते हैं।

V - 52 - **योग बुद्धि की चरम सीमा** – प्रसन्न, शुद्ध चित्त, मोहकलिल रहित, वैरागी-निर्वेदं, इस लोक व परलोक के भोगों से विरक्त, सॉख्य योग प्राप्ति की योग्यता प्राप्त।

V - 53 - **सॉख्य बुद्धि की चरम सीमा** – बुद्धि आत्मा में निश्चल.अचल रूप से स्थित, श्रवण से यथार्थ आत्म ज्ञान, मनन से आत्मा ही ब्रह्म है ऐसा ज्ञान, निदिध्यासन से देहोऽहम् और विपर्यय की निवृत्ति।

12 अर्जुन द्वारा स्थितप्रज्ञ के लक्षण पूछना

V - 54 to 57 - **स्थितप्रज्ञ** - जिसकी प्रज्ञा/बुद्धि 'मैं आत्मा ही ब्रह्म हूँ' इस रूप में स्थित हो गयी है।

स्थितप्रज्ञ के लक्षण –

- मन से सभी कामनाओं का त्याग क्योंकि मन, मन में उत्पन्न हाने वाली इच्छाएं व संसार के विषय सब मायामय हैं ऐसा वह जानता है तथा उसका मन आत्म सुख से तृप्त है।
- दु:ख से उद्विग्न (परेशान) नहीं व सुख बना रहे ऐसी स्पृहा (इच्छा) नहीं।
- राग, भय, क्रोध नहीं।
- शुभ-अशुभ प्राप्ति में न अभिनन्दन न द्वेष।
- मन में असंग होने से सब में आसक्ति रहित।

13 संयम का स्वरूप (V – 58 to 61)

V - 58 - कच्छप जो उभयचर है वह जल और थल दोनों में विहार करता है। जैसे थल पर अनिष्ट की संभावना से वह अपने सारे अंग पीठ के अन्दर सिकोड़ लेता है वैसे ही ज्ञानी सहजता से व साधक सजगता (ध्यान) से इस प्रपंच में व्यवहार करता हैं।

V - 59 - **साधक के लिये तप के चरण** – सब इन्द्रियों से भोजन 'भोग' कहलाता है।

- जो भोग हमारे वर्ण, आश्रम, आयु, पद व विकास के अनुकूल नहीं उसे त्याग करें।
- विहित में भी अनावश्यक भोग का त्याग।
- आवश्यक विषयों को भी विवेक से घटायें।
- सात्विक सुखों का आश्रय लो।
- समय को व्यर्थ न करके चुने हुए लक्ष्य में लगायें।

V - 60 - **इन्द्रिय संयम न करने के दुष्परिणाम –** 'बुद्धि का हरण'

जो व्यक्ति यत्न से साधना कर रहा है वह भी जब विषय को अपने सामने पाता है तो प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियॉं उसके विवेक युक्त मन को बल पूर्वक हर के ले जाती हैं। अत: प्रज्ञा की स्थिरता के लिये इन्द्रिय व मन का संयम आवश्यक है।

V - 61 - **इन्द्रिय संयम करने के सुपरिणाम –** 'प्रज्ञा की स्थिरता' - इन्द्रियॉं रूपी अश्व श्वेत हों।

- माता-पिता व गुरु की आज्ञा में रह कर विवेक पूर्वक इन्द्रिय संयम करें।
- शुद्ध, सरल, मधुर व मर्यादित व्यवहार हो।

यही प्रज्ञा को स्थिर करने में सहायक हैं।

14 संयम की उपेक्षा से हानि – Ladder of Fall – 'सर्व अनर्थ कारण'

V - 62 & 63 - विषय ध्यान → संग → कामना → क्रोध → सम्मोह → स्मृति विभ्रम: → बुद्धि नाश बुद्धि नाश → प्रणश्यति।

1. विषय ध्यान - विषय चिन्तन
2. संग - विषय प्रीति
3. विषय कामना - जिसे पूर्ण किये बिना चित्त मानता नहीं
4. क्रोध - कामना के पूर्ण होने में जो विघ्न डाले उस पर क्रोध
5. सम्मोह - किससे क्या व्यवहार करें ध्यान नहीं रहता, गुरु व माता-पिता से भी अशिष्ट व्यवहार
6. स्मृति विभ्रम - शास्त्र, गुरु व उपदेश के संस्कारों से प्राप्त स्मृति प्रकट नहीं होती – Not available
7. बुद्धि नाश - विवेक का नाश। क्या कार्य है क्या अकार्य है ये निश्चय नहीं होता
8. प्रणश्यति - विवेक नाश से मनुष्य पुरुषार्थ से वंचित हो जाता है, पुरुषार्थ के ही अयोग्य हो जाता है।
    - 'विषय, का ध्यान व संग' के तल पर ही संयम सम्भव है अत: विषयों में दोष दर्शन करो, उन्हें अनित्य देखो व उनकी आसक्ति को विवेक से शिथिल करो।
    - विवेक पूर्ण त्याग वैराग्य है।
    - अभ्यास जनित तप – बुद्धि से किया त्याग तप है, तितीक्षा है।

संयम से स्वभाव परिवर्तन

- यह सच है कि हम सब एक स्वभाव लेकर उत्पन्न हुए हैं जो पूर्व जन्म के कर्मों व गुणों का परिपाक है। कोई कोई स्वभाव बहुत गहरा होता है बदलना मुश्किल होता है परन्तु संयम से हम अपने स्वभाव को बदल सकते हैं। ऐसा हम इसलिये कर सकते हैं क्योंकि अन्त:करण में गुणों को बदलना सम्भव है। रजोगुण व तमोगुण को घटा कर सत्त्वगुण बढ़ा सकते हैं अत: –
- जो स्वभाव अहितकर है उसे छोड़ो।
- जो स्वभाव हमारी प्रगति में सहायक है उसे धारण करो।

- सत्संग इसका सबसे अच्छा उपाय है, अन्य उपाय हैं - स्वाध्याय, जप, तप, भजन आदि।
- भगवान् की शरण में रह कर संयम करो।
- कामना को भगवान को अर्पित कर दो, वे उसे पूरी करें तो ठीक, न पूरी करें तो भी ठीक।

15 संयम से साधक को लाभ

V - 64 - राग-द्वेष जनित कर्म न करें, विवेक से शास्त्र की आज्ञानुसार कर्तव्य कर्म करें। भगवान् का सेवक बनकर करें।

V - 65 - ऐसा करने से उसका अन्त:करण विवेक के वश में रहता है जिसके फल स्वरूप प्रसाद प्राप्त होता है - शुद्ध, निर्मल, शान्त अन्त:करण। इसके २ लाभ होते हैं –

1. आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक तीनों ताप इस पर निष्प्रभावी ।

दैहिक दैविक भौतिक तापा,
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।

2. इसे ज्ञान प्राप्ति की योग्यता प्राप्त होकर गुरु सानिध्य से श्रवण-मनन-निदिध्यासन पश्चात् आत्म ज्ञान प्राप्त होता है।

संयम न करने से हानि

V - 66 - जो इन्द्रियों का संयम (दम) व मन का संयम (शम) नहीं करता उसकी बुद्धि आत्म विषय में स्थित नहीं होती, वह जान नहीं पाता तथा भावना.श्रद्धा न होने से मानता भी नहीं। ऐसे मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती एवं शान्ति रहित मनुष्य सुख कहॉ?

V - 67 - **दृष्टान्त** – जैसे जल में चलने वाली नाव को वायु हर लेती है वैसे ही संसार के विषयोंमें विचरती इन्द्रिय व मन, आध्यात्मिक विषयक बुद्धि का हरण कर लेती है व साधक का विनाश कर देती है।

संयम उपनिषद का उपसंहार

V - 68 - अत: जिसकी समग्र इन्द्रियॉ व मन पूर्ण रूप से मर्यादित हैं वही संयमित है। उसी की बुद्धि स्थिर है।

16 ब्राह्मी स्थिति की महिमा

V - 69 to 72 -

- जो ज्ञानी की स्थिति – आत्म ज्ञान में जगे रहना है वह साधारण भूत प्राणियों के लिये रात्रि के समान है अर्थात् वह आत्म ज्ञान की तरफ से सो रहे हैं तथा जिस नाशवान्, असुख संसार में सुख की प्राप्ति के लिये भूत प्राणी जागते हैं वह ज्ञानी मुनि के लिये रात्रि के समान है।
- यह ज्ञानी सत्-चित्-आनंद से भरपूर अचल प्रतिष्ठा वाला समुद्र है, जैसे नदियॉ समुद्र को क्षुब्ध करे बिना उसमें समा जाती हैं वैसे ही ज्ञानी में सभी भोग व इच्छाएं उसे बिना विचलित किये करे समा जाती हैं।
- उस ज्ञान को प्राप्त करके योगी शान्ति को प्राप्त होता है, कभी मोहित नहीं होता। अन्तकाल में भी इस ज्ञान से ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर ब्रह्मानन्द प्राप्त करता है।। इति ।।

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

Verse No.	Chapter-2	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
1, 4	मधुसूदन	मोह, ममता व मधु दैत्य को मारने वाले
4,	अरिसूदन	अरि दैत्य को मारने वाले
9	गोविन्द	इन्द्रियों के ईश
9, 10	हृषिकेश	छोटे केश, इन्द्रियों के स्वामी, प्रेरक, अन्तर्यामी, सर्वज्ञ
54	केशव	केशि असुर को मारने वाले, लम्बे सुन्दर बाल वाले विष्णु

Verse No.	Chapter-2	अर्जुन के सम्बोधन
3, 9	परन्तप	शत्रु को तपाने वाला
9,	गुडाकेश	घुँघराले बाल, निद्रा पर विजय प्राप्त करने वाला
37, 60	कौन्तेय	कुन्ती पुत्र, क्षत्राणी पुत्र की गरिमा का भान कराने वाला
10, 14, 18, 30	भारत	ज्ञान में रति/प्रीति रखने वाला, महाराज भरत का वंशज
68	महाबाहो	महा बलशाली
39	पार्थ	पृथा (कुन्ती) का पुत्र, प्रेम का सम्बोधन
41	कुरुनन्दन	कुरु वंशज
2, 45	अर्जुन	असीम् पुण्यों को अर्जित करने वाला, सरल स्वभाव वाला
48, 49	धनंजय	राजसूययज्ञ में अनेकों राज्यों पर विजय व अपार धन प्राप्त करने वाला

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
72	03	06	63

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

कर्मयोगो नाम

तृतीयोऽध्याय:

(43 श्लोक)

अध्याय के प्रासंगिक विषय

	श्लोक संख्या	विषय
1	V - 01 & 02	अर्जुन का ज्ञान व कर्म को लेकर श्रेष्ठता के विषय में प्रश्न
2	V - 03	भगवान का मत
3	V - 04 & 05	कर्म न करने से हानि
4	V - 06 & 07	मिथ्याचारी व विशेष में अन्तर
5	V - 09 to 16	यज्ञ प्रकरण
6	V - 17 & 18	आत्मज्ञानी के लिये कोई कर्म का विधान नहीं
7	V - 20 to 25	लोकसंग्रह
8	V - 27 & 28	आसक्ति - अनासक्ति
9	V - 31 & 32	कर्मयोग करने व न करने के फल
10	V - 34 & 43	संयम उपनिषद

-1- अर्जुन का ज्ञान व कर्म को लेकर श्रेष्ठता के विषय में प्रश्न

V - 01 & 02 - अर्जुन पूछते हैं हे भगवन्! आपके मत में ज्ञान व कर्म में कौन श्रेष्ठ है? यदि ज्ञान श्रेष्ठ है तो मुझे घोर कर्म में क्यों लगाते हैं? अर्जुन कहते हैं कि मुझे तो निश्चित करके वह बतायें जिससे मुझे श्रेय की प्राप्ति हो।

-2- भगवान् का मत

V – 03 - भगवान् कहते हैं मैंने तो दो बुद्धि पहले ही बता दी हैं - 1. सॉख्य बुद्धि 2. योग बुद्धि

सॉख्य = किसी भी वस्तु का भली-भॉति यथार्थ वर्णन करना सॉख्य है

योग = a - दो वस्तुओं को जोड़ देना – मन को परमात्मा से जोड़ना

b - समस्त कार्यों (संसार) को कारण (परमात्मा) में समाहित कर देना

सरल भाषा में मन पसन्द वस्तुओं को मिलाने वाला योग है तथा जो चीज़ जैसी है वैसा लखा देने वाला सॉख्य है। अब भगवान् कहते हैं कि अधिकारी भेद से ये दो निष्ठा हैं –

- सॉख्य योग - निवृत्ति मार्गी
- कर्मयोग - प्रवृत्ति मार्गी

एक व्यक्ति एक ही काल में कर्म और ज्ञान दोनों का साथ-२ अनुष्ठान करे यह भगवान् का मत नहीं। कर्मयोग (अंग) व सॉख्ययोग (अंगी) में अंग अंगी-भाव है।

- **कर्मयोग** अन्त:करण की शुद्धि का बहिरंग साधन है, तथा
- **साधन चतुष्ट्य** (1-विवेक 2-वैराग्य 3-षट्क सम्पदा 4-मुमुक्षुत्वं) अन्त:करण की शुद्धि का अन्तरंग साधन है। (**षट्क सम्पदा** - शम, दम, उपरम, तितीक्षा, श्रद्धा, समाधान)
- इससे व्यक्ति ज्ञान का अधिकारी बनता है, तथा
- निवृत्ति पूर्वक श्रवण-मनन-निदिध्यासन द्वारा पूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है।

3 कर्म न करने से हानि

V – 04 & 05 - कर्म आरम्भ न करना अथवा बीच में कर्म का त्याग करने से हानि —

- कर्म द्वारा ही अन्त:करण की शुद्धि होती है तो कर्म का आरम्भ किये बिना ब्रहम भाव कैसे?
- बीच में कर्म त्याग दिया तो वैराग्यहीन संन्यास ग्रहण करने से अन्त:करण की शुद्धि नहीं।
- ब्रह्मतत्त्व/आत्मतत्त्व अकर्म है परन्तु कोई भी शरीरधारी क्षण मात्र के लिये भी कर्म के बिना नहीं रह सकता क्योंकि सब भूत प्राणियों की प्रकृति उसको उसके गुणानुसार कर्म करने के लिये विवश कर देती है अत: मनुष्य को निषिद्ध कर्म नहीं करने चाहिये, विहित कर्म ही करने चाहिये व कर्म में मर्यादा रखनी चाहिये।

4 मिथ्याचारी व विशेष में अन्तर

V – 06 to 08 - यह शरीर कर्म और ज्ञान दोनों का मिश्रण है —

- कर्मेन्द्रियों से कर्म
- ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान
- मन से स्मरण
- बुद्धि से अज्ञात का भी ज्ञान (श्रवण द्वारा)

मिथ्याचारी – जो मूढ़बुद्धि मनुष्य समस्त कर्मेन्द्रियों को हठ पूर्वक ऊपर से रोककर मन से विषयों का चिन्तन करता रहता है वह मिथ्याचारी अथवा दम्भी कहा जाता है। अत: यदि कर्मेन्द्रियों को तो बॉध लिया व मन से विषयों का चिन्तन हुआ तो मन तो है *सात्त्विक* व इन्द्रियों के अर्थ हैं *राजस* तो आप विमूढ़ात्मा - *तमोगुणी* (दम्भी) हो जायेंगे।

विशेष – साधक को अनासक्त होकर मन से इन्द्रियों का नियमन करके कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करना चाहिये।

- मिथ्याचारी - कर्म नहीं करता पर विषय चिन्तन करता है।
- विशेष/कर्मयोगी - अनासक्त भाव से कर्म करता है परन्तु विषय चिन्तन नहीं करता अत: अनासक्त भाव से वर्णाश्रम व धर्मानुसार नियत कर्म करो। अकर्मण्य न बनो क्योंकि यह तमोगुण है। कर्म न करने से कर्म करना ही अच्छा है क्योंकि इससे जीवन यात्रा शोभनीय होती है एवं कर्तव्य कर्म न करने का प्रत्यवाय पाप (लक्ष्य प्राप्ति के विपरीत आध्यात्मिक उन्नति में अवरोध) भी नहीं होता।

साधक के लिये आदेश	नियत कर्म
1. अकर्मध्यता से नियत कर्म श्रेष्ठ हैं। 2. शरीर यात्रा के लिये निर्वाह व कर्तव्य कर्म करो। 3. अन्त:करण शुद्धि के लिये यज्ञकर्म, दान, तप करो। 4. सकाम कर्म से अभिमान वृद्धि, लौकिक उन्नति व स्वर्ग प्राप्ति। 5. निष्काम कर्म से परमात्मा प्राप्ति अत: यज्ञार्थकर्म।	o नित्य o नैमित्य o उपासना o प्रायश्चित

5 यज्ञ कर्म (V – 09 to 15)

यज्ञ कौन है? यज्ञ विष्णु है - यज्ञो वै विष्णु (शतपथ)
विष्णु कहॉ मिलेंगे कि हम उसके लिये कर्म करें?
विष्णु माने 'वेविष्ट' - सबके भीतर जो बैठा है। यह सम्पूर्ण विश्व ही विष्णु का रूप है अत: सर्वोपकारी, सर्वोपयोगी जो कर्म है वही यज्ञार्थ कर्म है। सम्पूर्ण संसार कर्म से बॅधा है लेकिन सर्वात्म विष्णु अर्थात् विश्व की सेवा के लिये जो कर्म किया जाता है वह यज्ञार्थ कर्म है, वह कर्ता से नहीं चिपकता अपितु भगवान् को समर्पित हो जाता है।

V – 09 - यज्ञार्थ कर्म का लाभ –

- अभ्युदय
- अन्त:करण शुद्धि - शुद्ध पवित्र मन
- ज्ञान द्वारा पाप-पुण्य के बन्धन से मुक्ति (मोक्ष)

अत: कर्म करो –

- भगवान के विश्व रूप के लिये,
- अनासक्त भाव से (कर्मासक्ति व फलासक्ति के बिना)
- समाचर (भली प्रकार, सुरुचि पूर्वक, सजगता, तत्परता, पवित्रता, मृदुता, न्यायपूर्वक, निष्पक्षता व असंगता से)

अत:

- कर्तव्य पूर्ति के लिये
- अन्त:करण शुद्धि के लिये
- ईश्वर अर्पण के लिये

} किये हुए कर्म बन्धन के हेतु नहीं होते।

V – 10 - सृष्टि चक्र – मनुष्य की उत्पत्ति यज्ञ के साथ हुई है – यज्ञ से कुछ लेता हुआ, कुछ देता हुआ एवं कुछ मर्यादा में रहता हुआ, यज्ञ का यही स्वरूप है – 'आदान, प्रदान व उत्सर्ग' ये सब यज्ञ में होते हैं। तुम्हें धरती ने अन्न, वरुण ने जल, सूर्यदेव ने प्रकाश, अग्निदेव ने ऊष्मा, वायुदेव ने स्वॉस (प्राण वायु) और आकाश ने रहने का स्थान दिया अत: तुम यदि सृष्टि में सौन्दर्य, मधुरता का विस्तार करते हो तभी वह यज्ञ है अन्यथा नहीं। प्रदूषण करना यज्ञ नहीं है, गाली देना यज्ञ नहीं है अत: वातावरण को शुद्ध रखो, मीठी वाणी वोलो व सर्वहित में रत रहो। प्रजापति ब्रह्माजी ने यज्ञ के साथ तुम्हारी सृष्टि की और यज्ञ रूपी साधन दिया। यदि तुम यज्ञ में तत्पर रहोगे, दूसरों की सेवा व भलाई करोगे तो कामधनु तुम्हारे घर में रहेगी जो तुम्हें चाहिये वह अपने आप आ जायेगा।

V – 11 - यज्ञ का अर्थ केवल होम (हवन) नहीं है, उसका अर्थ है इन्द्रियों में बैठे देवताओं को प्रसन्न करो

- पृथ्वी को सुगन्ध दो
- जल को दूध दो
- अग्नि को आरती दो
- वायु में शुद्ध वायु दो
- आकाश में घण्टी, वीणा, शंख बजाकर मधुर - 2 शब्द दो
- सूर्य को जल दो - यही यज्ञ है। परस्पर ये देवता तुम्हारे यज्ञ से पुष्ट होकर तुम्हारी इन्द्रियों को शक्तिशाली बनावें।

V – 12 - यदि देवताओं द्वारा सब दिये जाने पर भी आप उनके प्रति अपनी कृतज्ञता अभिव्यक्त नहीं करते और बस लेते रहते हैं एवं प्रदूषण द्वारा उनका अपमान भी करते हैं अर्थात् यज्ञ नहीं करते, कर्तव्य कर्म की उपेक्षा करते हैं तो यह चोरी है, अपराध है – आप स्तेन (चोर) कहलायेंगे।

V – 13 - **पंचमहायज्ञ** –

1- ब्रह्म यज्ञ – सन्ध्या, ईश्वर पूजा व उपासना → उपासक को लाभ
2- देव यज्ञ – अग्निहोत्र हवन व पंचमहाभूतों की पूजा → पर्यावरण को लाभ
3- पितृ यज्ञ – पितरों को तर्पण
4- बलिवैश्वदेव यज्ञ – मनुष्य से इतर प्राणियों के लिये यज्ञ → गाय, कौवा, चींटी, कुत्ते सबके लिये अन्न का विधान
5- अतिथि यज्ञ – माता-पिता, वृद्ध व ऋषियों की आज्ञा में रहना, उनका सम्मान करना

अत: ये सब यज्ञ करके खाने से सब पापों से मुक्त होते हैं। अन्न पैदा करने में, सींचने, खरीदने, पकाने, व आग में जलाने में जो प्राणियों की हत्या हुई उन सब पापों से यज्ञ द्वारा बच जाते हैं। पहली व आखिरी तवे की रोटी भी अन्य को खिला दी जाती थी। संन्यासी को भी भिक्षा देकर व पहले प्राणियों में बॉट कर फिर भोजन करने का विधान है।

V – 14 to 16 - **यज्ञ** भोग व अपवर्ग (मोक्ष) दोनों की प्राप्ति का साधन है। भूत-प्राणी कर्मासक्ति प्रधान हैं इनको जीवन अन्न से प्राप्त होता है व अन्न पर्जन्य (वर्षा) से प्राप्त होता है।

भोगदाता चक्र (अन्नचक्र) –

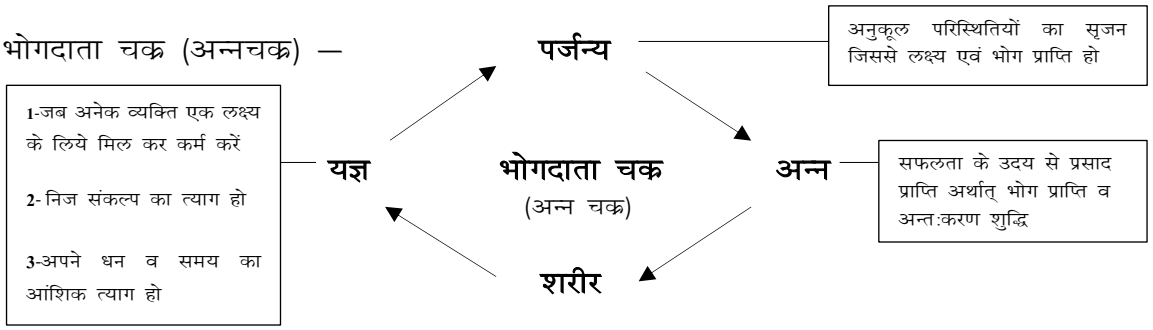

अपवर्ग चक्र – यज्ञ कर्म क्रिया शक्ति से होता है व क्रिया ज्ञान से होती है।

(अक्षर तत्त्व)
निर्गुण ब्रह्म → **सगुण ब्रह्म** → **क्रिया शक्ति** → **यज्ञ कर्म**
(अपवर्ग) (ज्ञान शक्ति)

जिसे हम सगुण ब्रह्म, सविशेष ईश्वर बोलते हैं वह हमारे जीवन में ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों का सम्मिलित रूप है। हमारा शरीर सगुण रूप का मॉडल है। शास्त्रों में भी कहा है कि भगवान् ने जब मनुष्य को बनाया तो अपने जैसा बनाया।

परमात्माद्वयानंदः पूर्णः पूर्वम्स्वमायया ।
स्वयमेव जगत भूत्वा प्राविशत् जीवरूपतः।।

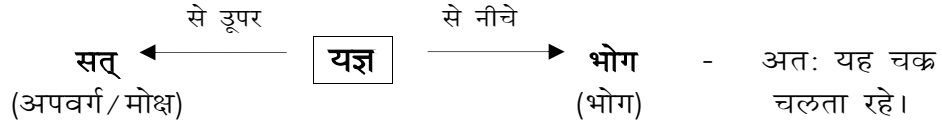

यदि अधिकार की प्राप्ति नहीं हुई, वैराग्य न हुआ व यज्ञ चक्र चलाना छोड़ दिया तो तुम्हारी उन्नति नहीं होगी। फिर होगा → स्वार्थी, पापमय जीवन, इन्द्रिय राम व जीवन व्यर्थ हो जायेगा।

अतः यज्ञ कर्म करके → परोपकारी, पुण्यायु, तपस्वी बनो व जीवन सफल करो।

6 आत्मज्ञानी के लिये कोई कर्म का विधान नहीं (V – 17 & 18)

आत्म ज्ञानी के लिये कोई कर्तव्य नहीं केवल शरीर से कर्म होता है (कर्म आभास)। ऐसा अधिकारी भी होता है जिसके लिये इस सृष्टि चक्र का पालन करना ज़रूरी नहीं जो आत्मरति, आत्मतृप्त व आत्मसंतुष्ट है। इसकी स्त्री-पुरुष में रति नहीं, खाने-पीनें से तृप्ति नहीं व रुपये-पैसे से संतुष्टि नहीं। इसका अन्तःकरण तो आत्मचिन्तन (ब्रह्मचिन्तन) में ही लीन है। संतुष्ट के लिये कोई कर्तव्य नहीं अर्थात् कार्य नहीं, परन्तु कर्म तो शरीर की क्रिया है जैसे वह चलता-फिरता है, खाता-पीता है, सोता-जागता है। वह चिन्मात्र, चिद्रूप है परन्तु फिर भी राग-द्वेष, भयादि के अनुरूप आचरण करता हुआ भी अपने भीतर आकाश के समान अत्यन्त निर्मल है। यह जीवन मुक्त है।

V – 19 - **आदेश —** असक्त होकर समाचर रूप से कर्तव्य कर्म करो तब तुम ज्ञान प्राप्त कर सद्यः मुक्ति प्राप्त करोगे अथवा सगुण ब्रह्म के लिये कर्म व उपासना करके क्रम मुक्ति रूप परम पुरुष के पद को प्राप्त करोगे।

7 लोकसंग्रह – बिना आसक्ति के कर्म करना

V – 20 to 26 - उन्मार्ग निवृत्ति तथा सन्मार्ग प्रवृत्ति ही लोकसंग्रह है।

V – 20 - ज्ञानी में लोकसंग्रह उसका स्वभाव है, कर्माभास है उसका। प्रारब्ध से कर्म होता है —

- स्वेच्छा प्रारब्ध
- परेच्छा प्रारब्ध
- अनिच्छा प्रारब्ध - ईश्वरेच्छा

अज्ञानी कर्मयोगी में लोकसंग्रह अन्तःकरण शुद्धि का हेतु है।

V – 21 - श्रेष्ठजन जो भी कर्म करते हैं सर्वसाधारण उनका अनुकरण करते हैं अतः अर्जुन तुम भी कर्म करों।

V – 22 & 23 - अब भगवान् अपने लिये कहते हैं कि पार्थ मेरे लिये तीनों लोकों में ऐसा कोई भी कर्तव्य नहीं है, ऐसा कुछ भी अप्राप्त नहीं है फिर भी मैं तन्द्रारहित होकर कर्म करता हूँ।

V – 24 - यदि मैं कर्म न करूँ तो प्रजा का नाश हो जायेगा व मैं वर्णसंकर का कर्ता बनूँगा। अतः जब गुरु स्वयं कर्म करते हैं तो शिष्य उनका अनुकरण करने लगते हैं।

V – 25 - जैसे अज्ञानी लोग संसार में बड़े मनोयोग से आसक्त होकर कर्म करते हैं। वैसे ही विद्वान को बड़े मनोयोग से कर्म करना चाहिये परन्तु बिना आसक्ति के।

V – 26 - विद्वान अज्ञानी की कर्म बुद्धि में भेद उत्पन्न न करे अर्थात् उसको कर्म सिद्धान्त से विचलित न करे।

8 आसक्ति – अनासक्ति

V – 27 - विमूढ़ात्मा – अज्ञानी फल में आसक्त होकर कर्म करता है, स्वयं को कर्ता मानता है क्योंकि समस्त कर्म प्रकृति के गुण से होते हैं।

- **प्रकृति का वंश** – प्रकृति → महत्तत्त्व → अहंतत्त्व → पंचतन्मात्रा → पंचमहाभूत → स्थूल व सूक्ष्म शरीर
- **अविद्या का वंश** – अविद्या – अस्मिता (कर्ता) – राग-द्वेष – अभिनिवेश (स्वयं को शरीर समझना)

V – 28 - तत्त्ववित्तु – तत्त्ववेत्ता अर्थात् ज्ञानी पुरुष कर्म तो करता है परन्तु उसकी आसक्ति नहीं होती क्योंकि वह विवेकी है। उसे आत्मा-अनात्मा का विवेक है। वह जानता है कि प्रकृति-पुरुष का विभाग अलग अलग है। अब सर्वकर्म तो प्रकृति के वंश में होते हैं – 5 कर्मेन्द्रिय, 5 ज्ञानेन्द्रिय, 5 प्राण व मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार परन्तु अविद्या (अविवेक) के कारण अस्मिता हो जाती है, वह स्वयं को कर्ता मान बैठता है। फिर अनुकूल परिस्थिति से राग, प्रतिकूल स्थिति से द्वेष तथा इस देह में अभिनिवेश होने से जन्मने-मरने का भय मानता है – यह विमूढ़ात्मा है। क्या शरीर में रक्त आप दौड़ाते हैं? क्या अपने बाल आप बढ़ाते हैं? भोजन का पाचन क्या आप करते हैं, मल मूत्र आप बनाते हैं? क्या नाड़ी आप चलाते हैं?

जो तत्त्ववेत्ता हैं वे गुणविभाग व कर्मविभाग से यह विचार करते हैं कि **'गुणा गुणेषु वर्तन्ते'** . इन्द्रियाँ अपने विषयों में बरतती हैं। इस शरीर में दो चीज़ मिल गयी हैं – एक असंगात्मा है जो चेतन पुरुष है और एक कर्ता-भोक्ता है जो प्रकृति राज्य में है, इनका ठीक ठीक विभाजन कर दो।

V – 29 - प्रकृति के गुण से सम्मूढ़ जो प्रकृति के गुण व कर्म विभाग में आसक्त हो जाते हैं, जो अकृत्स्नविद् हैं जिन्हें पूरी जानकारी नहीं है, वे मन्द बुद्धि हैं - उनसे दूर रहो, उन्हें विचलित न करो।

V – 30 - **आदेश**

- सारे कर्म ईश्वर को समर्पित कर दो – ईश्वर तो अमूर्त है उसमें कर्म कैसे रखें?
- कर्ता द्वारा किये कर्म का सम्बन्ध अकर्ता से कैसे होगा?
- भगवान् समर्पण क्रिया बतलाते हैं – अध्यात्म चेतसा अर्थात् शरीर के भीतर कर्म करने की प्रणाली को जानो।

  अध्यात्म चेतसा – सूक्ष्म बुद्धि से जानना कि सब ईश्वर में है, ईश्वर का है व ईश्वर द्वारा संचालित है। स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर के धर्म जानना – अध्यात्म उपनिषद्
  - स्थूल शरीर – ब्राह्मण्यम्, कुल, गोत्र, नाम, रूप, जातय: व षट् विकार
  - सूक्ष्म शरीर – १९ तत्त्व (5 कर्मे० 5 ज्ञाने० 5 प्रा० म० बु० चि० अहं०) व उनके देवता
  - कारण शरीर – स्वरूप अज्ञान - प्रिय, मोद, प्रमोद, निद्रा, आलस्य

तत्पश्चात् कर्म को कर्ता से न जोड़ कर उद्देश्य से जोड़ दो जिससे बुद्धि का विषय ईश्वर हो जाये

अर्थात् -

- लड़ो अवश्य पर राजा के लिये अपने लिये नहीं,
- कर्म करो पर ईश्वर के लिये अपने लिये नहीं –

- ईश्वर के बनाये वर्णाश्रम धर्मानुसार
- ईश्वर के दिये दे०इ०म०बु०प्रा० से
- ईश्वर के दिये संसाधनों से
- ईश्वर की प्रीति-प्रसन्नता के लिये
- ईश्वर जो करे सो ठीक, न आशा न ममता बस कर्तव्य करो।

9 कर्मयोग के अनुष्ठान से लाभ व न करने से हानि

यह भगवान् का मत, भगवान् की वाणी नित्य है – सार्वभौम, सार्वकालिक, सार्वजनिक व मानव मात्र के लिये है, किसी विशेष धर्म सम्प्रदाय के लिये नहीं है।

V – 31 - जो श्रद्धा से इसका पालन करते हैं वे कर्म-बन्धन रूपी पाप-पुण्य से मुक्त हो जाते हैं।

V – 32 - जो मेरे मत में दोष निकाल कर इसका पालन नहीं करते वे सब विषयों में मूर्ख हैं, अचेतस् (बेहोश) हैं व अपना नाश करते हैं – न इस लोक में सुख न परलोक में सुख।

V – 33 - **स्वभाव** – ज्ञानी अथवा अज्ञानी सभी अपनी प्रकृति अर्थात् स्वभाव (पूर्वकृत् पुण्य व पाप के संस्कार) से जीवन व्यतीत करते हैं, सर्व चेष्टा करते हैं इसमें मुझ भगवान् का शासन क्या करेगा? प्रकृति को सहज भाव से कर्म करने दो एवं तुम अपने सहज स्वभाव में रहो।

10 संयम उपनिषद्

यदि सर्व व्यवहार स्वभाव से ही होता है तो क्या शास्त्र व साधना निरर्थक है?

V – 34 - सर्व इन्द्रियों के अपने विषयों में (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) में राग-द्वेष जन्म से ही सुव्यवस्थित हैं, यही स्वभाव है अत: विद्वान पुरुष की चतुराई यह है कि वह राग-द्वेष के वश में न आये अपितु राग-द्वेष को अपने वश में रखे, ये राग-द्वेष परिपन्थी (लुटेरे) हैं। **उपाय →**

- यदि मन में कोई ग़लत बात आये तो शरीर से मत करो
- बुद्धि से उसका समर्थन न करो
- व्यवहार में धर्म का पालन हो

उदासीन होकर देखो
- जो आवे-सो-आवे
- जो जावे-सो-जावे

V – 35 - ईश्वर कृपा से यह जानकर कि पुरुष का धर्म (स्वधर्म) असंगता व चेतनता मात्र है – पुरुष में ही रहने दो तथा प्रकृति के धर्म – विकार व संस्कार प्रकृति में ही रहने दो। पुरुष को अपने धर्म में रहना श्रेयस्कर है परन्तु प्रकृति के धर्म को अपने में स्वीकार कर लेना भयावह है।

पाप का प्रेरक – काम

V – 36 - सामान्य प्रवृत्ति तो परमेश्वर से होती है परन्तु विशेष प्रवृत्ति केवल ईश्वर से नहीं होती है उसमें कुछ मिला होता है, वह कौन है जिससे प्रेरित होकर मनुष्य न चाहने पर भी बलपूर्वक पाप में लगा दिया जाता है?

V – 37 - भगवान् कहते हैं प्रकृति परिवार पाप नहीं कराता क्योंकि उसे पाप-पुण्य का विवेक नहीं तथा चेतन पुरुष भी पाप नहीं कराता क्योंकि वह असंग है, तो पाप कौन कराता है? **अविवेक** - स्वयं को देह समझ कर राग द्वेष से जीवन संचालित होना।

राग-द्वेष ही अभिव्यक्त होकर काम-क्रोध की भूमिका में आते हैं व पाप कराते हैं जैसे मन में जलन है तो द्वेष है, चेहरा लाल हो जाए व हाथ-पैर काँपने लगे तो क्रोध तथा जब गालियाँ देवें व मारने को दौड़ें तब हिंसा है। जो काम है सो क्रोध है एवं जो क्रोध है सो काम है।

काम/इच्छा पूरी न होने पर क्रोध होता है। जब हमारे नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-असंग आत्मा का अविवेक के कारण रजोगुण से तादात्म्य हो गया तब ये काम-क्रोध निकल आये, काम का पेट कभी नहीं भरता - 'महाशन', सर्व संसार की भी वस्तुएं मिल जाएं तो भी व्यक्ति तृप्त नहीं होगा तथा क्रोध महापापी है। गुरु, माता-पिता, भाई-बन्धु जिनका आदर करना चाहिये उनका अनादर करता है अत: काम-क्रोध को वैरी जानो।

V – 38 - काम व क्रोध विद्वानों के ज्ञान को भी ढक देते हैं अत: वैरी हैं।

- सात्विक आवरण – जैसे धुँआ अग्नि को ढॉकता है पर कुछ समय में स्वयं ही हट जाता है
- राजसिक आवरण – जैसे दर्पण पर धूल, इसे प्रयास पूर्वक हटाना पड़ता है
- तामसिक आवरण – जैसे जेर गर्भ को ढॉकता है इसे धर्य, प्रयास व गुरु निर्देश से हटाना पड़ता है

V – 39 - **काम ने ज्ञान को ढक रखा है** – अज्ञानी को तो काम भोग के समय सुख देता है बाद में ग्लानि, पश्चाताप व दु:ख देता है परन्तु ज्ञानी के लिये तो काम नित्य वैरी है। जब कामना आयी तब भी चैन नहीं और जब भोग किया तब भी चैन नहीं। यह कामना सदैव ही दु:ख देती है। काम दुष्पूर है (कभी न पूरा होने वाला) तथा अनल है (पूर्ण करने पर और बढ़ता है)।

V – 40 - **काम के रहने का स्थान** - (इ०म०बु०) – काम हमारे ही घर में रहता है। जिस रथ चढ़ कर हम चलते हैं उसके **इन्द्रिय** रूपी घोड़े काम के वश में हैं। काम ने **मन** रूपी लगाम एवं **बुद्धि** रूपी सारथि को भी खिला-पिला कर वश में कर लिया है। हमारी इन्द्रियॉ मन बुद्धि सब काम रूपी शत्रु के वश में हो गये हैं अत: हमारा कहा नहीं मानते, जहॉ हम जाना चाहते हैं वहॉ नहीं ले जाते मनमानी करते हैं।

V – 41 - **पाप के हेतु काम को वश में कैसे करें?** – इन्द्रिय नियमन से काम परित्याग (प्रजहि), भगवान् कहते हैं पहले घोड़े वश में करके पाप रूपी कामना का त्याग कर दो क्योंकि इसके रहने से ज्ञान-विज्ञान का नाश हो जायेगा।

V – 42 - अब भगवान् क्रम बताते हैं **- स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश –**

विषयों को पुष्ट करने वाली इन्द्रियॉ हैं, इन्द्रियों को पुष्ट करने वाला मन है, मन का नियमन करने वाली बुद्धि है जो मन से परे है तथा बुद्धि से परे तुम हो अत: तुम विषय, इन्द्रिय, मन व बुद्धि से परे – चिन्मयज्योति स्वरूप इनके द्रष्टा हो, असंग हो, इनकी कोई भी क्रिया तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकती।

V – 43 - **क्रम देखो** – जब इन्द्रिय का नियमन करोगे तो काम का परित्याग होगा (प्रजहि) → जब आत्म ज्ञान होगा तो काम का नाश होगा (जहि)। हे महाबाहो! बुद्धि से परे अत्यन्त श्रेष्ठ अपने आत्म स्वरूप को जानकर बुद्धि से मन को वश में करके इस काम रूपी दुर्जय शत्रु का नाश कर दो।। इति।।

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-3	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
1	जनार्दन	जन्म-मृत्यु की पीड़ा से मुक्त करने वाले, असुरों का वध करने वाले
1	केशव	केशि असुर को मारने वाले, लम्बे सुन्दर बाल वाले विष्णु
36	वार्ष्णेय	भ०कृष्ण के वृष्णि वंश में उत्पन्न होने वाले

Verse No.	Chapter-3	अर्जुन के सम्बोधन
2	अनघ	निष्पाप अर्जुन
23	पार्थ	पृथा (कुन्ती) का पुत्र, प्रेम का सम्बोधन
25, 41	भारत	ज्ञान में रति/प्रीति रखने वाला, महाराज भरत का वंशज
28, 43	महाबाहो	महा बलशाली
9, 39	कौन्तेय	कुन्ती पुत्र, क्षत्राणी पुत्र की गरिमा का भान कराने वाला

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
43	0	03	40

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम

चतुर्थोऽध्याय:

(42 श्लोक)

	मुख्य विषय		क्रम संख्या		प्रासंगिक विषय	
V 16 - 19	ज्ञान से कर्म का संन्यास		1	→	गुरु-शिष्य परम्परा	V 1 - 3
	• सर्वकर्मसंन्यास / नैष्कर्म्य / सिद्धि / ज्ञान निष्ठा रूप योग		2	→	अवतार वाद	V 6 - 9
			3	→	वर्णाश्रम धर्म	V 13
		←	4			
	• सर्वकर्मसंन्यास कर्म त्याग से नहीं अपितु ज्ञान से होता है		5	→	यज्ञ प्रकरण (13 यज्ञकर्म)	V 24 - 31
			6	→	गुरु प्रसक्ति	V 34
V 20 - 23	• ज्ञानी के अलग-२ स्वभाव		7	→	ज्ञान प्रकरण	V 35 – 42

1. गुरु-शिष्य परम्परा – (V 1 - 3)

भगवान् श्रीकृष्ण ने सूर्य (विवस्वान) से कहा → सूर्य ने मनु (जीवात्मा, जो श्रद्धा व मनन के संयोग से उत्पन्न हुए) से कहा → मनु से इक्ष्वाकु वंश ने पाया, ये सब के सब कर्मयोगी हैं। काल पाकर मनुष्य ने स्वार्थी होकर कर्मयोग का पालन छोड़ दिया। इस शरीर मन-बुद्धि-प्राण को 'मैं' और 'मेरा' मानकर उसका पतन हो गया।

मंगलाचरण – ओम् नारायणं पद्मभवम् वसिष्ठं.....वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरुन्संततमानतोस्मि। अत: भगवान् सम्प्रदाय विधि से पुन: वही ज्ञान अर्जुन को देते हैं क्योंकि सेवा की प्रधानता से अर्जुन भक्त हैं तथा स्नेह की प्रधानता से सखा।

2. अवतार वाद – (V 6 - 9)

भगवान् बताते हैं कि मुझ कृष्ण के और तुझ अर्जुन के अनेक जन्म हो चुके हैं। मैं अपने सब जन्म जानता हूँ क्योंकि मेरी माया शुद्ध सत्वगुणी है अत: मैं सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान हूँ परन्तु तू भूल गया है क्योंकि तू अविद्या (मलिन माया) से ढका हुआ है अत: तू अल्पज्ञ-अल्पशक्तिमान है।

प्रातः स्मरणीय ५ श्लोक

(a) – V 6

- निर्गुण-निराकार चेतन आत्मा/ब्रह्म – अज व अविनाशी (अव्यय)
- सगुण ब्रह्म/सोपाधिक ब्रह्म – मायोपाधिक ब्रह्म – सर्व भूतों का ईश्वर - प्रेरक
- अवतार – यह सगुण ब्रह्म अपनी वैष्णवी माया को अपने वश में करके केवल लीला के लिये देहवाला सा, जन्म लेता सा दीखता है पर वास्तव में जन्म नहीं लेता।

(b) अवतार का हेतु – (V 7-8)

- समष्टि परिस्थिति का संदर्भ – धर्म की हानि, अधर्म की वृद्धि
  – साधु, पृथ्वी, गौ, ब्राह्मण की रक्षा
  – असुरों का विनाश
- समष्टि प्रार्थना का संदर्भ – जगत्गुरु रूप में आना
- व्यष्टि साधक/भक्त का संदर्भ – दशरथ-कौशल्या, वसुदेव-देवकी, नन्द-यशोदा को पुत्र रूप में प्राप्ति

अवतार के प्रकार – 'अव-तरति' = शुद्ध चेतन का माया से नीचे (संसार में) उतरना

I- अंशावतार/कलावतार – विशेष प्रयोजन से = मत्स्य, वराह, कूर्म, वामन, परशुराम, बलराम, बुद्ध तथा कल्कि (जो कलयुग में आयेंगे)

II- आवेशावतार – नरसिंह

III- अर्चावतार – पाषाण व धातु से बना भगवान् का विग्रह जिसमें प्राण प्रतिष्ठा होती है। इनमें निग्रह व अनुग्रह की सामर्थ्य होती है। भक्त की प्रार्थना सुनकर कष्ट दूर करते हैं जैसे तिरुपति बाला, नाथ द्वारा, बॉके बिहारी, वैष्णव देवी।

IV- नित्यावतार – दिव्य सन्त भगवान् के विग्रह हैं। ये भी निग्रह-अनुग्रह करते हैं।

V- पूर्णावतार – राम (12 कला, सूर्यवंशी) एवं कृष्ण (16 कला, चन्द्रवंशी)

(c) भगवान् को (जीव के समान) **कर्म क्यों नहीं बॉधते – (V 9)**

- मेरे जन्म व कर्म दिव्य हैं, माया से मैं जन्म लेता सा दीखता हूँ परन्तु स्वयं को अज-अमर जानता हूँ। अकर्ता होते हुए भी कर्म करता हुआ सा दीखता हूँ अतः -
- जो मेरे तीनों स्वरूपों को इस प्रकार तत्त्व से जान लेता है वह इस देह को छोड़ कर पुनर्जन्म प्राप्त नहीं करता।

(d) तत्त्व को जानने का अधिकारी कौन? – (V 10)

- जो वीतरागभयक्रोध है – साधन चतुष्ट्य सम्पन्न विवेकी, वैरागी, श्रद्धावान्, संयमी व मुमुक्षु है।
- जो मन्मया है – जिसका श्रवण व मनन पूर्ण हुआ – ब्रह्मविद् है।
- जो मामुपाश्रित है – संसार पर आश्रित नहीं है, निदिध्यासन से ज्ञाननिष्ठ हुआ है – ब्रह्मनिष्ठ है।

(e) सब आपका आश्रय क्यों नहीं लेते? – (V 12)

- अधिकांशतः मनुष्य कर्म की शीघ्र सिद्धि चाहते हैं अतः शास्त्रानुसार देवताओं को मुझसे भिन्न जानकर उनकी उपासना करते हैं उससे उन्हें शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। मैं ही

देवताओं के द्वारा उनकी इच्छा पूर्ण कर देता हूँ पर वे मुझे नहीं जान पाते। देव पूजन – अग्नि, सूर्य, वरुण, इन्द्रादि।

- ईश्वर भक्ति तो अनेक जन्म सिद्धि का फल है तथा यह मोक्ष पर्यन्त है अत: सभी मनुष्य मेरा वरण नहीं करते।

3. वर्णाश्रम धर्म – (V 13)

मैंने ही गुण व कर्म के अनुसार जीवों के लिये 4 वर्ण बनाये परन्तु वास्तव में मैं अकर्ता हूँ क्योंकि मैं अव्यवहार्य, असंसारी चिन्मय सत्ता हूँ।

- ब्राह्मण – सत्त्व प्रधान → अध्ययन-अध्यापन, विचारक (Thinkers)
- क्षत्रिय – रज-सत्त्व प्रधान → शूरता, योद्धा (Warriors), संरक्षक (Protectors)
- वैश्य – रज-तम प्रधान → वाणिज्य, कृषि, गौरक्षण, Entrepreneurs, Business , Farmers
- शूद्र – तम प्रधान → सेवा भाव, Service class

गुणों पर आधारित वर्ण एवं युग व्यवस्था

(a)- युग व्यवस्था – सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलयुग

- बहिरंग – काल से नियंत्रित

कलयुग	द्वापर	त्रेता	सतयुग
432000 yrs.	432000 x 2	432000 x 3	432000 x 4

- अन्तरंग – गुणों से नियन्त्रित – जैसे कलयुग में रहते हुए भी सत्संग, स्वाध्याय, साधना, सात्विक आहार-विहार से रहना सतयुग में ही रहना है।

(b)- वर्ण व्यवस्था –

- बहिरंग – जन्म से आपका जो वर्ण है वह पूर्व जन्मों का फल है तथा जीवन पर्यन्त स्थायी है
- अन्तरंग – अन्त:करण में त्रिगुण की स्थिति से आन्तरिक स्थिति बदलती है।
- शास्त्र व गुरु निर्देश से व्यवहार परिमार्जित व सुसंस्कृत होता है, संवेदात्मक मन का नियन्त्रण होता है, अन्त:करण शुद्ध होता है सात्विक बनता है तथा वह व्यक्ति ज्ञान का अधिकारी होता है।

(c)- वर्ण व्यवस्था से लाभ –

- वंश शुद्धि बनी रहती है।
- समाज में सौहाद्र्य बना रहे परन्तु रोटी-बेटी का व्यवहार अपने अपने वर्ण में हो।
- इस व्यवस्था का नियमन समाज द्वारा होता था। पालन न करने पर जाति बहिष्कार होता था। इसमें राज्य की भूमिका नहीं थी।
- आज के परिपेक्ष में समान संस्कार, समान खान-पान व समान विचार वालों में विवाह हो।

(d)- वर्ण धर्म पालन से लाभ – (स्वस्थ समाज का निर्माण - एक दूसरे के लिये सौहाद्र्य व सम्मान)

- यह प्रवृत्ति का पोषक है।
- वर्ण धर्म के पालन से शीघ्र ही वासना क्षय होता है।
- चित्त शुद्धि होती है तथा आध्यात्मिक लाभ होता है।

(e)- आश्रम धर्म पालन से लाभ –

आश्रम धर्म से व्यक्तिगत उत्थान, यह निवृत्ति का पोषक है।

1. ब्रह्मचर्य आश्रम – निर्माण काल, सृजन वृत्ति, योग्यता निर्माण, शास्त्र व लौकिक विद्या का ग्रहण, तप, संयम, गुरु सेवा, परिश्रम।

2. गृहस्थ आश्रम – धर्म पूर्वक धनोपार्जन, संग्रह व धर्मरूप विलास का अधिकार। तीनों आश्रम के पालन का दायित्व। यज्ञ, दान, तप, उपासना का विधान, विवाह पश्चात् शुद्ध वंश वृद्धि का अधिकार।
3. वानप्रस्थ आश्रम – ईश्वरोन्मुख वृत्ति, नित्य-नैमित्तिक व सकाम कर्मों से मुक्ति। सामाजिक दायित्वों से मुक्ति। उपासना व प्रायश्चित कर्म प्रधान जीवन, सत्संग।
4. संन्यास आश्रम – वैराग्य वृत्ति को क्रम की अपेक्षा नहीं। परमात्मा प्राप्ति ही लक्ष्य है। ज्ञान पश्चात् चाहे घर में रहें चाहे वन में।

4 ज्ञान से कर्म संन्यास – मुख्य विषय - (V 16 - 19)

(a)- कर्म, विकर्म, अकर्म

- लौकिक अर्थ = कर्म (विहित कर्म), विकर्म (वेद विरुद्ध कर्म), अकर्म (कर्म उपरामता / कर्म न करना)
- यथार्थ अर्थ = कर्म, विकर्म व कर्म उपरामता तीनों कर्ता के आधीन हैं, ये माया राज्य में हैं तथा ये तीनों आधार-अधिष्ठान अकर्म आत्मा में अध्यस्थ है।

(b)- कर्म में अकर्म व अकर्म में कर्म दर्शन ही ज्ञान है - उस ज्ञान से कर्म संन्यास –

- कर्म में अकर्म दर्शन = प्रवृत्ति रूपी कर्म व विकर्म तथा निवृत्ति रूपी कर्म उपरामता सभी कर्म हैं, कर्ता के अधीन हैं, माया राज्य में दे०इ०म०बु०प्रा० से होते हैं। ये सब आधार-अधिष्ठान रूपी अकर्म आत्मा में अध्यस्थ हैं।
- अकर्म में कर्म दर्शन = जो कर्म-त्याग (तूष्णीं भाव) में भी कर्म देखता है क्योंकि कर्म न करना भी कर्ता के अधीन है।

निगमन – अत: जो पुरुष क्रिया काल में आत्मा को अकर्म, केवल द्रष्टा-साक्षी रूप देखता है तथा कर्म त्याग में कर्म देखता है वह बुद्धिमान है, युक्त है तथा कृत्कृत्य है अत: आत्मा व माया के धर्म जानकर ही सर्वकर्मसंन्यास संभव है स्वरूपत: नहीं। इस व्यक्ति को ही प्रबुद्ध जन पण्डित कहते हैं जिसने सर्व कर्म इस ज्ञानाग्नि से दग्ध कर दिये हैं।

(c)- ज्ञानी की स्वभावानुसार रहनी – **(V 20 - 23)**

1. यदि प्रवृत्ति मार्गी है तो लोक संग्रह के लिये कर्म - **(V 20)**
2. यदि निवृत्ति मार्गी है तो तूष्णीं भाव व केवल शरीर यात्रा के लिये कर्म - **(V 21 - 22)**
3. यदि सेवा भाव है तो विश्व विराट की सेवा - **(V 23)**

5 यज्ञ प्रकरण - (13 यज्ञ कर्म) - (V 24 - 31)

- **ब्रह्मज्ञानी का यज्ञ** (मुख्य यज्ञ) – ब्रह्मवेत्ता ही जानता है कि एक ब्रह्म ही सत्य है उसके अतिरिक्त सब माया है अत: अर्पण (साधन), हवि (सामग्री), अग्नि, कर्ता (यज्ञ करने वाला), हवन क्रिया, गन्तव्य स्थान (जहॉ पहुँचा जाय), कर्म व समाधि (जहॉ बुद्धि सम हो जाय/आत्मा में लीन हो जाय)। ब्रह्मज्ञानी सबको ब्रह्मरूप देखता है, उसकी सर्वत्र ब्रह्म बुद्धि है।

1. **दैव यज्ञ** – निष्काम भाव से भगवान् की पूजा, उपासना, अभिषेक, यज्ञादि। यह कर्ता योगी है।
2. **ब्रह्माग्नि यज्ञ** – जिसको गुरु मुख से श्रवण हुआ, जिसने मनन किया, जिसे संशय रहित ब्रह्म व आत्मा के एकत्व का ज्ञान है परन्तु विपरीत भावना हटाने के लिये निदिध्यासन/ध्यानाभ्यास करता है → जीवत्व का ब्रह्माग्नि में होम।
3. **संयम यज्ञ** - (a) निवृत्ति यज्ञ (उपरामता) – संसार के विषयों से इन्द्रियों को रोकना तथा अनावश्यक व्यवहार न करना।

4. **संयम यज्ञ** - (b) प्रवृत्ति यज्ञ – केवल शास्त्र सम्मत धर्ममय विषयों का इन्द्रिय रूपी देवता के लिये ग्रहण करना।
5. **आत्म संयम यज्ञ** – आत्म संयम रूपी अग्नि में दसों इन्द्रिय व प्राणों की चेष्टा की आहुति। सम्पूर्ण प्रपंच का तत्त्व ज्ञान से आत्मा रूपी अग्नि में स्वाहा होना।
6. **द्रव्य यज्ञ** – तीर्थों में सुपात्र को भगवान समझ कर द्रव्यों का दान।
7. **तपो यज्ञ** – विवेक पूर्वक तप की साधना।
8. **योग यज्ञ** – अभ्यास पूर्वक योग करना → अष्टांग योग
   विवेक पूर्वक यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि
   - **यम** = सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य।
   - **नियम** = शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान
9. **स्वाध्याय यज्ञ** – विधि पूर्वक वेद, गीता व रामायण का पारायण।
10. **ज्ञान यज्ञ** – शास्त्र के अर्थ को समझने में जीवन लगाना। उक्त यज्ञों को तत्परता व तीव्रता से करने वाले **'संशितव्रता:'** कहलाते हैं।
11. **प्राणायाम परा:** – जो पूरक, रेचक व कुम्भक रूपी प्राणायाम से रोग-निवारण व वासना-क्षय करके चित्त को एकाग्र करते हैं।
12. **प्राणविजय यज्ञ** – ये योगी वायु को परस्पर लीन करने का अभ्यास करते हैं → 'प्राण - अपान - व्यान - समान - उदान'।

    ये नियतआहार करते हैं – नियमित, सम्यक, सात्विक, अल्प, न्यायपूर्वक प्राप्त व देवार्पित

- जो इन 12 प्रकार के यज्ञों को जानता है वह **'यज्ञविद्'** है तथा जो इनका सम्पादन करके निष्पाप होते हैं वे **'यज्ञक्षपितकल्मषा:'** हैं। ये जीव को चित्त शुद्ध व जिज्ञासु बनाते हैं।
- ये सब यज्ञ कर्म कर्मजान हैं, शरीर, मन और वाणी से होने वाले हैं परन्तु आत्मा निर्व्यापार है, केवल द्रष्टा है . ऐसा सम्यक दर्शन बना रहे तो संसार से मुक्त हो जाते हैं।
- सर्व कर्मों की परिसमाप्ति ज्ञान में है।

6. गुरु प्रसक्ति - (V 34)

इस श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति के लिये साधन चतुष्ट्य सम्पन्न अधिकारी श्रद्धालु भक्त श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरु के समीप जाकर सेवा व विनय से प्रश्न करे – बन्धन कैसे हुआ? मुक्ति कैसे होगी? तब गुरु ज्ञान देंगे जिससे जीव का अज्ञान दूर हो जाएगा। गुरु 'अवान्तर' और 'महावाक्य' से ज्ञान देते हैं। स्वरूप बोधक वाक्य अवान्तर वाक्य कहलाते हैं तथा ब्रह्म और आत्मा का एकत्व बताने वाले वाक्य महावाक्य कहलाते हैं।

अवान्तर वाक्य –

- ब्रह्म का स्वरूप लक्षण – 'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म'
- ब्रह्म का तटस्थ लक्षण – 'जन्माद्यस्य यत:' जिससे संसार की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय है वह ब्रह्म है।
- जीव का स्वरूप लक्षण – 'य: एष हृदि अन्तर्ज्योति: पुरुष:'

महावाक्य –

ऋग्वेद	–	ऐतरेय उप०	–	प्रज्ञानं ब्रह्म
यजुर्वेद	–	बृहदारण्यक् उप०	–	अहं ब्रह्मास्मि
सामवेद	–	छांदोग्य उप०	–	तत्त्वमसि
अथर्ववेद	–	माण्डूक्य उप०	–	अयं आत्मा ब्रह्म, सोऽयम् आत्मा

7 ज्ञान प्रकरण - (V 35 - 42)

इस ज्ञान को परम्परा से गुरु से श्रवण करें।

a. ज्ञान का महात्म्य – यदि कोई अतिशय पापी भी हो तब भी इस ज्ञान रूपी नौका से संसार सागर को भली प्रकार पार कर लेगा।

b. जिस प्रकार अग्नि सुगन्धित व दुर्गन्धित दोनों काष्ठ को जलाकर भस्म कर देती है उसी प्रकार ज्ञानाग्नि समस्त पाप-पुण्य रूपी संचित व क्रियमाण कर्मों को भस्म कर देती है। इस शरीर के प्रारब्ध कर्म ईश्वर संकल्प से हैं अत: भोग कर ही क्षय होते हैं परन्तु ज्ञानी के लिये वे आभास मात्र हैं।

c. भगवान् का नाम, पावक (अग्नि), गंगा जल, तुलसी दल – सब पवित्र करने वाले हैं परन्तु ज्ञान सबसे पवित्र है। योग (कर्म-उपासना-ज्ञान) के सिद्ध होने पर मुमुक्षु के अन्त:करण में स्वयं ही यह ज्ञान प्रकट हो जाता है कि **'मैं आत्मा ही ब्रह्म हूँ'**।

d. ज्ञान प्राप्ति का हेतु –

अन्तरंग साधन	–	श्रद्धा	– गुरु व वेद वाक्य में श्रद्धा
बहिरंग साधन	–	तत्पर	– लगन वाला
	–	संयतेन्द्रिय	– मर्यादित ऐन्द्रिक व्यवहार

e. ज्ञान का फल – अचिरेण (शीघ्रता से) ब्रह्मनिर्वाण होकर परम शान्ति प्राप्ति।

f. अज्ञ, अश्रद्धालु को परमात्मा की प्राप्ति नहीं पर इस लोक में प्रयत्न से सुख प्राप्त हो सकता है। संशयात्मा को न इस लोक में सुख न परलोक में सुख, वह अधिक पापी है उसका विनाश होता है।

g. भगवान् का आदेश –

(I) अत: योग (कर्म में अकर्म दर्शन) के द्वारा कर्म का संन्यास करो व ज्ञान के द्वारा संशय का कारण 'अविद्या' का छेदन करो। ब्रह्म के रूप में स्वयं आत्मा को जानने से कर्म बन्धन के हेतु नहीं होते।

(II) अत: उस ज्ञान प्राप्ति के लिये तुम ज्ञान के उपाय रूप साधन **कर्मयोग** में प्रतिष्ठित होकर युद्ध के लिये खड़े हो जाओ। अत: **उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोध** (कठो० - 1.3.14)। उठो जागो बड़ों के पास जाकर जानो।। इति।।

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-4	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
-	-	-

Verse No.	Chapter-4	अर्जुन के सम्बोधन
2, 5, 33	परन्तप	शत्रु को तपाने वाला
5, 9, 37	अर्जुन	असीम् पुण्यों को अर्जित करने वाला, सरल स्वभाव वाला
11, 33	पार्थ	पृथा (कुन्ती) का पुत्र, प्रेम का सम्बोधन
31	कुरुसत्तम	कुरुश्रेष्ठ
35,	पाण्डव	धवल अन्तःकरण वाला
41	धनंजय	राजसूययज्ञ में अनेकों राज्यों पर विजय व अपार धन प्राप्त करने वाला
7, 42	भारत	ज्ञान में रति/प्रीति रखने वाला, महाराज भरत का वंशज

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
42	0	01	41

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

कर्मसंन्यासयोगो नाम

पंचमोऽध्याय:

(29 श्लोक)

अर्जुन श्रेयार्थी है → स्वरूप में विश्राम चाहता है
प्रेयार्थी नहीं है → जो परिस्थिति में विश्राम चाहता है

अर्जुन का भगवान् से प्रश्न – तृतीय अध्याय के **कर्मयोग** तथा **कर्मों के संन्यास** इन दोनों में से मेरे लिये क्या कल्याणकारक है?

कर्म –

1. निकृष्ट-निषिद्ध कर्म करने वाला – पामर, नीच मनुष्य
2. सकाम कर्म करने वाला – संसारी मनुष्य

यहाँ भगवान ने बताया कि अज्ञानी साधक के लिये अन्त:करण की शुद्धि हेतु 2 उपाय हैं –

- प्रवृत्ति मार्गी के लिये – कर्मयोग
- निवृत्ति मार्गी के लिये – कर्म संन्यास (विविदिषा संन्यास)

1 कर्मयोगी (विशेष) – **प्रवृत्ति मार्गी**

यह अधिकारी रजस प्रधान है, इसमें कर्ताभाव प्रबल है। He is a doer. यह कर्म करता है चिन्तन का सामर्थ्य कम है अत: इसे कहा कि कर्म व फल में राग-द्वेष छोड़कर, वेदाज्ञा से भगवान् के बताये कर्मों को कर्तव्य मानकर करो। सब कर्म इस प्रकार करो जिससे सबका भला हो और जो भी फल आये उसे प्रसाद बुद्धि से ग्रहण करो – इसी को ईश्वर की प्रसन्नता के लिये कर्म करना कहते हैं। ईश्वर ने ही अपनी माया से यह दे०इ०म०बु०प्रा० / BMI बनाये हैं अत: इन्हें अपने न मानकर अपितु ईश्वर के मानकर इनसे भली प्रकार कर्म करो। कोई भी कर्म बड़ा या छोटा नहीं होता। अपनी बुद्धि व सामर्थ्य के अनुसार विहित कर्म करो।

लाभ – जिस प्रकार सेवक की सेवा से प्रसन्न होकर स्वामी, सेवक का सब प्रकार से ध्यान करता है उसी प्रकार भगवान् इस कर्मयोगी का सब प्रकार से ध्यान करते हैं जो भगवान् को प्रसन्न करने की भावना से ही सब कर्म करता है। उसका योग-क्षेम वहन, अभ्युदय (लोक में सर्व सुख प्राप्ति व यश) तथा उसके अन्त:करण को शुद्ध करते हैं। प्रहरी (Watchman) बनकर बुरी भावना व विचार को भीतर नहीं आने देते तथा अच्छी भावना व विचार को पुष्ट करते हैं।

2 कर्म संन्यास – निवृत्त मार्गी

दो प्रकार के मनुष्य कर्म त्याग करते हैं –

i. जो संसार में कर्म करने से भयभीत हैं, भिक्षा से जीविकोपार्जन अथवा इच्छा पूर्ति हेतु महंत पद के लिये बिना कर्म करे सुविधा पूर्वक जीवन जीना चाहते

हैं - ये भगोड़ों का संन्यास है। केवल गैरिक वस्त्र धारण करते हैं, संन्यास जीवन की मर्यादा का पालन नहीं करते।

ii. विविदिशा संन्यास (एकदेशीय) - यह निवृत्ति मार्गी है, इसमें भी कुछ इच्छाएं हैं लेकिन उन इच्छाओं को छोड़ना चाहता है। इसमें तत्त्व को जानने की जिज्ञासा है। यह गुरु आज्ञा में रह कर यम, नियम, आश्रम में सेवा, भिक्षाटन, एकान्तवास, गुरु सेवा व ध्यान करता है। कर्ताभाव पुष्ट है अत: यह मार्ग कष्टकर है। अकर्मण्यता से आलस्य, निद्रा, प्रमाद आदि दोष भी होते हैं।

*** अत: इस मार्ग से कर्मयोग करने में सरल है परन्तु फल में दोनों ही नि:श्रेयस** (अन्त:करण शुद्धि) **देने वाले हैं।**

क्रम में विकल्प –

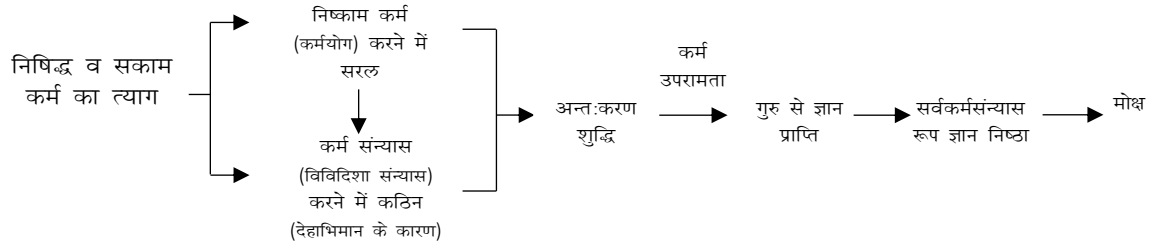

- निष्काम कर्म जब सम बुद्धि से युक्त होता है तो वह योग है।
- कर्म संन्यास जब ज्ञान सहित है तो वह सॉख्य है।
- दोनों का फल मोक्ष है।
- अब इस अध्याय में संन्यास अर्थात् सॉख्य, अत: कर्म संन्यास 'सर्वकर्मसंन्यास' है।

ज्ञानी का तो सर्वकर्मसंन्यास पर ही अधिकार है क्योंकि ज्ञानी ने स्वयं को अकर्म आत्मा जाना है। वह कृतकृत्य है, उसके द्वारा किये गये कर्म क्रिया मात्र हैं, कर्माभास हैं। जैसे राजा जनक राज्य कर्म करते रहे, याज्ञवल्क्य ऋषि यज्ञ कर्म व अध्यापन करते रहेतथा वशिष्ठजी पुरोहित कर्म व अध्यापन करते रहे। यह पारमार्थिक संन्यास उसके लिये कठिन है जिसने कर्मयोग का भली प्रकार अनुष्ठान नहीं किया है। परन्तु जो **योग युक्त** है –

- वह विशुद्ध मन वाला है,
- ईश्वर का सेवक बनकर कर्म करता है,
- उसका शरीर उसके वश में है,
- उसकी इन्द्रियॉ उसके वश में हैं (सम्यक व्यवहार),

ऐसे मुनि (मनन करने वाले) को शीघ्र ही पारमार्थिक संन्यास प्राप्त होता है।

तत्त्वज्ञानी की दृष्टि – (V 8 - 9)

स्वयं को अकर्ता ब्रह्म जानता है अत: शरीर से कर्म होने पर जैसे देखने, सुनने, छूने, सूँघने, खाने, चलने, सोने, सॉस लेने, बोलने, त्याग व ग्रहण करने, ऑख खोलने व मूँदने में भी - 'इन्द्रियॉ इन्द्रियों में विचर रही हैं' ऐसा जानकर कहता है कि मैं कुछ नहीं करता।

(V 13)

इस प्रकार सर्व कर्मों को (निषिद्ध, काम्य, नित्य, नैमित्य) त्याग कर इस 9 द्वार वाले शरीर में जो उसके वश में है, वह सुख पूर्वक बैठता है। न कुछ करता है न करवाता है क्योंकि आत्मा अकर्म है।

9 द्वार = दो ऑख, दो कान, दो नासिका के छिद्र, एक मुख व दो अधो भाग में मन व मूत्र परित्याग के छिद्र।

(V 14)

निरुपाधिक ब्रह्म / आत्मा –

- निष्क्रिय-निर्विकार है, कुछ नहीं करता।

सोपाधिक ब्रह्म / मायोपाधिक ब्रह्म / माया विशिष्ट ब्रह्म ही –

- जगत की उत्पत्ति, स्थिति, संहार करता है।
- अन्तर्यामी रूप से दे०इ०म०बु०प्राणों का प्रेरक बनता है।
- जीवरूप से कर्ता-भोक्ता, ईश्वर रूप से कर्माध्यक्ष, कर्मफल दाता व सर्वलोक महेश्वर बनता है।

(V 15)

वस्तुत: निरुपाधिक ब्रह्म/आत्मा विभु (सर्वव्यापी) एक है, अद्वय है, किसी के पाप-पुण्य नहीं लेता। वही माया (अज्ञान) से अनेक रूपों में (विवर्त) दीखता है अत: सारा संसार अज्ञान का ही परिणाम व ब्रह्म का विवर्त है।

(V 16 - 17)

- परमात्मा के तत्त्वज्ञान द्वारा जिनका अज्ञान नष्ट हो गया है उनका वह ज्ञान सूर्य के सदृश सच्चिदानन्द परमात्मा को प्रकाशित कर देता है।
- जिनका मन और बुद्धि तद्रूप हो रही है व सच्चिदानन्द परमात्मा में जिनकी निरन्तर एकीभाव से स्थिति है ऐसे पुरुष ज्ञान के द्वारा पाप रहित होकर परमगति को प्राप्त होते हैं।

(V 18 - 23)

ब्रह्मज्ञानी के लक्षण – (ये लक्षण साधक के लिये साधना हैं)

- ब्रह्मज्ञानी समदर्शन करता है समवर्तन नहीं।
- **'सर्व में ब्रह्म दर्शन'** करता है परन्तु सात्विक-ब्राह्मण, रजोगुणी-गाय, तमोगुणी-हाथी, कुत्ता व चांडाल - इन सबके साथ मर्यादा पूर्वक यथा-योग्य व्यवहार करता है एक जैसा नहीं।
- न इष्ट प्राप्ति में हर्षित, न अनिष्ट प्राप्ति में व्यथित (दु:खी) होता है – परिस्थिति निरपेक्ष।
- बाह्य विषयों में अनासक्त तथा सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा के ध्यानरूप योग में अभिन्नभाव से स्थित – तदन्तर अक्षय आनंद का अनुभव।
- काम क्रोध के वेग पर नियंत्रण, अत: सुखी।

(V 24 - 26)

- **निर्वाण की स्थिति** – जो ब्रह्म को जानकर ब्रह्म में स्थित हैं उन्हें **ब्रह्मभूत** कहते हैं।
- **विदेह मुक्त** – ज्ञान पश्चात् इनके शरीर का प्रारब्ध पूर्ण होने पर पुनर्जन्म नहीं होता।

(V 27 - 29)

ध्यानयोग के श्लोक

सम्यक ज्ञान के अन्तरंग साधन

(सॉख्य योग में प्रवेश हेतु)

(V 27)

ध्यान के अंग → 1-यम 2-नियम 3-आसन 4-प्राणायाम 5-प्रत्याहार, 6-धारणा, 7-ध्यान 8-समाधि।

- यम (दूसरों के साथ व्यवहार में) – a. सत्य b. अहिंसा c. अस्तेय d. अपरिग्रह e. ब्रह्मचर्य
- नियम (स्वयं के लिये होते हैं) – a. शौच b. संतोष c. तप d. स्वाध्याय e. ईश्वर प्राणिधान

(V 28)

शुद्ध करण → 'यतेन्द्रिय मुनि मोक्षपरायणा:'
ध्यान से शनै: शनै: इच्छाएं कम होती जाती हैं अत: भय व क्रोध भी कम होता जाता है, यही व्यक्ति सुखी व मुक्त है।

(V 29) **ध्येय का स्वरूप**

नि०-नि० ब्रह्म – चेतन तत्त्व निरुपाधिक ब्रह्म	**स०निराकार ब्रह्म – ईश्वर** सोपाधिक ब्रह्म (माया सहित)	**सगुण साकार ब्रह्म** अवतार - राम, कृष्ण
अकर्ता-अभोक्ता शुद्ध चैतन्य	**मुख्य कर्ता** व **भोक्ता** (देवता रूप से सब यज्ञ/तप का भोक्ता)	ज्ञानावतार
आधार-अधिष्ठान रूप	**सर्वलोक महेश्वर** ○ कर्माध्यक्ष ○ कर्मफल दाता	○ असुरों का नाश ○ गौ, ब्राह्मण, साधु की रक्षा
द्रष्टा साक्षी मात्र	**सुहृदं सर्वभूतानां** ○ अन्तर्यामी रूप से सलाह देने वाला	पिता, पुत्र, पति, सखा, प्रेमी, स्वामी के रूप में

इस प्रकार दोनों रूपों को जानकर सर्व संसार उपरामता रूपी शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

।। इति।।

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-5	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
1	कृष्ण	श्याम वर्ण, हृदय को आकर्षित करने वाला, विष्णु का आठवॉ अवतार

Verse No.	Chapter-5	अर्जुन के सम्बोधन
3, 6	महाबाहो	महा बलशाली
22	कौन्तेय	कुन्ती पुत्र, क्षत्राणी पुत्र की गरिमा का भान कराने वाला

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
29	0	01	28

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

आत्मसंयमयोगो नाम

षष्ठोऽध्याय:

(47 श्लोक)

सॉख्ययोग अर्थात् यथार्थ ज्ञान के लिये 'बहिरंग साधन' **कर्मयोग** है तथा जब शम (उपरामता) व चिन्तन का सामर्थ्य हो तब 'अन्तरंग साधन' **ध्यानयोग** पर आरूढ़ होना चाहिये।

(V 01) भगवान् कर्मयोगी की प्रशंसा कर उसे संन्यासी व योगी कहते हैं।

- संन्यासी – क्योंकि उसने कर्मासक्ति व कर्मफल संकल्प का त्याग किया है।
- योगी – क्योंकि कर्मफल के त्याग से उसका चित्त शान्त व समाहित है।
- केवल निरग्नि व अक्रिय ही संन्यासी नहीं होता, उसने शास्त्राज्ञा से अग्नि से होने वाले यज्ञ कर्म व इष्टापूर्ति रूपी लौकिक कर्मों का त्याग किया है।

(V 02) प्रवृत्तिरूप कर्मयोगी व निवृत्तिरूप कर्मसंन्यास में क्या समानता है?

- निष्काम कर्मयोगी ने कर्मफल के संकल्प का त्याग किया है तथा ईश्वर का सेवक बनकर कर्म करता है।
- परमार्थ संन्यासी ने संकल्प-कामना-कर्म-फल सर्व का मिथ्या जानकर त्याग किया है।

(V 03) ध्यानयोग की इच्छा वाले साधक (योगारुरुक्षु) के लिये कर्तव्य → निष्काम कर्मयोग।
ध्यानयोग में स्थित होने वाले साधक (योगारूढ़) के लिये कर्तव्य → उपशम (शास्त्रीय व लौकिक कर्मों से निवृत्ति)

(V 04) कर्मयोगी कब ध्यानयोग पर आरूढ़ हो? (मुनि वृत्ति - चिन्तन सामर्थ्य)

उपरामता –

1. जब विषयों व फल के प्रति राग न हो – संसार से वैराग्य हो।
2. रजस क्षीण हो व कर्ताभाव शिथिल हो।

वरण शुद्धि –

3. सर्वसंकल्प त्यागी – इस लोक व परलोक के भोगों व उनके कारणरूप संकल्पों का त्याग
4. एकान्त प्रिय हो → उसका रचनात्मक उपयोग हो।

(V 05) योगारूढ़ कैसे इस अनर्थरूपी संसार सागर से स्वयं को पार करता है?

- साधक अपने द्वारा ही अपना उद्धार करे।
- स्वयं को अधोगति में न डाले क्योंकि मनुष्य आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु।

(V 06) जिसने अपने मन, इन्द्रिय व शरीर को जीता है वह जितात्मना अपना मित्र/बन्धु है और जिसने अपने मन, इन्द्रिय व शरीर को नहीं जीता है वह अजितान्मन: है, वह स्वयं अपना अपना शत्रु है।

* युक्त होना जीवन की परम उपलब्धि है *

गीताजी के महानायक (युक्त) के लक्षण

(V 07 - 09)

(V 07) यह जितात्मन: (दे०इ०म०मित्र हैं), प्रशान्त (शान्त मन) द्वन्द्वों में सम है। इस युक्त संन्यासी को सर्वत्र परमात्मा प्राप्त है, आत्मा रूप से।

(V 08) युक्त की बुद्धि में –

- आत्मा-परमात्मा के एकत्व की स्थिर प्रज्ञा है → अलम प्रत्यय से तृप्त अन्त:करण।
- अत: बाह्य परिस्थिति से विचलित नहीं होता।
- इन्द्रियॉ वश में हैं अत: बिना प्रयास उपरामता है।
- बाह्य निर्जीव वस्तुओं के प्रति द्रष्टि – इन पदार्थों में सत्-बुद्धि, सुख-बुद्धि, महत्-बुद्धि नहीं। मिट्टी, पत्थर, स्वर्ण मायामय होने से सब समान हैं, इनकी उपयोगिता है पर ये तृप्ति का हेतु नहीं हैं।

(V 09) युक्त की सजीव के प्रति दृष्टि – सुहृद्, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य, बन्धु, साधु और पापी इन ९ सम्बन्धों में सम बुद्धि अर्थात् कौन? क्या? कैसा? क्यों कर रहा है इस पर विचार नहीं। जगत स्वप्नवत् लगता है, भगवान् की लीला देखता है।

योगी से युक्त बनने की यात्रा

(V 10 - 32)

योगारूढ़ से 'घ्यान/आत्म चिन्तन द्वारा' शान्ति प्राप्ति की यात्रा - (V 10 - 15)

बाह्य साधन – एकान्त में, असहाय अवस्था - केवल परमात्मा का भरोसा, जीते हुए शरीर व मन से अपरिग्रही होकर, तीव्र वैराग्य सहित परमात्म चिन्तन करे।

(V 10) यम नियम के द्योतक – 'योगी'

(V 11) योगाभ्यास करने वाले के लिये आसन का वर्णन –

- पवित्र स्थान में, न अधिक ऊँचा, न अधिक नीचा।
- पहले कुशा, फिर कम्बल, फिर वस्त्र।

(V 12) आत्मशुद्धि के लिये ध्यानाभ्यास करो – 'आत्म चिन्तन' करो।

(V 13) शरीर की स्थिति का वर्णन – काय (धड़), शिरो (सिर), ग्रीवा (गर्दन) को स्थिर करके बैठो व मन को नासिका के अग्र भाग पर एकाग्र करके आत्म चिन्तन करो।

(V 14) युक्त के लक्षण –

- प्रशान्तात्मा, भय से मुक्त, ब्रह्म परायण जीवन, मन का संयम
- मच्चित: - मुझ परमात्मा में तुष्ट तथा मत्पर: - मुझे श्रेष्ठ मानने वाला
- V-10 का योगी, V-12 का आत्म विशुद्ध, V-13 का स्थिर, V-14 का युक्त है।

(V 15) ध्यान का फल – जो नियमित रूप से ध्यान (आत्म चिन्तन) करता है, अपना अन्त:करण मुझसे जोड़ता है वह मुझसे प्राप्त होने वाले सात्विक सुख को प्राप्त करता है व यही सुख इसे निर्वाण दायिनी शान्ति प्राप्ति के लिये परम ज्ञान निष्ठ करता है।

(V 16) ध्यान के स्थूल विघ्न –

- अधिक खाने से – निद्रा, आलस्य, शरीर में कष्ट।
- कम खाने से – शरीर रक्षण नहीं।
- अधिक व कम सोने वाले में एकाग्रता नहीं होती।

(V 17) सम्यक ध्यान के लिये आदेश –

- युक्त आहार, युक्त विहार, युक्त चेष्टा, सम्यक निद्रा व जागना (सम्यक विश्राम)
- इस प्रकार से निर्देशित दिनचर्या में रह कर ध्यानाभ्यास से → दु:खहा योग सिद्ध अर्थात् त्रिविध ताप शान्त होता है।
    - शुद्ध व्यवहार से → आधिभौतिक शान्ति
    - शान्त मन से → आध्यात्मिक शान्ति
    - इन दोनों शान्ति से → आधिदैविक दु:ख को सहने की शक्ति

(V 18) निगमन श्लोक – वश में किया गया एकाग्र चित्त सब बाह्य चिन्तन छोड़कर केवल आत्म चिन्तन करता है। यह दृष्ट-अदृष्ट भोगों की लालसा से रहित है। ऐसे योगी को ही **युक्त** कहते हैं।

समाधिस्थ चित्त की महिमा

(V 19 - 23)

(V 19) जैसे वायुरहित स्थान में रखा प्रज्ज्वलित दीप कंपित नहीं होता वैसे ही विषय विक्षेप से रहित, आत्म चिन्तन से परिपूर्ण चित्त निष्कम्प रहता है।

(V 20) ऐसा चित्त निरन्तर योगाभ्यास से संसार से उपरत होकर संतुष्ट होता है। शुद्ध बुद्धि से ब्रह्माकार/आत्माकार वृत्ति द्वारा परम ज्योति स्वरूप आत्मा को चित्त में स्वयं के रूप में साक्षात् उपलब्ध करता है → **अहं आत्मा** (द्रष्टा-साक्षी रूप में)

(V 21) स्वरूप सुख का वर्णन –

यह सुख आत्यन्तिक अर्थात् स्वाधीन सुख है → स्वाधीन, अनंत, अखण्ड, एकरस, चिन्मय, तन्मय, स्थिर, अचल, प्रयास रहित, स्वकाले एवं परिणाम काले सुखं। यह सुख शुद्ध-सूक्ष्म बुद्धि ग्राह्य है, क्योंकि ये विषय सुख नहीं अत: इन्द्रियग्राह नहीं है। स्वरूप में स्थित ज्ञानी तत्त्व से विचलित नहीं होता।

(V 22) आत्म लाभ अर्थात् **'अयम् आत्मा ब्रह्म'** ऐसा जानकर यह योगी बाह्य लाभ निरपेक्ष होता है, बड़े से बड़े दु:ख में भी विचलित नहीं होता। इसका सुख अनाहत है, अबाधित है।

(V 23) योग की परिभाषा (गीताजी के अनुसार)

योग = दु:ख के संयोग के वियोग का नाम योग है, दु:ख वियोग का नाम योग नहीं अर्थात् दु:ख तो है परन्तु वह अपने से चिपक न सके। जन्म-मरण हो, धन हरण हो, भवन दहन हो – दु:ख तो संसार में रहेगा ही। दु:ख को मिटाना योग का काम नहीं, स्वयं को दु:ख के चिपकने से बचा लेना ही योग है अर्थात् दिल को Shock proof नहीं 'शोक proof' बनाओ। अत: निश्चय दृढ़ करके बिना उकताये योगाभ्यास करो।

■ **अविद्या से जीव का दु:ख से संयोग हुआ है, विद्या से उस दु:ख संयोग का वियोग ही योग है।**

(V 24, 25, 26) सूक्ष्म विघ्न व उनका निवारण –

1. संकल्प-सर्व कामना का स्फुरण - यह मायामय है, ऐसा जानकर उपेक्षा करो, उदासीन रहो।
2. विवेक युक्त मन से सर्व इन्द्रियों को विनियमन करो।
3. धृति युक्त बुद्धि द्वारा विषयों से उपराम होकर परमात्म चिन्तन, संसार चिन्तन नहीं।
4. सूक्ष्म विघ्न शान्त – a. कशाय, b. विक्षेप, c. रसास्वाद, d. निद्रा
5. मन जहॉ जहॉ जाए वहॉ विवेक एवं वैराग्य से उसका नियमन करो।

गीताजी का महानायक व उसकी उपलब्धि

(V 27)

- प्रशान्त मन वाला (प्रसन्न निर्मल मन), शान्त रजस वाला (एकाग्र मन), अकल्मष (पाप रहित वैदिक साधु आचरण वाला)
- ईश्वर, जीव, जगत सब ब्रह्म ही है ऐसी प्रमा से विभूषित।
- ऐसे योगी के पास निरतिशय सुख स्वयं चल कर आता है।

(V 28) जो निरन्तर दीर्घ काल तक क्रम से ध्यानाभ्यास करके विगतकल्मष (स्थूल व सूक्ष्म विघ्न नाश) हुआ है वह अनायास सुखपूर्वक ब्रह्म-आत्म-एकत्व प्रमा को प्राप्त करता है।

■ **योग युक्त का चरम फल – ब्रह्मात्म ऐक्यम्** → आत्यन्तिक दु:ख निवृत्ति
→ परम सुख प्राप्ति

(V 29) त्वं पद शोधन (सम दृष्टि है) –

- सर्व भूतों में आत्मा को देखता है।
- सर्व भूतों को आत्मा में अध्यस्थ देखता है।
- यह सब ब्रह्म है, यह सब आत्मा है, यह सब मैं हूॅ।
  (ब्रह्मैव इदं सर्वम्) (आत्मैव इदं सर्वम्) (अहमेव इदं सर्वम्)

(V 30) तत् पद शोधन (भक्त दृष्टि) –

सर्व भूतों में मुझ व्यापक वासुदेव को आत्मा रूप से देखता है व सब भूतों को मुझ परमात्मा में देखता है। उस ज्ञानी भक्त के लिये मैं ईश्वर कभी अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता क्योंकि उसका और मेरा स्वरूप एक है।

परमार्थ = मैं आत्मा ही परमात्मा है – **सत्**

व्यवहार = मैं आत्मा-परमात्मा ही माया से सर्व नाम-रूप से भासता है – **मिथ्या**

(V 31) असि पद शोधन (यथार्थ दृष्टि) –

जो सारे भूतों में स्थित मुझ वासुदेव को अपनी आत्मा के रूप में भजता है वह ज्ञानी है। वह सर्व व्यवहार करता हुआ मुझ परमात्मा में ही वर्तता है। यह स्थिति प्रमा जन्य है कर्म जन्य नहीं है अत: व्यवहार के स्खलन से स्थिति स्खलन नहीं होता।

(V 32) परम योगी (अहिंसक सम्यग्दर्शी योगी / ज्ञानी की आचार संहिता) **–**

ऐसा देखता है जैसे मुझे सुख प्रिय है व दु:ख अप्रिय है वैसे ही सब प्राणियों के लिये सुख अनुकूल व दु:ख प्रतिकूल है अत: शरीर, वाणी व मन से किसी को कष्ट नहीं देता, यह अहिंसक है व अपने को उपमा बनाकर कर्म करता है। यह सब योगियों में **परम-उत्कृष्ट योगी** है।

(V 33 - 34) अर्जुन का प्रश्न –

सम्यग्दर्शन योग के प्रतिपादन में कठिनाई, अचल स्थिति कठिन है क्योंकि यह मन चंचल है। मन को रोकना वायु को रोकने से भी कठिन है। मन कपि के समान चंचल है, प्रमाथि (श०इ०म० को क्षुब्ध करने वाला), बलवत् (वश में करना कठिन) व दृढ़म (कभी न थकने वाला) है।

(V 35 - 36) भगवान् का उत्तर –

यह मन चंचल है, वश में करना कठिन है परन्तु **अभ्यास** एवं **वैराग्य** से यह समदर्शन (आत्मदर्शन) रूपी योग प्राप्त होता है।

- **अभ्यास** – समाहित चित्त से निरन्तर आत्म चिन्तन व संसार चिन्तन तिरस्कृति,
- **वैराग्य** – संसार में दु:ख व दोष दर्शन, अनित्य देखना, दृष्ट-अदृष्ट भोग अन्तत: दु:खरूप
- **असंयतात्मना** – जो राग-द्वेष से अभिभूत है – योग अप्राप्य, कठिन है।
- **वश्यात्मना** – संयत अन्त:करण व तत्पर साधक – योग सिद्ध होता है।

(V 37 - 39) अर्जुन का गति सम्बन्धी प्रश्न –

जो श्रद्धालु हैं पर योग करने में तत्पर नहीं अत: योग सिद्धि प्राप्त नहीं - उसकी गति क्या है? उसने श्रद्धा से कर्माश्रय का त्याग किया, निवृत्ति मार्गी हुआ पर सम्यक ज्ञान न हुआ तो क्या वह उभय भ्रष्ट होकर बादलों की भाँति नष्ट हो जाता है - 'माया मिली न राम'। आप ही मेरे इस संशय को मिटा सकते हैं।

भगवान् की साधना में रत योगी का उल्लेख

(V 40 - 45)

(V 40) हे अर्जुन! इस योग भ्रष्ट का न इस लोक में विनाश होता है और न परलोक में। इसकी कभी दुर्गति (हीन जन्म) नहीं होती, कल्याण ही होता है क्योंकि ये मेरे मार्ग में चलने वाला है।

(V 41) जो श्रद्धा से पूर्ण हैं परन्तु मन्द प्रयास वाले हैं ऐसे योगभ्रष्ट देह त्याग के पश्चात् उत्तम लोकों को प्राप्त होते हैं, फिर भोग क्षय होने पर शुचीनां (पवित्र वंश वाले) व श्रीमतां अर्थात् धनी कुल में जन्म लेते हैं।

(V 42) जो तत्पर वैरागी साधक थे परन्तु उनका सिद्धि से पहले ही देह पात हो गया वे धीमतां (ज्ञानवान्) तत्वज्ञ योगियों के कुल में जन्म लेते हैं, इस प्रकार का जन्म इस लोक में अत्यन्त दुर्लभ है।

(V 43) वहाँ जन्म लेकर इसके पूर्व शरीर के संग्रह किये योग संस्कार अनायास ही बुद्धि में प्राप्त हो जाते हैं तथा यह फिर तीव्रता से योग सिद्धि के लिये प्रयत्न करता है।

(V 44) योगभ्रष्ट जो पवित्र श्रीमानों के घर में जन्म लेता है वह भोगों के परवश होते हुए भी पूर्व अभ्यास के कारण परमात्मा की ओर खिंच जाता है। ऐसा योग का जिज्ञासु वेदों में कहे गये सकाम कर्मों का अतिक्रमण कर जाता है।

(V 45) अभ्यास करने वाला तथा जप, तप, संध्या, ध्यान, स्वाध्याय, सत्संग, श्र०म०नि० करके शुद्ध हुआ **योगी** धर्म मेघ रूपी संस्कारों से पाप का नाश कर परम गति रूप परमात्मा के सम्यक दर्शन को प्राप्त होता है।

(V 46) साधनों में श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम का तारतम्य –

यह **योगी** सकामभाव वाले तपस्वी (तप करने वाले), ज्ञानी (अपरा विद्या पण्डित) एवं कर्मी (यज्ञ, दान, तप करने वाले, जिससे संसार प्राप्ति होती है) इन सबसे श्रेष्ठ है। अत: भगवान् का आदेश – **तू योगी बन।**

(V 47) योगियों में सर्वश्रेष्ठ कौन है? –

1. जो केवल चित्त शान्ति के लिये ध्यानाभ्यास करते हैं।
2. जो चक्रों का ध्यान करते हैं।
3. जो रुद्र, आदित्य, इन्द्र, वरुण, अग्निदेव आदि का ध्यान करते हैं।
4. जो मुझमें मन लगाकर मुझ परमात्मा को श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक भजते हैं वे युक्ततम् - सर्वश्रेष्ठ योगी हैं।। इति ।।

—०००—

Verse No.	Chapter-6	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
33	मधुसूदन	मोह ममता व मधु दैत्य को मारने वाले
34, 37, 39	कृष्ण	श्याम वर्ण, हृदय को आकर्षित करने वाला, विष्णु का आठवॉ अवतार
38	महाबाहो	सर्व शक्तिमान, लम्बी भुजाओं वाले

Verse No.	Chapter-6	अर्जुन के सम्बोधन
2	पाण्डव	धवल अन्त:करण वाला
16, 32, 46	अर्जुन	असीम् पुण्यों को अर्जित करने वाला, सरल स्वभाव वाला
35	महाबाहो	महा बलशाली
35	कौन्तेय	कुन्ती पुत्र, क्षत्राणी पुत्र की गरिमा का भान कराने वाला
40	पार्थ	पृथा (कुन्ती) का पुत्र, प्रेम का सम्बोधन
43	कुरुनन्दन	कुरु वंशज

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
47	0	5	42

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

ज्ञानविज्ञानयोगो नाम

सप्तमोऽध्याय:

(30 श्लोक)

प्रस्तावना

पहले छ: अध्याय में :—

- त्वम् पद – कार्योपाधिक चेतन 'जीव' का आत्मा रूप से निरूपण – Ch.2 - **(V 11-30)**
- निष्काम कर्म एवं योग के द्वारा त्वम् पद की सिद्धि होती है – Ch.3 to 6 (साधन रूप)

दूसरे छ: अध्याय में :—

भक्ति के द्वारा भजनीय (ईश्वर) के स्वरूप का ज्ञान – **तत् पदार्थ** की सिद्धि होती है
भक्ति २ काम करती है –

1. अन्त:करण में अशुभ वासना को हटाकर शुभ वासना का उदय कराती है।
2. भजनीय के स्वरूप को उज्ज्वल करके दिखा देती है।

अत: भगवान् कहते हैं – मेरी भक्ति कर।

उपासना – जो प्रत्यक्ष रूप से अनीश्वर है उसमें परोक्ष ईश्वर की भावना को लाकर बैठाना अर्थात् उसके निमित्त से अपने अन्त:करण को ईश्वराकार बनाना - उपासना है।

जैसे शालग्राम की बटिया में चतुर्भुज विष्णु एवं चतुर्भुजी विष्णु में भी अन्तर्यामी ईश्वर की भावना तथा वही परोक्ष अन्तर्यामी जब प्रत्यक् चैतन्य से अभिन्न होगा तो महावाक्य द्वारा आत्मा रूप से अपरोक्ष हो जायेगा।

- वचन प्रधान धर्म होता है
- भजनीय प्रधान भक्ति होती है
- अनुभव प्रधान तत्त्व बोध होता है

-०००-

*** अब भगवान् अपना ज्ञान, अपना दर्शन तथा बन्धन और मुक्ति का हेतु बताते हैं ***

(V 01) अधिकारी – (Ch. 6 का युक्ततम् योगी)

श्रद्धालु–मेरी शरण लेने वाला, वैरागी–शिथिल राग-द्वेष वाला, मेरा भजन करने वाला, तत्त्व को जानने का इच्छुक जो योग से जुड़ता है व श्रवण-मनन-निदिध्यासन करता है।

(V 02) वह मुझे समग्र रूप से जान जायेगा – (मेरे तीनों रूपों को जान जायेगा)

1. निर्गुण निराकार – सत्-चित्-आनंद ब्रह्म
2. सगुण निराकार – ईश्वर
3. सगुण साकार – अवतार

मैं उस ज्ञान को विज्ञान (अनुभव) सहित कहूँगा जिसे जानकर और कुछ जानना शेष नहीं रहेगा। तू सर्वज्ञ होकर अशुभ संसार से मुक्त हो जायेगा।

(V 03) सहस्त्रों मनुष्यों में कोई एक मोक्ष सिद्धि के लिये यत्न करता है, उन यत्न करने वाले सहस्त्रों में कोई एक मुझे यथार्थ रूप से जानता है। अधिकतर मनुष्य कर्म का आश्रय लेते हैं मेरा नहीं और यदि लेते भी हैं तो मेरे सकामी भक्त होते हैं।

(V 04 & 05) हे महाबाहो! मेरी 2 प्रकृति के संयोग से ही सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं —

a) **अपरा प्रकृति –** 1-पृथ्वी, 2-जल, 3-अग्नि, 4-वायु, 5-आकाश (पंच तन्मात्रा) तथा 6-मन (अहं तत्त्व), 7-बुद्धि (महत् तत्त्व), 8-अहंकार (मूल प्रकृति)। यह अष्टधा प्रकृति निकृष्ट, जड़, अशुद्ध, बन्धन रूपा है। इसे **क्षेत्र** कहते हैं।

b) **परा प्रकृति –** अपरा से भिन्न मेरी जीवरूपा चेतन परा प्रकृति है जो जगत को धारण करती है, वह मेरा प्रतिबिम्ब रूप है। यह उत्कृष्ट, चेतन, शुद्ध, आत्मभूता है। इसे **क्षेत्रज्ञ** कहते हैं। वही भ्रम से एक शरीर में अहंता-ममता करके इस संसार में भ्रमण करती है।

(V 06 & 07) दोनों प्रकृति का मूल कारण क्या है?

भगवान् कहते हैं मैं ही संसार का मूल कारण हूँ क्योंकि मुझसे ही संसार उत्पन्न होता है, मुझमें ही रहता है और मुझमें ही लीन होता है। मेरे सिवाय इस संसार का दूसरा कोई भी कारण नहीं है। जैसे सूत की बनी माला में मणियाँ भी सूत है और पिरोये जाने वाला धागा भी सूत है, सब 'सूत ही सूत' है ऐसे ही सम्पूर्ण संसार **'मैं ही मैं हूँ'**।

अत: परमात्मा कहते हैं मैं आधार-अधिष्ठान हूँ
- 1-प्रतिबिम्बरूप जीव भी मैं – परा प्रकृति – निमित्त कारण
- 2-छायारूप अष्टधा प्रकृति भी मैं – अपरा प्रकृति – उपादान कारण

→ नाम - रूपात्मक जगत

(V 08 & 11) 1- ये उपासना के श्लोक हैं

2- प्रभु मैं आपको कैसे समझूँ? किन किन वस्तुओं व जगह में आपके दर्शन करूँ?

	मणि स्थानीय जगत		सूत्र स्थानीय परमात्मा
1	जल	में	रस
2	सूर्य / चन्द्र	में	प्रभा / चन्द्रिका
3	वेदों	में	प्रणव ओंकार
4	आकाश	में	शब्द
5	मनुष्य	में	पुरुषार्थ
6	पृथ्वी	में	पुण्य गन्ध
7	अग्नि	में	तेज
8	प्राणियों	में	जीवन शक्ति
9	तपस्वियों	में	तप
10	सर्व प्राणियों	का	सनातन बीज
11	बुद्धिमानों	में	बुद्धि (विवेक शक्ति)
12	तेजस्वियों	का	तेज (प्रभाव)
13	बलवान	में	कामना-आसक्ति रहित सात्विक बल
14	धर्मशील मनुष्यों	में	धर्मयुक्त काम

(V 12) तथा अन्य जितने भी सात्विक (देव भाव), राजसिक (मनुष्य भाव), तामसिक (राक्षसी भाव) हैं वे सब भी मुझसे ही होते हैं अर्थात् मुझ चेतन से ही प्रकाशित होते हैं। गुणों के उत्पन्न होने में

जीव को कोई स्वतन्त्रता नहीं है परन्तु उन गुणों के वश में होकर कर्म करने में अथवा न करने में मनुष्य स्वतन्त्र है तथा साधना (ज्ञान व तप) द्वारा उन गुणों को बदलने में भी जीव सक्षम है। ये गुणों से उत्पन्न भाव मुझसे उत्पन्न होते हैं पर मैं इनमें नहीं हूँ अर्थात् मुझ अधिष्ठान रूप ईश्वर में ये प्रकृति से उत्पन्न गुण मिथ्या होने से अध्यस्थ हैं - भ्रमरूप हैं, सचमुच में नहीं हैं।

(V 13) संसार में सब आपको क्यों नहीं जानते?

संसार में समस्त जन 3 गुणों के भाव (सत्त्व–सुख, रजस–राग-द्वेष, तमस–मोह) एवं जगत के पदार्थों से मोहित होकर व शरीरों में अहंता-ममता करके, न स्वयं को जान पाता है और न ही मुझ परमात्मा को जो सब शरीरों में जीवरूप से द्रष्टा रूप से विद्यमान है। संसारी जन तीन गुणों में ही रचे-पचे रहते हैं, मुझ गुणातीत-असंग परमात्मा को नहीं जानते।

(V 14) मुक्ति का हेतु क्या है – आपको कौन जानते हैं?

सभी मनुष्य 3 गुण वाली दुस्तर माया के कारण ही मुझे नहीं जान पाते अत: जो मुझ मायापति ईश्वर की शरण ले लेते हैं वे मेरी कृपा से माया से तर जाते हैं जैसे नट की माया नट के सेवक को मोहित नहीं करती।

- साधन भक्ति → मैं भगवान् का दास हूँ
- अभ्यास भक्ति → भगवान् मेरे हैं
- परिपाक भक्ति → मैं और भगवान् एक हैं

(V 15) प्रपत्ति का बाधक – जब ऐसी ही बात है तो सब आपकी शरण क्यों नहीं लेते?

अज्ञान ही असुर है, जो असुर भाव वाले हैं अर्थात् स्वयं को शरीर ही मानते हैं, विलासी व हिंसा करने वाले हैं तथा जिनका विवेक ढका हुआ है ऐसे दुष्कृत (कर्म दोष), मूढ़ा: (ज्ञान दोष), नराधम (स्वभाव दोष) वाले मुझे नहीं भजते, मेरी शरण नहीं लेते।

(V 16) प्रपत्ति में साधक तत्त्व क्या हैं?

4 गुणों से युक्त भक्त मुझे भजते हैं –	1- सुकृतिन:	3- विवेकी
	2- श्रद्धालु	4- दैवी भाव आश्रिता
ये भक्त मुझे 4 प्रकार से भजते हैं –	1- आर्त	3- अर्थार्थी
	2- जिज्ञासु	4- ज्ञानी

(V 17) चारों भक्तों में अनन्य भक्ति वाला ज्ञानी भक्त श्रेष्ठ है क्योंकि वह मुझ परमात्मा को अपनी आत्मा ही जानता है अत: मैं उसका अत्यन्त प्रिय हूँ और वह मेरा अत्यन्त प्रिय है।

(V 18) बाकी के भक्त भी उदार हैं, मुझे प्रिय हैं क्योंकि वे मेरी शरण लेते हैं संसार की नहीं।

(V 19) बहुत जन्मों में ज्ञान के संस्कार अर्जित करके अन्तिम जन्म के जिस परिपाक ज्ञान की प्राप्ति होती है वह मुझे वासुदेव को अपनी अन्तरात्मा के रूप में जानकर ब्रह्मनिष्ठ होता है। वह ईश्वर-जीव-जगत सबको परमात्मा रूप ही जानता है, एक सच्चिदानन्द ब्रह्म ही माया से ईश्वर-जीव-जगत रूप में भासते हैं। यह महात्मा सुदुर्लभ है - सहस्त्रों में एक है।

(V 20 - 23) सर्व जीव-जगत आत्मरूप भगवान् वासुदेव हैं ऐसा न जानने के 2 कारण हैं –

(1) भोग वृत्ति
(2) अविवेक

भगवान् कहते हैं :–

- तरह तरह की कामनाओं के कारण विवेक ढक गया है, स्वभाव के परवश होकर शीघ्र कर्मों के फल प्राप्त करने की इच्छा से देवताओं की शरण लेते हैं।
- मैं मनुष्यों को ज़बरदस्ती अपनी ओर नहीं खींचता। जो नियम पूर्वक जिस देवता की पूजा करता है उसकी वह श्रद्धा मैं स्थिर कर देता हूँ।
- उनकी इस उपासना का फल मेरे द्वारा विधान किया हुआ भोग उस देवता के द्वारा दिलवा देता हूँ, इससे उसकी देवता के प्रति श्रद्धा और दृढ़ हो जाती है।
- देवताओं को भजने वाले अल्पबुद्धि वालों का फल नाशवान् होता है। वे देवताओं को ही प्राप्त होते हैं।
- ईश्वर को पूजने वाले मुझ ईश्वर को ही प्राप्त होते हैं।

(V 24) जब आपके भक्त आपको ही प्राप्त होते हैं तो फिर सब आपके भक्त क्यों नहीं हो जाते?

बुद्धिहीन, अविवेकी मनुष्य मुझ सर्वश्रेष्ठ अविनाशी अव्यक्त परमात्मा को न जानकर जन्मने-मरने वाला मनुष्य ही मानते हैं, मेरे वास्तविक प्रभाव को नहीं जानते अत: मुझे नहीं भजते।

(V 25) यदि वे नहीं जानते तो आप स्वयं ही क्यों नहीं प्रकट हो जाते?

क्योंकि वे अविवेकी जन मुझे अजन्मा-अविनाशी नहीं मानते इसलिये मैं अपनी योगमाया से आवृत हुआ उनके सामने प्रकट नहीं होता। यह मेरी माया की आवरण शक्ति है।

(V 26) ब्रह्म के सोपाधिक व निरुपाधिक स्वरूप का कथन

सोपाधिक ब्रह्म का ज्ञान – ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, कर्माध्यक्ष, कर्मफल दाता है। शासन करने वाला, ऊर्ध्व व अधोगति देने वाला है, सुहृद है, अन्तर्यामी है। ईश्वर की माया शुद्ध सत्वगुणी विद्या माया है अत: भूत, वर्तमान व भविष्य में होने वाले सब जीवों को, उनके कर्मों को व उनके फलों को भी जानता है। ऐसे ईश्वर को समस्त आस्तिक समाज जानता है।

निरुपाधिक ब्रह्म का ज्ञान – मैं सच्चिदानन्द रूप हूँ, अखण्ड ज्ञानरूप हूँ।

- **सत् –** जिसका न जन्म न मृत्यु है
- **चित् –** उदय-अस्त रहित ज्ञान हूँ
- **आनन्द** – अनन्त-अखण्ड सुखरूप हूँ

ऐसा मेरे शरणागत भक्त के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता अत: नहीं भजता।

(V 27) मुझे न जानने का मुख्य कारण राग और द्वेष से उत्पन्न द्वन्द्व मोह है इससे मोहित होकर ही प्राणी संसार में पुन: पुन: जन्मते मरते हैं।

(V 28) परन्तु ईश्वर, शास्त्र व गुरु निर्देशित जीवन जीने वाले साधक जिनकी वासनाएं निर्बल हुई हैं, जो पुण्य कर्मा हैं, राग-द्वेष से रहित हैं वे द्वन्द्व मोह से मुक्त होकर दृढ़ निश्चय से मुझ परमात्मा को ही भजते हैं।

(V 29 & 30) ऐसे भगवान् का आश्रय लेकर जो जन्म-मरण रूपी संसार से मुक्त होने के लिये यत्न करते हैं वे पुरुष मेरे निम्न स्वरूप सहित मुझे अर्थात् मेरे समग्र रूप को **(यह सब वासुदेव ही है)** जान जाते हैं।

मेरा समग्र स्वरूप —

1) ब्रह्म
2) अध्यात्म
3) सम्पूर्ण कर्म
4) अधिभूत
5) अधिदैव
6) अधियज्ञ

इतना ही नहीं ये अनन्य भक्त अन्त काल में भी मुझे जानकर मुझे ही प्राप्त होते हैं।। इति ।।

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-7	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
0	.	.

Verse No.	Chapter-7	अर्जुन के सम्बोधन
1, 10	पार्थ	पृथा (कुन्ती) का पुत्र, प्रेम का सम्बोधन
5	महाबाहो	महा बलशाली
7	धनंजय	राजसूययज्ञ में अनेकों राज्यों पर विजय व अपार धन प्राप्त करने वाला
8	कौन्तेय	कुन्ती पुत्र, क्षत्राणी पुत्र की गरिमा का भान कराने वाला
11, 16	भरतर्षभ	भरतवंश में उत्तम
16, 26	अर्जुन	असीम् पुण्यों को अर्जित करने वाला, सरल स्वभाव वाला
27	भारत	ज्ञान में रति/प्रीति रखने वाला, महाराज भरत का वंशज
27	परन्तप	शत्रु को तपाने वाला

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
30	0	0	30

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

अक्षरब्रह्मयोगो नाम

अष्टमोऽध्याय:

(28 श्लोक)

प्रस्तावना

- **उत्तम अधिकारी** – श्रवण मात्र से भगवान् का ज्ञान होता है, वह जान जाता है कि एक ब्रह्म ही उपाधि भेद से अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव व अधियज्ञ रूप से भास रहा है।
- **मध्यम** व **मन्द अधिकारी** – जिसे श्रवण मात्र से ज्ञान नहीं होता उसके लिये ये साधनात्मक अध्याय है।

अध्याय के विषय

	विषय	श्लोक संख्या
1	स्मरणीय का ज्ञान	V – 03 & 04
2	भगवत् स्मरण की प्रक्रिया	V – 05 to 16
3	जगत सृष्टि की अनादि व्यवस्था	V – 17, 18, 19
4	अव्यक्त प्रकृति से श्रेष्ठ अव्यक्त परं अक्षर का ज्ञान	V – 20, 21, 22
5	युक्तचेतस: (समाहित चित्त वाला) नियतआत्मभि: की गति किसमें होती है — a) सोपाधिक ब्रह्म में b) स्वर्ग या पितृलोक में c) सद्य: मुक्ति – Here & Now	V - 23 to 26
6	आदेश व फल श्रुति	V - 27 & 28

V – 01 & 02 - में अर्जुन के 7 प्रश्न –

1- ब्रह्म क्या है? 3- कर्म क्या है? 5- अधिदैव कौन है? ७- अन्त समय में आप
2- अध्यात्म क्या है? 4- अधिभूत क्या है? 6- अधियज्ञ कौन है? कैसे जाने जाते हो?

1

V – 03 - (इसमें ३ प्रश्नों के उत्तर)

I. **ब्रह्म (निरुपाधिक ब्रह्म)**– परम अक्षर है – 'न क्षरति इति अक्षर:' – जिसका कभी नाश नहीं होगा।

II. **अध्यात्म (जीव)**– परं ब्रह्म जो प्रत्येक शरीर के भीतर जीवात्मा रूप से स्थित है अर्थात् अपने स्वरूप का इस शरीर में जो भाव है वही स्वभाव **'अध्यात्म'** है।

III. **कर्म** – करने का नाम कर्म नहीं अपितु विसर्ग/त्याग का नाम कर्म है। आप जितना जितना संसार मोह का त्याग करोगे उतने उतने उत्तम भावों की उत्पत्ति होगी — जैसे धर्म भाव, भक्ति भाव, योग भाव व ज्ञान भाव – ये भाव उत्पन्न होकर आत्मा को परमात्मा रूप से ज्ञान करा देंगे। अत: जो हमारे हृदय में वास्तविकता की ओर ले जाने वाले उत्तम भाव हैं, उनकी उत्पत्ति जिससे हो वे सब साधन कर्म हैं जैसे आसक्ति त्याग कर यज्ञ, दान, तप व ईश्वर अर्पित कर्तव्य कर्म करना।

V – 04 - (इसमें ३ प्रश्नों के उत्तर)

IV. **अधिभूत** – उत्पत्ति-विनाश वाले पदार्थ जैसे पंचमहाभूत व पंचभूत रचित शरीर।

V. **अधिदैव (समष्टि सूक्ष्मशरीर)** – कोटि कोटि ब्रह्माण्ड जिसके संकल्प से हैं वह हिरध्यगर्भ ही पुरुष है, यह प्रथम पुरुष ही आदि पुरुष है जिससे ये सब जगत परिपूर्ण है। यह सूक्ष्म अभिव्यक्ति का स्थान है। इसके रोम रोम में अनेक ब्रह्माण्ड हैं एवं एक-एक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सूर्य, चन्द्र, वरुण, वायु, अग्निदेव हैं – यही हिरण्यगर्भ पुरुष है।

VI. **अधियज्ञ (अन्तर्यामी)** – 'यज्ञ ही विष्णु है' अत: सर्व यज्ञों का अधिष्ठाता विष्णु ही है। मैं विष्णु इस शरीर के भीतर रह कर शरीर के भीतर एवं बाहर सृष्टि में सभी यज्ञ कर्मों का संचालन करता हूँ – जैसे शरीर के भीतर पाचन क्रिया, रक्त संचार आदि तथा बाहर सूर्य को प्रकाश व अग्नि को तेज देकर।

2. V – 05 to 16 में नियतआत्मभि: द्वारा स्मरण की प्रक्रिया बताते हैं।

V – 05 & 06 - स्मरण के फल व सिद्धान्त का प्रतिपादन

V – 05 - जो मेरा स्मरण करता हुआ देह त्याग करेगा वह मुझे प्राप्त हो जायेगा इसमें कोई संदेह नहीं।

V – 06 - गति का सिद्धान्त – 'अन्ते या मति: सा गति:'

अन्तकाल में मनुष्य जिस-जिस भाव का स्मरण करता हुआ शरीर परित्याग करता है वह उसी-उसी भाव को प्राप्त करता है तथा यह पता नहीं कि मृत्यु कब आ जाय अत: अपने सुहृद सच्चे सखा भगवान् को सदैव याद रखते हुए सब व्यवहार करो। भक्ति व कर्म साथ-साथ करो, **'मनयत सबहिं राम के नाते'** का आजीवन अभ्यास करो क्योंकि मृत्यु के समय प्रयत्न साध्य भाव उदय नहीं होता।

V – 06 - भगवान् का सुगति के लिये आदेश –

अत: सिद्धान्त को जानकर मेरे विचार के अनुसार कर्म करो, मुझसे प्रेम करो, परोपकार के लिये अपने कर्तव्य रूपी कर्म युद्ध करो। तुम मेरे लिये युद्ध करोगे तो मेरी स्मृति भी बनी रहेगी तथा अन्तकाल में मेरा स्मरण करने वाला मुझे ही प्राप्त होगा। तत्त्वज्ञानी के लिये कुछ स्मरण-विस्मरण की आवश्यकता नहीं।

- ज्ञान प्राप्त होते ही मुक्त हुआ – **सद्य: मुक्ति,** परन्तु फिर भी भगवान् का भजन-चिन्तन होता रहे तो मंगलमय है।

V – 08 - अधिकारी उपासक के लक्षण व परम दिव्य पुरुष की प्राप्ति –

जो Ch. 06, शास्त्र व गुरु उपदेश के अनुसार बार-बार ब्रह्म चिन्तन का अभ्यास करता है तथा मन को संसार में नहीं जाने देता है वह **दिव्य परं पुरुष** को प्राप्त करता है।

V – 09 - दिव्य पुरुष सगुण ब्रह्म का ध्यान/चिन्तन –

कविं = सर्वज्ञ
पुराणं = सनातन
अनुशासितारं = शासक
अचिंत्य = चिंतन के परे
विधाता = सबको फल देने वाला व सबको धारण करने वाला
अणो अणीयाम् = सूक्ष्म से सूक्ष्म
आदित्य रूप = सूर्य के समान प्रकाशमान एवं अज्ञान व मोह से परे

V – 10 - प्रयाण काल में –

1. अचल मन से,
2. भक्ति से युक्त,
3. योग बल से समाधि संस्कार युक्त होकर – प्राणों को भ्रू-मध्य में स्थापित कर इस दिव्य पुरुष का चिन्तन करते हुए जो देह त्याग करता है वह **दिव्य परं पुरुष** को प्राप्त करता है।

V – 11, 12, 13 -

उत्तम अधिकारी – को तो श्रवण से ही **परं ब्रह्म** का बोध स्वयं आत्मा के रूप में हो जाता है। **क्रम** — निष्काम कर्म → भक्ति → चतुष्ट्य साधन सम्पन्न → गुरु प्रसक्ति → श्र०म०नि० → स्वरूप ज्ञान → **सद्यः मुक्ति,** परन्तु

मन्द व मध्यम अधिकारी – के लिये **ओंकार की प्रतीक उपासना**

1. ओंकार का उच्चारण करें - **जप**
2. ओंकार के अर्थ परमात्मा का स्मरण करें - **ध्यान**

(इनके द्वारा वह **क्रम मुक्ति** प्राप्त करता है)

V – 14 - **परां गति किसके लिये सुलभ है? 'विश्व रूप दर्शन'**

जो **अनन्यचेताः** है उसके लिये मैं अत्यन्त **सुलभ** हूँ। जिसके मन में निरन्तर (सततम्) प्रभु की याद बनी रहे तथा जो प्रतिदिन (नित्यशः) मेरा स्मरण करे उसके लिये भगवान् सुलभ अर्थात् अनायास ही सर्वत्र दृष्टिगोचर हो जाते हैं – ऐसी स्थिति हो जाती हैं कि **जहाँ देखता हूँ** वहाँ **तू-ही-तू** है, सम्पूर्ण विश्व भगवान् का ही रूप दीखता है।

V – 15 - भगवान् को प्राप्त कर महात्माजन इस दुःखालय - अशाश्वत् संसार को प्राप्त नहीं करते अर्थात् पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करते। ज्ञानी को सद्यः मुक्ति व ब्रह्म उपासक को क्रम मुक्ति।

V – 16 - ब्रह्मलोक तक के सभी लोक पुनरावर्ती हैं, केवल मुझ ईश्वर को प्राप्त कर पुनर्जन्म नहीं होता।

१४ लोक
- ऊर्ध्वलोक = भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्य/ब्रह्म लोक
- अधःलोक = अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल

3. अनादि सृष्टि का उल्लेख

V – 17 - ब्रह्मलोक तक के सभी लोक दीर्घ काल वाले हैं परन्तु काल परिछिन्न होने से पुनरावर्ती होते हैं।

- ब्रह्मा का एक दिन - एक सहस्त्र चतुर्युगी
- ब्रह्मा का एक रात - एक सहस्त्र चतुर्युगी

(1 चतुर्युग = कलयुग - 4,32000, द्वापर - 4,32000 x 2, त्रेता - 4,32000 x 3, सतयुग - 4,32000 x 4)

V – 18 - ब्रह्मा के दिन के आरम्भ में अव्यक्त से समस्त चराचर प्रजाएं व्यक्त होती हैं और रात्रि होने पर फिर अव्यक्त में लीन हो जाती हैं। अतः दिन में सृष्टि की उत्पत्ति व रात्रि में प्रलय।

V – 19 - पूर्व कल्प के भूत समुदाय दिन में उत्पन्न होकर रात में लीन होते हैं। उत्पन्न व लीन होने में सभी भूत प्राणी विवश हैं। यह भूतों का गॉव है, यही महाशिव का शमशान हैं। यह कभी दीखता है और रात में नहीं भी दीखता है। भूतों की भूतों से शादी, भूत ही

बाराती व भूत बेटे-बेटी उत्पन्न होते हैं। सब असार इस विवशता का दर्शन वैराग्य का हेतु बनना चाहिये।

4 **V – 20, 21 & 22 -**

V – 20 - अव्यक्त दो हैं —

- एक अव्यक्त – **माया-प्रकृति** जो उदय व लीन होती है जिससे भूत ग्राम उत्पन्न व लीन होते हैं।
- दूसरा अव्यक्त – **सनातन अव्यक्त ब्रह्म**
  - जिसका भूत ग्राम से कोई सम्बन्ध नहीं।
  - यही अविद्या माया से सम्बन्ध बना के मायापति बन के जगत पुत्र की सृष्टि-स्थिति-प्रलय की कल्पना करता है।
  - इसका विनाश नहीं होता → इसे ही **अक्षर** कहा।

V – 21 - अक्षर नामक अव्यक्त भाव को **परां गति** कहते हैं। मुझ भगवान् का परं धाम प्राप्त करके पुन: संसार में नहीं लौटते।

V – 22 - परं पुरुष, परं धाम को प्राप्त करने का साधन

अनन्य भक्ति – आत्म विषयक ज्ञान भक्ति जिसमें भगवान व भक्त दोनों अलग अलग नहीं रह जाते। इसी अनन्य भक्ति से वह परं पुरुष मिलता है जिसमें सारे भूत हैं, वह अधिष्ठान है तथा सर्वभूत अध्यास रूप है। जैसे सूत के सिवाय कपड़ा कुछ नहीं होता है उसी तरह परमात्मा के सिवाय और कुछ नहीं है।

5 **V – 23 to 26 - उस काल का निरूपण जिसमें मरने पर**

(1) अपुनर्जन्म
(2) पुनर्जन्म
(3) मुक्ति को प्राप्त करते हैं

V – 23 -

• **योगी** (भगवान् के ज्ञान सहित)	• सगुण ब्रह्मोपासक	• जो अपुनर्जन्म प्राप्त करता है।
• **सकामी कर्मी** (भगवान् के ज्ञान से रहित)	• इष्टापूर्त कर्म व यज्ञ, दान, तप करने वाला सत्कर्मी	• जो पुनर्जन्म प्राप्त करता है।
• **ज्ञानी**	• स्वयं को ब्रह्म जानता है	• **सद्य: मुक्ति** – चाहे किसी काल या स्थान में मरे

V – 24 - फल सहित शुक्ल मार्ग का विवरण

योगी के लिये जिस मार्ग में 1) अग्नि देवता 2) ज्योति देवता 3) दिन का देवता 4) शुक्ल पक्ष का देवता व 5) उत्तरायण के देवता का अधिकार है – यह शुक्ल मार्ग, देवयान मार्ग, अर्चि मार्ग, उत्तरायण मार्ग कहलाता है। ब्रह्म की उपासना करने वाले ब्रह्मविद् उपासक देह त्याग पश्चात् ब्रह्म को प्राप्त करते हैं एवं **उनका पुनर्जन्म नहीं होता – क्रम मुक्ति।**

आध्यात्मिक अर्थ – 1) जप द्वारा 2) भगवान् का दर्शन करते हुए 3) प्रकाश में भगवान् के रूप को लीन करते हुए 4) जो शुद्ध अन्त:करण के हो जाते हैं 5) उनका परम कल्याण हो

जाता है। अब तुम ब्रह्मविद् हो गये, अब तुम्हें ब्रह्मज्ञान हो जायेगा, तुम ब्रह्म से एक हो जाओगे - अब पुनर्जन्म नहीं।

V – 25 - फल सहित कृष्ण मार्ग का विवरण (सकामी-सत्कर्मी की गति)

यह सत्कर्मी इष्टापूर्त कर्म करता है पर उपासना से रहित है, इसकी कर्म में ही महत् बुद्धि है।

इस मार्ग में 1) धूमाभिमानी देवता 2) रात्रि देवता 3) कृष्णपक्ष के देवता 4) षण्मासा दक्षिणायन के देवता का अधिकार है – वह कृष्ण मार्ग है, पितृयान मार्ग, धूम्र मार्ग तथा दक्षिणायन मार्ग कहलाता है। ये लोग देह त्याग पश्चात् चन्द्रमा की ज्योति - स्वर्ग लोक, पितृ लोक को प्राप्त होते हैं। वहॉ लम्बे काल तक सुख भोग कर पुन: हीन लोकों में आते हैं – पुनरावर्तन होता है।

आध्यात्मिक अर्थ – जहॉ लोग 1) राग-द्वेष से जल रहे हैं 2) हृदय काला हो गया है 3) हृदय में धुँआ उठ रहा है 4) उनका जीवन संसारानुकूल है अर्थात् संसार में हमें यह मिले - वह मिले। उनका सारा कौशल संसार के सम्पादन में संलग्न है अत: आपके मन में जो वासना होगी वह आपको चन्द्रमा के क्षेत्र में ले जायेगी और आप फिर संसार में आयेंगे।

आधिदैविक अर्थ – एक छोटा देवता दूसरे बड़े देवता को समर्पित करके ब्रह्मलोक अथवा चन्द्रलोक में ले जाते हैं।

आधिभौतिक अर्थ – उत्तरायण अथवा दक्षिणायन काल में मरने से उस काल के अनुरूप गति।

V – 26 - जगत की दो शाश्वत् गति हैं

1)- अनावृत्ति का मार्ग – निष्कामकर्म व उपासना करने वाले को शुक्लमार्ग से मुक्ति के द्वार की प्राप्ति

2)- आवृत्ति का मार्ग – सकाम कर्म करने वाले को गमनागमन के कृष्णमार्ग के द्वार की प्राप्ति

* अधोगति का मार्ग – पापाचरण करने वाले की न दक्षिणायन न उत्तरायण गति, उसकी तो अधोगति ही होती है।

6

V – 27 - आदेश – यदि तुमने इन बातों को ठीक-ठीक समझ लिया तो तुम्हें कभी मोह नहीं होगा अत: हे अर्जुन! तुम हर काल में, यहॉ तक कि युद्ध करते हुए भी व समाधि काल में भी योग युक्त हो जाओ। **तुम सकाम कर्मी से निष्काम योगी बनो**, खुली ऑख से भी व बन्द ऑख से भी बस योगाभ्यास हो – मेरा जप, मेरा ध्यान, मेरे लिये स्वधर्म।

V – 27 – फल श्रुति – योगी पुरुष इन 7 प्रश्नों के द्वारा कहे गये -

- रहस्य को समझकर,
- वेदाध्ययन एवं
- यज्ञ, दान व तप - से प्राप्त पुण्यों का उल्लंघन करके सनातन परम पद को प्राप्त करता है।

रहस्य

एक ब्रह्म ही उपाधि भेद से चतुर्मुख
(1) अध्यात्म (2) अधिभूत (3) अधिदैव (4) अधियज्ञ
रूप से दीखता है। **यही सद्य: मुक्ति है।**

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-8	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
1	पुरुषोत्तम	पुरुषों में उत्तम - सर्वोत्तम
2	मधुसूदन	मोह ममता व मधु दैत्य को मारने वाले

Verse No.	Chapter-8	अर्जुन के सम्बोधन
6, 16	कौन्तेय	कुन्ती पुत्र, क्षत्राणी पुत्र की गरिमा का भान कराने वाला
8, 14, 19, 22	पार्थ	पृथा (कुन्ती) का पुत्र, प्रेम का सम्बोधन
16, 27	अर्जुन	असीम् पुण्यों को अर्जित करने वाला, सरल स्वभाव वाला
23	भरतर्षभ	भरतवंश में उत्तम

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
28	0	2	26

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम

नवमोऽध्यायः

(34 श्लोक)

प्रस्तावना

पहले तत्त्वज्ञान की चर्चा, उपदेश व श्रवण अरण्य भूमि (वन) में होता था पर भगवान कृष्ण ने वही तत्त्व ज्ञान गीता में रणभूमि अर्थात् जटिल व विषय परिस्थिति में दिया तथा गीताजी ने जीवन के प्रत्येक कार्य में – व्यापार, सेवा व व्यवहार सब में धर्म की प्राण प्रतिष्ठा की न कि केवल यज्ञशाला में।

Ch. 07 - में अधिकारी भक्त का वर्णन

Ch. 08 - में साधना का वर्णन → साधना से मरने के बाद क्या गति होगी – उत्तरायण-दक्षिणायन बताया है

Ch. 09 - में भजनीय का वर्णन → विलक्षण गुह्यतम ज्ञान कहा है – जिसे जानकर तुम सर्वज्ञ व कृतकृत्य हो जाओगे।

(V 01) गुह्यतम ज्ञान क्या है? इसका अधिकारी कौन है? इसका फल क्या है?

- गुह्य ज्ञान – धर्म का रहस्य है, गुह्यतर ज्ञान उपासना का रहस्य है।
- गुह्यतम ज्ञान – ब्रह्म विद्या जो ब्रह्म-आत्मा की एकता बताती है।
- इसका अधिकारी – अनसूयक है - दोष दृष्टि से रहित साधन चतुष्ट्य सम्पन्न।
- फल – अशुभ दुःखरूप संसार से मुक्ति - परमानन्द की प्राप्ति - मृत्यु के डर से मुक्ति।

(V 02) विज्ञान सहित ज्ञान की महिमा – ब्रह्म विद्या की स्तुति

i. राजविद्या – विद्याओं का राजा - जो सारे दुःखों व मृत्यु से छुड़ा दे।

ii. राजगुह्यतम – यह गोपनीय विद्या जो बिना गुरु के प्राप्त होना असम्भव है – अन्तः स्थिति में समता व असंगता गोपनीय है तथा व्यवहार में धर्ममय प्रेमपूर्ण पालन है।

iii. पवित्रं – जीवन को पवित्र करने वाला, पाप-पुण्य के मूल अज्ञान को भस्म करने वाला।

iv. उत्तमम् – फल दृष्टि से उत्तम - मुक्ति देने वाला।

v. प्रत्यक्षावगमं – जैसे भूख-प्यास, सुख-दुःख, मान-अपमान प्रत्यक्ष हैं वैसे ही अपना आत्मा भी द्रष्टा रूप से प्रत्यक्ष है परन्तु इन्द्रिय, मन, बुद्धि का विषय नहीं है।

vi. धर्म्यं – सब धर्मों का परिपाक फल आत्म ज्ञान की योग्यता प्राप्त करना ही है। यह विद्या धर्म के अनुकूल है।

vii. सुसुखं कर्तुं – अपनी आत्मा सुखपूर्वक, सरलता से जानने में आती है अनायास ही। अपने को जानने में क्या कठिनाई, दूसरे को जानना कठिन है।

viii. अविनाशी – इस विद्या का फल अविनाशी है क्योंकि स्वयं को अविनाशी ब्रह्म जानोगे।

(V 03) इस विद्या को प्राप्त न होने का कारण क्या है?

अश्रद्धा – नास्तिक, भोगपरायण संसारी, असुर, राक्षसी स्वभाव

(V 04) भगवान् के निर्गुण-निराकार व सगुण-साकार के रूप का कथन भगवान् के मुख से

मुझसे ही समस्त भूत प्राणी उत्पन्न होते हैं परन्तु वास्तव में वे मुझमें नहीं हैं, बस दीखते हैं – यह मेरा **योग-ऐश्वर्य** है।

(V 05) भगवान् की पहचान बड़ी अद्भुत है

जीवात्मा निराकार है और इसी साकार शरीर में रहता है उसी प्रकार परमात्मा भी निराकार है वह भी इसी साकार जगत में रहता है। एक परमात्मा ही माया से अनेक रूप में दीखता है, यही मेरा योग ऐश्वर्य है – तत्त्व तो एक चेतन परमात्मा ही है अत: हम, पीपल, गाय, पंचमहाभूत, समुद्र सबका भगवान् रूप से पूजा करते हैं। ईश्वर को ढूँढने के लिये हमें वैकुण्ठ, स्वर्ग, मन्दिर या गुफा जंगल में नहीं जाना होता, यह जो आपका हृदय है वही परमात्मा की उपासना का निवास स्थल है।

सब परमात्मा का ही विस्तार है – बनाने वाला भी परमात्मा, बनने वाला भी परमात्मा।

- पापी को परमात्मा **नरक** रूप में दीखता है।
- पुण्यात्मा को परमात्मा **स्वर्ग** रूप में दीखता है।
- भक्त को परमात्मा **वैकुण्ठ** रूप में दीखता है।
- राग-द्वेषी को परमात्मा **शत्रु-मित्र** के रूप में दीखता है।

- निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार सब वही है – जिसे यह ज्ञात हो गया वह अब निर्द्वन्द्व होकर अभय भाव से संसार में जीवनमुक्त होकर व्यवहार करता है।

(V 06) ब्रह्म इस जगत से कैसे असंग है?

जैसे आकाश सर्वव्यापक व असंग होने से अपने से उत्पन्न महान् वायु से सर्वथा असंग है वैसे ही सर्वाधिष्ठान-सर्वव्यापक आत्मा इस महान् शक्ति वाली छाया रूप अध्यास माया व इससे उत्पन्न इसका कार्य पंचभूत जनित जगत से सर्वथा असंग है।

**** भगवान् इस संसार के आधार, प्रेरक, मण्डलेश्वर व निर्देशक हैं ****

(V 07 to 10)

(V 07 & 08) ये जगत भगवान् का खेल है, लीला है, एक रंग मंच है और यह उसकी नाट्य मण्डली है। एक अभिनय मिलता है एक छूटता है। प्रलय के समय सब भूत प्राणी उसकी प्रकृति में लीन हो जाते हैं और सृष्टि में सब निकल पड़ते हैं। उत्पन्न होने व लीन होने में जीव स्वतन्त्र नहीं हैं। अपने अपने कर्मानुसार भूमिका मिलती है।

(V 09) भगवान् को कर्म बन्धन क्यों नहीं होता?

क्योंकि भगवान् में न तो कर्म का अभिमान है और न मन में कर्मासक्ति व फलासक्ति, वे उदासीन और असंग हैं अत: हे जीव! तुम परमात्मा से एक होकर बैठो, अच्छे-बुरे दोनों को छोड़ो, सब भगवान् को समर्पित कर दो, तुम्हें भी कर्म बन्धन नहीं होगा।

(V 10) भगवान् से चराचर जगत की उत्पत्ति कैसे होती है?

भगवान् स्वरूप से तो निर्गुण-निराकार हैं उनसे कोई सृष्टि नहीं होती – अजातवाद, परन्तु सोपाधिक ब्रह्म ही प्रकृति का आधार-अधिष्ठान व प्रेरक है। अपने आधार-अधिष्ठानपने में अपनी **परा** व **अपरा** दो प्रकृति से यह जगत बनाते हैं अत: परमात्मा तो सत्य हैं परन्तु जगत भ्रम रूप है।

(V 11) किस कारण से संसारी जीव मुझे नहीं जानते व मेरा अनादर करते हैं?

श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं तो निर्गुण-निराकार, अनाम व अरूप हूँ, मैं मनुष्य नहीं हूँ लेकिन मैंने ही मनुष्य व चराचर जगत का आकार ग्रहण किया है। परन्तु जो मुझे व स्वयं को आकार समझते हैं वे माया के चक्कर में फॅस जाते हैं। कोई आकार में फॅस गया तो कोई विकार (काम, क्रोध, लोभ) में, तो कोई हिन्दु-मुसलमान के सम्प्रदाय में। ये सब मूढ़ हैं, स्वयं साक्षात् चेतन ब्रह्म होते हुए भी और अपने को हाड़-मॉस का पुतला समझ रहे हैं और संसार को सत्य व सुखरूप देख रहे हैं। परन्तु जो मुझे व स्वयं को इस आकार में निराकार अनुभव करते हैं उनका न जन्म है न मरण, न पाप न पुण्य, न आना न जाना और न स्वर्ग न नरक।

(V 12) अपने स्वरूप को न जानने का परिणाम

मोघाशा – स्वयं को अमृत रूप न जानकर संसार में समाधान की व्यर्थ आशा करते हैं।
मोघकर्मणा – सारे संसार को पाने के प्रयत्न में बार-बार दु:ख पाते हैं व जन्मते-मरते हैं।
मोघज्ञाना –

- इनका ज्ञान झूठा है, इन पर बेहोशी छायी हुई है।
- आसुरी प्रवृत्ति वाले हैं अर्थात् स्वार्थ पूर्ति के लिये दूसरों को कष्ट देने वाले हैं।
- राक्षसी प्रवृत्ति वाले बिना मतलब दूसरों को कष्ट देने वाले हैं ताप देने वाले हैं।

प्रकृति मोहिनीम् – ये बेहोश हैं बेचारे, तमोगुणी हैं।

(V 13) अब भगवान् भक्ति का निरूपण करते हैं

महात्मा – महान् आत्मा वाला, वसुधा ही जिसका कुटुम्ब है, जो किसी घेरे में नहीं बॅधा है। यह जानता है कि समग्र विश्व सृष्टि में, जो अच्छा है - जो बुरा है, सब अपना स्वरूप है जैसे अपने ही शरीर में उत्तम व अधम अंग सब अपने ही हैं अत: अपना मन न बिगाड़ो। इसने **दैवी सम्पदा** धारण की है –

- मानसिक – अभयं, सत्त्वसंशुद्धि, ज्ञानयोग व्यवस्थिति
- बाह्य – दानं, संयम, यज्ञ

ये **अनन्य मन** से भजता है –

- सम्पूर्ण विलक्षण चराचर जगत में जो तत्त्व **'मैं परमात्मा हूँ'** जानता है कि वह सबका आदि है, अविनाशी है अत: नाम-रूप कोई भी हो वह परमात्मा को ही देखता है, यह **अनन्यमना** है।
- अर्थात् सब में परमात्मा को देखता है, मन कहीं और नहीं जाता। जहॉ देखता है वहॉ परमात्मा ही है → **सर्वत्र भगवद्दर्शन**।

** अनन्यमना होने की साधना **

(V 14 to 19)

भक्ति के 2 लक्षण

- **अकिंचन** – मेरा कुछ नहीं, सब आपका है।
- **अनन्यगति** – मुझे किसी का सहारा नहीं बस आपका सहारा है।
  जहॉ भक्ति है उस हृदय में सभी देवी-देवता अपने गुणों के सहित आकर बैठते हैं।

(V 14) 1- वाणी व व्यवहार से भगवान् का कीर्तन हो।

2- दैवी सम्पदा अर्जित करने के लिये यत्न हो।
3- जीवन में दृढ़ नियम और व्रत हो।
4- शरीर से भगवान् को नमस्कार – भगवान् की भक्ति हो, विनय हो।

(V 15) 5- ज्ञान यज्ञ से मेरी उपासना – अपने व दूसरे के हृदय में बैठे भगवान् की पूजा हो।
6- पृथक्त्वेन रूप से – ये सब देवी-देवता – गौरी-गणेश, सूर्य-चन्द्र, इन्द्र, वायु, अग्नि सब भगवान् ही हैं।
7- बहुधा विश्वतोमुख रूप से – सम्पूर्ण विश्व को ध्यान में रखकर कर्म करें, किसी को कष्ट न पहुँचे। भगवान् के लिये किया हुआ कर्म सबके लिये हो जाता है जैसे जड़ में पानी देने से पूरा वृक्ष हरा-भरा हो जाता है।

(V 16) भिन्न-भिन्न रूप से भगवान् की आराधना

भगवान् सर्वतोमुख हैं अत: किसी को खिलाओ तो इस भाव से कि मैं परमात्मा को खिला रहा हूँ, सर्वरूप में उनकी ही सेवा है।

- यज्ञ केवल यज्ञशाला में नहीं है, इस देह में अधियज्ञ रूप भी भगवान् ही हैं।
- जब प्रेम से किसी को देखते हो, सहलाते हो, सुनते हो, बोलते हो तो उसे सन्तोष होता है, यह भी यज्ञ है। यज्ञ अर्थात् जो भी तुम्हारे पास है वह दूसरे के काम आए।
- पितरों का अन्न स्वधा है अत: जिसके मरने पर भी सेवा करनी पड़ती है उसकी जीवन काल में भी भली प्रकार सेवा करो।
- औषधि जो फल देकर नष्ट हो जाए वह मनुष्य का अन्न है। अन्न को स्वाद के लिये नहीं अपितु जीवन को स्वस्थ्य व निर्विकार रखने के लिये खाओ जिससे दोषों की की निवृत्ति व गुणों की वृद्धि हो।
- अन्न भी मैं, अन्न को पचाने वाला भी मैं। अन्न को जिस-जिस का हिस्सा है उसे देकर खाओ।
- मन्त्र भी मैं हूँ, मन्त्र में भगवान् की शक्ति बैठी है, इससे ही अग्निदेव अन्य देवों व पितरों को हवि पहुँचाते हैं।
- मैं ही घृत हूँ, मैं ही अग्नि हूँ व मैं ही हवन क्रिया हूँ।

(V 17) भगवान् कहते हैं कि मैं ही प्रेम रूपा माता हूँ, मैं ही अनुशासित करने वाला पिता हूँ, मैं ही धाता हूँ–पोषित करता हूँ, मैं ही पितामह हूँ अर्थात् मेरा कारण कोई और नहीं है। **मैं पवित्र हूँ, मैं ही वेद्यं** 'जानने योग्य हूँ', **मैं ही वेद** 'सर्व ज्ञान साधन हूँ', **मैं ही ओ३म् हूँ।**

(V 18) सगुण ब्रह्म के लक्षण व महिमा

1. गति – साक्षात् परमात्मा हैं, अन्त में वहीं मिलेंगे।
2. भर्ता – हमारा पोषण करने वाले।
3. प्रभु – शासक - पुरस्कार व दण्ड देने वाले।
4. साक्षी – देख-भाल करने वाले अन्तर्यामी, साक्षात् देखने वाले।
5. निवास: – हमारे हृदय में निवास करने वाले।
6. शरणं – हमारे रक्षक।
7. सुहृद – स्वयं के लिये बिना कुछ चाहे सबका हित करने वाले।
8. प्रभव: प्रलय स्थानं – हमारा जन्म, स्थिति व लय सब परमात्मा में ही है।
9. निधानं – हम जो भी कर्म करते हैं वह भण्डार घर परमात्मा में रख दो।

10. बीजं अव्ययं – जहाँ से नाना प्रकार के नाम-रूप प्रकट होते हैं वह अव्यय बीज परमात्मा ही हैं।

(V 19) काल चक्र में यह सारा जगत परिवर्तित हो रहा है परन्तु भगवान् कालदण्ड को अपने हाथ में रखते हैं। एक वर्ष का एक संवत उसमें 4-4 महीने के 3 विभाग – गर्मी, वर्षा, शीत। मैं ही संसार में गर्मी, वर्षा व शीत डालता हूँ (सूर्य क्रीड़ा) तथा सृष्टि, स्थिति, प्रलय का नियन्त्रण परमात्मा के ही हाथ में है। ब्रह्मा-विष्णु-शिव की पोषाकें ही तीन हैं मैं तो एक ही हूँ। भगवान् कहते हैं :—

- सब मैं ही हूँ – जो अच्छे हैं वह भी मैं और जो बुरे हैं वो भी मैं।
- अमृत भी भगवान्, मृत्यु भी भगवान् (जब शरीर जीर्ण-शीर्ण होवे या काम पूरा हो जाए तो ले जाते हैं)
- कार्य (जाग्रत-स्वप्न) रूप से सत् और कारण (सुषुप्ति) रूप से असत् भी मैं।

उपसंहार – सारे साधन मैं हूँ - **(V 14 to 19)**

- देवता रूप में मैं हूँ, कर्मानुष्ठान रूप में मैं हूँ, सब सम्बन्धियों के रूप में मैं हूँ → सर्वत्र मुझे ही देखो (सम्बन्धी का रूप मत देखो – तब राग-द्वेष नहीं होगा)।
- ओंकार मैं, सर्व वेद मैं, मैं ही गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी हूँ।
- मैं ही अमृत-मृत्यु, सत्-असत् हूँ – यह सब मैं परमेश्वर ही हूँ।

(V 20 & 21) विषय वासना वाली सकामी कर्मी व उपासक की गति

कामकामी गतागतं लभन्ते – स्वर्ग प्राप्ति, फिर पुण्य क्षीण होने पर मनुष्य या निम्न लोक प्राप्ति।

(V 22) भगवत् प्राप्ति का साधन

- **अनन्य चिन्तन** – निरन्तर हृदय में भगवान् का चिन्तन
- **मां पर्युपासते** – चारों ओर भगवान् का दर्शन – अन्य कोई दूसरा नहीं (अनन्याः) – जब तक सर्वत्र भगवान् नहीं देखोगे तब तक समता नहीं होगी, बिना समता शान्ति नहीं।
- **योग-क्षेम वहामि अहम्** – भगवान् ही अप्राप्त की प्राप्ति व प्राप्त का संरक्षण करते हैं।
- सर्व देश में (पर्युपासते), सर्व काल में (नित्याभियुक्तानां), सर्व-वस्तु में (अनन्य) अर्थात् सर्व-देश में, सर्व-काल में व सर्व-वस्तु में परमात्मा भक्त का योग-क्षेम वहन करने के लिये हर रूप में तैयार रहते हैं।
- ऐसे भक्त जिनके लिये परमात्मा के अतिरिक्त और कोई तत्त्व नहीं है उनमें स्वभाव से ही अनन्यता आ जाती है, अभ्यास से नहीं लानी पड़ती अर्थात् निश्चय में अनन्यता एवं धारा में चिन्तन (हृदय में भगवान् के बारे में नये - नये भाव आना)।
- चिन्तन माने अभ्यास अथवा स्मृति नहीं है, अनन्यता व चिन्तन दोनों **'अन्तरंग'** हैं और पर्युपासते **'बहरिंग'** - जो देखते हैं कि सब परमात्मा है।

भगवान् कहते हैं ऐसा भक्त जब अन्त काल में मेरा जप, माला, चिन्तन नहीं कर पाएगा तो उसकी माला लेकर मैं उसकी ओर से अपना नामजप, स्मरण, चिन्तन करूँगा और उसे अपना रूप प्रकट करूँगा कि मैं और तुम दोनों अलग-अलग नहीं रहेंगे। ये भक्त लोग भगवान् को अपने वश में कर लेते हैं।

(V 23 & 24) देवोपासना को भगवान् ने अविधिपूर्ण क्यों बताया?

- जो देवताओं को भगवान् से अन्य मानकर उन्हें पूजते हैं वह अज्ञानी हैं।

- आप पीपल, गाय, माँ, स्वामी किसी की भी पूजा करें परन्तु आपकी भगवद्बुद्धि बनी रहे तो भगवान् उसे साक्षात् ग्रहण करते हैं।

(V 25)

- देवता भगवान् के अंग हैं – एकांगी रूप से उनकी पूजा करने से आप देव को प्राप्त होंगे।
- पितर भी भगवान् के अंग हैं – एकांगी रूप से उनकी पूजा करने से आप पितर लोक को प्राप्त होंगे।
- सम्पूर्ण भूत भी भगवान् के अंग हैं – एकांगी रूप से उनकी पूजा करने से आप भूतगणों को प्राप्त होंगे।
- परन्तु जो समग्र दृष्टि से भगवान् की आराधना करते हैं वे भगवान् को ही प्राप्त होते हैं क्योंकि भगवान् ही सम्पूर्ण जगत के स्वामी व संचालक हैं, अन्तर्यामी हैं।

(V 26) क्या भगवान् की पूजा कठिन है?

नहीं! बस प्रेम से अर्पित किया हुआ एक पत्ता, एक फूल, एक फल अथवा जल ही पर्याप्त है। समर्पित करना मतलब अपनी भूल मिटाना, भगवान् की चीज़ को अपना मान रखा था अब भूल मिट गयी तो जाना कि सब तुम्हारा है– **'तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा'**

(V 27 & 28) सर्व कर्म भगवान् को अर्पण करके करो तो पाप-पुण्य नहीं लगेगा। पहले संकल्प कर लो कि भगवान् यह कार्य आपकी प्रेरणा से, आपके लिये, आप में रहकर कर रहा हूँ – कर्म को ब्रह्म में रख दो **'श्रीकृष्णार्पणमस्तु'**, फिर **'न मैं कर्ता न ये कर्म मेरा'** आसक्ति छोड़कर कर्म करो। कर्म करने के बाद प्रसाद बुद्धि से फल ग्रहण।

- **यत्करोषि** – जो भी कर्म धन कमाने के लिय करते हो (जो भी लौकिक कर्म करते हो)
- **यत्अश्नामि** – जो भी भोग करते हो
- **यत्जुहोषि** – जो हवन करते हो, जो दान करते हो, जो तपस्या करते हो सब मुझे अर्पित कर दो, तो जैसे संन्यासी त्याग करके कर्म-बन्धन से छूटता है वैसे ही गृहस्थ भी अपने समस्त कर्म भगवान् को अर्पण करके शुभाशुभ सभी कर्म-बन्धन से छूट जाता है।

(V 29) भगवान कहते हैं कि - मैं सबमें हूँ, सबको देखता हूँ। न मेरा किसी से द्वेष है न राग है। परन्तु जो मेरा भक्त है वह मुझमें रहता है, मुझसे प्रेम से जुड़ा है, ऐसा भक्त मेरे हृदय में रहता है और मैं उसके हृदय में रहता हूँ। ऐसे भक्त के प्रति मैं क्षमावान् व दयालु हूँ। भगवान् के **स्वरूप** में असंगता व **स्वभाव** में दया है।

(V 30 & 31) सुदुराचारी भी यदि भगवान् की भक्ति के लिये दृढ़ निश्चय ले लेवे तो उसे साधु ही मानना चाहिये क्योंकि भक्ति क्रिया प्रधान नहीं अपितु उद्देश्य प्रधान है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा होकर शाश्वत् शान्ति को प्राप्त करता है।

- **अतः हे अर्जुन! तू ये प्रतिज्ञा कर, यह उद्घोष कर कि भगवान् के भक्त का कभी नाश नहीं होता – 'न में भक्तः प्रणश्यति'।**
- **न वो मेरी ऑखों से ओझल होता है और न मैं उसकी ऑखों से क्योंकि वो और मैं एक हैं (BG – V 06.30) .**

(V 32) स्त्री, वैश्य, शूद्र आदि पापयोनयः (पूर्व में अधिक पाप कर्म करने वाले) को भी परांगति प्राप्त होती है यदि उनके हृदय में भगवान् की भक्ति हो तो।

(V 33) जन्म से ही पुण्य योनि ब्राह्मण व क्षत्रिय के शरणागत होने पर **मैं** अत्यन्त ही सुलभ हूँ अत: इस दु:खरूप-क्षणभंगुर संसार में तू मेरा ही भजन कर, मेरी ही शरण ले।

(V 34)

मन्मना	–	मैं ही तुम्हारा मन बनकर बैठा हूँ, मुझे अपने विचार दे दो।
मद्भक्त:	–	मुझे अपनी प्रीति-भक्ति दे दो।
मद्याजी	–	मुझे अपने कर्म दे दो।
मां नमस्कुरु	–	भगवान् को नमस्कार - नम्र हो जाओ, कोमल हो जाओ। पहले शरणागति, फिर यज्ञ, फिर भक्ति और फिर ज्ञान। यदि यह सब नहीं होता तो –
मत्परायण:	–	मुझ पर भरोसा रखो, सब ठीक कर दूँगा।
युक्त्वैवं आत्मानं	–	बस तुम अपने आपको मुझसे जोड़ लो, बस मेरे पास आ जाओ, बाकी सब मैं करूँगा।

*** नवधा भक्ति ***

(श्रीरामचरितमानस)

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा, दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।
गुर पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान ।।
चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान ।।
मंत्र जाप मम दृढ बिस्वासा, पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।
छट दम सील बिरति बहु करमा, निरत निरंतर सज्जन धरमा ।।
सातँव सम मोहि मय जग देखा, मोतें संत अधिक करि लेखा ।।
आठँव जथालाभ संतोषा, सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ।।
नवम सरल सब सन छलहीना , मम भरोस हियँ हरष न दीना ।।
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होइ , नारि पुरुष सचराचर कोई ।।
सोई अतिसयप्रिय भामिनी मोरें, सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।।

*** नवधा भक्ति ***

(श्रीमद्भागवत महापुराण)

श्रवणं कीर्तनं विष्णु-स्मरणं पाद-सेवनं ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्म-निवेदनं ।।

।। इति ।।

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-9	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
0	-	-

Verse No.	Chapter-9	अर्जुन के सम्बोधन
1	अनुसूयवे	दोष रहित दृष्टि वाला भक्त
3	परन्तप	शत्रु को तपाने वाला
7, 10, 23, 27, 31	कौन्तेय	कुन्ती पुत्र, क्षत्राणी पुत्र की गरिमा का भान कराने वाला
9	धनंजय	राजसूययज्ञ में अनेकों राज्यों पर विजय व अपार धन प्राप्त करने वाला
19	अर्जुन	असीम् पुण्यों को अर्जित करने वाला, सरल स्वभाव वाला
32	पार्थ	पृथा (कुन्ती) का पुत्र, प्रेम का सम्बोधन

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
34	0	34	0

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

विभूतियोगो नाम

दशमोऽध्याय:

(42 श्लोक)

प्रस्तावना

'मामनुस्मर युध्य च' 8 वें अध्याय का प्रसिद्ध वाक्य है। 10 वॉ अध्याय इस महावाक्य की व्याख्या है। इस अध्याय में **योग** और **विभूति** दो विषयों का वर्णन किया गया है।

- **योग = भगवत् तत्त्व**
- **विभूति = भगवान् का ऐश्वर्य/वैभव**

जैसे विश्राम व व्यवहार जीवन के अंग हैं ऐसे ही भगवत् स्मरण व स्वधर्म पालन जीवन के अंग हैं। Ch. 07 में V 08 - 11 तथा Ch. 09 में V 16 - 19 में भी भगवान् की विभूति का वर्णन किया गया है।

योग क्या है? = समाधि में भगवत् तत्त्व का चिन्तन (निर्गुण-निराकार)
विभूति क्या है? = व्यवहार में भगवान् के वैभव (विभूति) का दर्शन (सगुण-साकार)

उदाहरण -

- जैसे सूर्य योग है तो सूर्य की प्रभा विभूति है।
- काष्ठ में छिपी व्यापक अग्नि योग है तो अग्नि की उष्णता व प्रकाश विभूति है।

अत: जो शान्ति को भी भगवान् देखता है तथा भगवान् के वैभव इस संसार को भी भगवान् देखता है वह भगवान् से कभी नहीं बिछुड़ता - ये ही **अविकम्प योग** है अर्थात् ऐसा योग जो समाधि एवं व्यवहार में एक सा रहे वही अविकम्प योग है। ये ऐसी साधना है जिसमें भोग तो छूटे नहीं व्यवहार होता रहे एवं मोक्ष मिल जाय। यदि आप दृश्यमान जगत इस प्रपंच को भगवान् की विभूति के रूप में पहचान जायेंगे तो आप जहॉ हैं, जिस काल में हैं वहॉ भगवान् से जुड़े रहेंगे।
गीताजी आपके व्यवहार को भी परमार्थ बनाने के लिये अवतीर्ण हुई हैं।

आत्मसमर्पण के ४ प्रकार –

1- सब छोड़कर परमात्मा से मिलो – उद्धवजी को आदेश
2- सब कर्म करते हुए मुझसे मिलो – अर्जुन को आदेश
3- तप से पवित्र होकर परमात्मा से मिलो – राजा अम्बरीश को आदेश
4- पवित्र-अपवित्र जैसे हो बस परमात्मा की ओर चलो जैसे गोपियॉ
   * जो उनके पास जाता है वह **पवित्र-पवित्रतर-पवित्रतम** हो जाता है *

V 01 **भगवान् की वाणी**

जो वाणी सबके लिये हितकारी हो तथा श्रेष्ठ ज्ञान व आनंद देने वाली हो वह भगवान् की वाणी है। भगवान् कहते हैं हे महाबाहो! क्योंकि धर्म रक्षा व धर्म संवर्धन का भार तुम्हारी बाहों पर है अत: मैं तुम्हें परम श्रेष्ठ वचन कहता हूँ, तुम्हारे हित की कामना से कहता हूँ, सावधान होकर सुनो क्योंकि तुम मेरे वचन सुनकर प्रसन्न होते हो, तृप्त होते हो।

- प्रसन्नता, आत्म शुद्धि, आत्मसाक्षात्कार **योग** है - यह अपने काम आता है।
- हित कामना से किसी का भला करना **विभूति** है - यह दूसरे के काम आता है।

V 02 **ऋषि-महर्षि व देवता मेरी उत्पत्ति को नहीं जानते**

ऋषि – ऋषि वे जिन्हें ज्ञान हो अर्थात् शब्द द्रष्टा, स्पर्श द्रष्टा आदि, ये इन्द्रियाँ अध्यात्मिक ऋषि हैं।

श्रोत्र	त्वचा	नेत्र	रसना	घ्राण
⇩	⇩	⇩	⇩	⇩
शब्द द्रष्टा	स्पर्श द्रष्टा	रूप द्रष्टा	रस द्रष्टा	गन्ध द्रष्टा

देवता – कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय व अन्त:करण के अधिदैव एवं विश्व सृष्टि के समस्त देवता जैसे सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, विष्णु, रुद्र – ये भगवान् के योग (प्रभव-उत्पत्ति) तथा विभूति (प्रभाव) को नहीं जानते क्योंकि भगवान् अनादि हैं, भगवान् का जन्म नहीं होता।

सारा अध्यात्म (ज्ञानेन्द्रियाँ) 'ऋषि' हैं व सारे अधिदैव (अनुग्राहक देव) 'देवता' हैं। इनसे ही समग्र अधिभूत दिखाई देते हैं। ये सबके सब परमात्मा के स्वरूप हैं, सबका उपादान कारण परमात्मा हैं।

V 03 **भगवान् को अज-अनादि जानो, लोक महेश्वर जानो**

भगवान् को अज-अनादि जानो - यह **योग** है

भगवान् को लोक-महेश्वर जानो - यह **विभूति** है – मैं समस्त जगत का संचालक हूँ, प्रेरक हूँ। मैं जगत को प्रकट करता हूँ, जगत का पालन-पोषण करता हूँ और लय करता हूँ। अत: ऐसा जानने के दो फल हैं :—

1- असंमूढ़ – परमात्मा के विषय में अज्ञान मिटा - यह **योग** है।
2- सर्व पापों से मुक्त हुआ - यह **विभूति** है।

अत: विभूति योग का अभिप्राय है – समाधि में भगवान्, व्यवहार में भगवान्, पूजाघर में भगवान्, कार्य क्षेत्र में भगवान्, सर्व नाम-रूप में भगवान्।

जब हम परमेश्वर को दोनों रूपों में पहचान लेते हैं तब हमें अज्ञान नहीं होता, संमोह नहीं रहता, सब भ्रम मिट जाते हैं। ईश्वर के अतिरिक्त कोई दूसरा है, मैं कुछ दूसरा हूँ – यह सब संमोह है। दु:ख से मुक्ति का उपाय यही है कि अज्ञान, संमोह व भ्रम मिटे। इस तरह सबमें भगवान् देखो – न राग होगा, न द्वेष होगा और न दु:ख-शोक व भय होगा।

V 04 & 05 **भगवान् हमें क्या देते हैं? – अन्तर्भाव की उत्पत्ति**

- 'भगवान् हमें क्या देते हैं'– ये सब भाव भगवान् से ही आते हैं तथा भगवान् से ही प्रकाशित होते हैं।
- समुद्र मंथन के समय भगवान् ने 14 रत्न दिये - ये **विभूति** है।

(भगवान् अब **आत्म रत्न** बताते हैं जो तत्त्व ज्ञान के साधन हैं–'बुद्धि, ज्ञान, असंमोह'–ये **योग** है)

1 आत्म रत्न

बुद्धि बुद्धि ज्ञान का आधार है, अच्छा बुरा जानना तथा निश्चय करना बुद्धि का धर्म है - (1) सत्य प्रधान बुद्धि (2) सुख प्रधान बुद्धि

ज्ञान ज्ञान सच्चा होना चाहिये – यथार्थ ज्ञान

असंमोह जहॉ बुद्धि में भ्रम न हो (संशय रहित ज्ञान) अर्थात् भ्रम-मोह त्याग की शक्ति।

ईश्वर सृष्टि स्त्री-पुरुष, वृक्ष-पर्वत, सूर्य-चन्द्र आदि – इनमें दु:ख नहीं है, ये प्रकृति की सृष्टि है।

जीव सृष्टि व्यक्ति, पेड़, ज़मीन में मेरापन करना – क्योंकि वह हम छोड़ भी सकते हैं व उन्हें छीना भी जा सकता है, वियोग भी होता है अत: जीव सृष्टि में ही दु:ख है। यह अविद्या की सृष्टि है, वही 'मैं' और 'मेरे' का सृजन करती है। अज्ञान के कारण ही भ्रमवश दु:ख होता है और ज्ञान से जीव शोक मुक्त होता है।

2 अन्त:करण रत्न – शुद्धि के साधन

क्षमा जो समर्थ होता है वही क्षमावान् होता है, क्षमावान् लक्ष्य निष्ठ होता है। आर्य पुरुष व नारी को करुणा करनी चाहिये, यह आत्म बल दिखाता है।

सत्य केवल वाणी का सत्य नहीं अपितु जिससे प्राणियों का अत्यन्त हित हो उसे सत्य कहते हैं। सत्य बालो, प्रिय बालो, अप्रिय और अनावश्यक सत्य न बोलो।

दम विवेक पूर्वक इन्द्रिय संयम।

शम मन बात-बात में उद्विग्न न हो, शान्त रहे। बाहर का प्रभाव अपने मन पर न पड़े।

3 लोक व्यवहार रूपी रत्न – भगवान् के प्रति कृतज्ञता का भाव जिसने हमें इतनी सम्पदा दी

सुखं जिस वस्तु के आने से हृदयाकाश स्वच्छ व निर्मल हो।

दु:खं जिस वस्तु के आने से हृदयाकाश दूषित हो परन्तु वह जीवन को सुधारे, वह स्वयं को स्थिर करने का अवसर है। ये सुख-दु:ख परमात्मा से आने वाले भाव हैं अत: देने वाले परमात्मा पर दृष्टि रखो सुख-दु:ख पर नहीं, तब मन पर इतना प्रभाव नहीं होता।

भाव - अभाव (जन्म-मृत्यु) जिसने जन्म दिया वही मृत्यु देता है। अच्छा जन्म देने के लिये मृत्यु देता है। इस जन्म के प्रयोजन पूरे हुए अत: मृत्यु देता है। जब चलने की आज्ञा हो भगवान् की, तो एक सैनिक की तरह तुरन्त तैयार हो जाओ।

भय - अभय भय-निर्भय भाव भी भगवान् देते हैं। भय से बुरे मार्ग से हटाते हैं, हमारा हित करते हैं। धर्म ज्ञान से निर्भय बनाकर सत्कर्म करवाते हैं व आदर्श जीवन जीने का बल देते हैं। तत्त्व ज्ञान से पूर्ण निर्भय बनते हैं।

4 जीवन रत्न

अहिंसा	जानबूझ कर किसी को कष्ट न दो। हित भावना से कभी करुणा, कभी कठोरता वैदिक धर्म है।
तुष्टि (सन्तोष)	मन में सन्तोष बना रहे - ये सद्गुण होने पर आप जीवन मुक्त है। जिसने परमार्थ एवं व्यवहार का रहस्य समझ लिया है उसके जीवन में भगवान् प्रकट हैं।
समता	सबके प्रति मन में समभाव हो। समता चित्त वृत्ति—जो हुआ सो ठीक, जो हो रहा है सो ठीक, जो होगा सो भी ठीक – सब भगवान् की इच्छा। असंगता बनी रहे, कहीं भी न फॅसे, बस परमात्मा से सम्बन्ध बना रहे।
तप	इन्द्रियों का संयम करें।
दानं	श्रद्धा से दान करो। अश्रद्धा से, शर्म से, भय से भी दान अवश्य करो।
यश-अपयश	'धर्म से कीर्ति व अधर्म से अपयश होता है' – जानते रहो कि ये सब भगवान् देते हैं मनुष्य नहीं देते।

V 06 **7 महर्षी, 4 सनतकुमार** (मानस पुत्र) **एवं 4 मनु – भूत-प्राणियों की उत्पत्ति**

ये सब के सब परमेश्वर से पैदा हुए हैं और इन्हीं से लोक की सब प्रजा बनती है अत: सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मामयी है।

V 07 **योग और विभूति क्या हैं?** (यह प्राण श्लोक है)

हे अर्जुन! तत्त्व से समझो कि **योग** क्या है और **विभूति** क्या है? जैसे एक वस्तु होती है और एक वस्तु की विभूति होती है, उदा० मिट्टी और हीरा, तो मिट्टी योग है और हीरा उसकी विभूति है। पानी का शुद्ध माधुर्य योग है और शरबत व बर्फ उसकी विभूति है।

योग – परमात्म चिन्तन, यह जानकर कि एक परमात्मा ही सत्य है।
विभूति – परमेश्वर की सृष्टि जैसे सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि अत:जिसकी विभूति है उसको नहीं भूलो।
इस प्रकार जब हम योग व विभूति दोनों को जानते हैं तब हम जहॉ हैं, जैसे हैं, जो कर रहे हैं वह सब भगवान में ही है। जन्म-मृत्यु भगवान् में, रोना-हॅसना भगवान् में, खाना-पीना-खेलना भगवान् में, लड़ना भी भगवान् में अर्थात् जहॉ हैं वहीं भगवान् में हैं – यही **अविकम्प योग** है, भगवान् कभी छूटता ही नहीं।

V 08 **इस श्लोक की गायत्री मंत्र से तुलना**

- **'तत् सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धी:मही' = 'अहं सर्वस्य प्रभव:' → *तत् पदार्थ***
  हम ध्यान करते हैं मानो परमात्मा के साथ योग कर रहे हैं जो भूत एवं भावों का उद्भव स्थान है, सर्वोपरि सत्ता है – यही योग है।
  तथा परमात्मा क्या कर रहे हैं?
- **'धियो यो न: प्रचोदयात्' = 'मत्त: सर्वं प्रवर्तते' → *त्वम् पदार्थ***
  यही परमात्मा हमारी देह में आत्मा रूप से बैठा है वह लोक महेश्वर रूप से सृष्टि का प्रेरक व संचालन करता है, यह उस आत्म देव की विभूति है।
  ये सृष्टि कर्ता परमात्मा व बुद्धि प्रेरक आत्मा एक परमात्मा ही हैं, ऐसा जानकर ये बुधा भाव से भगवान् का भजन करते हैं।

भगवान् में रमने का उपाय एवं फल क्या है?

(V 09, 10, 11)

V 09 जिस हृदय में ईश्वर का भाव है उस हृदय का उत्तम कोटि का निर्माण होता है जिससे भगवान् स्वयं वहॉ प्रकट होकर जीव के हृदय के अज्ञान व मोह का स्वयं ही नाश कर देते हैं। अत: हृदय में भाव को उत्पन्न करने के लिये –

मच्चित्ता – 'मन व बुद्धि दोनों मुझे दो' अर्थात् मन से भगवान् से प्रेम करो और बुद्धि से भगवान् का विचार करो।

मद्गतप्राणा – 'जीते हैं भगवान् के लिये' अर्थात् अपने प्राणों को भगवान् में रख दो। जैसे स्वॉस के बिना व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता ऐसे ही मेरे भजन को ही अपना जीवन बनाओ। भगवान् कहते हैं संसार की व्यर्थ बातें न करके परस्पर परमेश्वर की ही चर्चा करो।

तुष्यन्ति च रमन्ति च – अपने सुख को स्त्री-पुरुष, धन-ज़ायदाद, पद-प्रतिष्ठा में न रख कर भगवान् में रख दो। भगवान् का स्मरण हो तो आनन्द आ जाए, शरीर में रोमांच हो जाय, कण्ठ गद्गद् हो जाए।

V 10 जो मेरा प्रीतिपूर्वक निरन्तर भजन कर रहे हैं अर्थात् जो सामने आ जाए उसे प्रेम दो – ऑखों से आनन्द बरसे, हाथों से प्रेम भरा स्पर्श हो, वाणी से मधुर बोल निकलें, जिसे देखो उस पर प्रेम बरसा दो।

''तुम मुझे प्रेम दो और मैं तुम्हें बुद्धि दूँगा''

कौन सी बुद्धि – भोग की? संग्रह की? अथवा कर्म करने की?

नहीं! भगवान् कहते हैं मैं तुम्हें वह बुद्धि दूँगा जिससे तुम मेरे निकट आओगे व पाप-पुण्य के बन्धन से छूट जाओगे। उस बुद्धि से मुझ परमात्मा को अपनी आत्मा के रूप में जान जाओगे।

V 11 यह देखो दया बरस रही है। प्रेमी और प्रियतम एक हो गये। भगवान् कहते हैं कि **'मैं'** तुम्हारे रास्ते में मशाल लेकर खड़ा हो जाऊँगा – बुद्धि देने वाला **मैं**, मशाल दिखाकर रास्ता बताने वाला **मैं** और मिलने व मिलाने वाला भी **मैं**, यही ज्ञान का प्रकाश है। हम देखते हैं – जगत को, अपने को और परमात्मा को, ये तीनों हैं तो एक ही परन्तु बुद्धि ही तीन प्रकार की हो जाती है यद्यपि वस्तु में अन्तर नहीं होता।

भगवान् तीन नहीं बनते कि एक भगवान् **'भगवान्'** हैं, एक भगवान् **'मैं'** बन गया, एक भगवान् **'जगत'** बन गया। **भगवान् तो एक ही हैं** – यह बुद्धि बिखर जाती है।

अनुकम्पा का अर्थ – भक्त के हृदय के भाव को देखकर भगवान् कंपित हो जाते हैं कि कैसे मैं शीघ्रता से इसका उद्धार करूँ, अत: भगवान् भजन करने वाले के आत्मभाव में स्थित हो जाते हैं। वहॉ मैं ज्ञान दीपक के द्वारा अर्थात् प्रमाण जन्य विवेक प्रत्यय के द्वारा उनके अज्ञान जन्य अन्धकार/भ्रम का नाश कर देता हूँ एवं जीव को उसके स्वरूप आत्मा के रूप से अपने सच्चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान करा देता हूँ।

V 12 To V 18 अर्जुन के वचन

हे भगवन्! आप परं ब्रह्म हो, आप ही परं धाम हो, पवित्रं हो, माया से परे हो, पुरुष हो – सत्-चित्-आनंद से पूर्ण हो, शाश्वत हो, दिव्य-अलौकिक हो, आदिदेव हो, अज हो, विभु (व्यापक) हो। वैसे ही देवर्षि नारद व असित और देवल ऋषि तथा महर्षि व्यास एवं स्वयं आप भी ऐसा ही कहते हैं। देवता और दानव भी आपके इस रूप को नहीं जानते।

पुरुष तो जीव है अत: उसको भी जो आत्मभाव करा दें ऐसे पुरुषोत्तम, भूतभावन, भूतेश, देवदेव व जगत्पते हैं आप। अत: आप कृपा करके अपनी सभी विभूतियों को विस्तार पूर्वक कहिये अर्थात् आप एक अद्वितीय रहते हुए कैसे अनेक रूप में दिखाई देते हैं। हे जनार्दन! अर्थात् भक्तों का कल्याण करने वाले व दुष्टों को नरक पहुँचाने वाले आप फिर से कहिये क्योंकि आपके अमृत वचन सुनते सुनते मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।

श्रीभगवानुवाच

V 19 भगवान् कहते हैं मैं 7वें अध्याय में **V 08 - V 11** और 9वें अध्याय में **V 16 - V 19** मैं अपनी विभूति दर्शन करा चुका हूँ परन्तु फिर भी मैं तुम्हें अपनी दिव्य विभूतियाँ प्रधानता से कहूँगा क्योंकि मेरे विस्तार का कोई अन्त नहीं है।

V 20 **इस अध्याय का महावाक्य व अवान्तर वाक्य** — हे गुडाकेश!

- मैं परमात्मा ब्रह्म सब भूतों में आत्मा रूप से स्थित हूँ अत: **ब्रह्मात्म ऐक्यम्** सिद्ध हुआ – **यह योग है।**
- मैं परमात्मा ब्रह्म ही माया से इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति व लय का कारण हूँ – **यह भी योग है।**
- अत: **परमात्मा का नित्य आत्मा रूप से दर्शन करो – यह योग है** तथा
- यह समस्त सृष्टि भी परमात्मरूप है क्योंकि कार्य अपने कारण से भिन्न नहीं होता – **यह विभूति है।** परमात्मा स्वयं बन गये, स्वयं बना लिया तथा सबके नाम-रूप में हो गये।

भगवान् की 71 विभूतियाँ

V 21	1 - आदित्य के १२ पुत्रों में	**विष्णु**	**V 22**	5 - वेदों में	**सामवेद**
	2 - ज्योतियों में	**सूर्य**		6 - देवों में	**इन्द्र**
	3 - ४९ वायु देवताओं मे	**तेज - मरीचि**		7 - इन्द्रियों में	**मन**
	4 - नक्षत्रों में	**चन्द्रमा**		8 - भूत-प्राणियों में	**चेतना/जीवन**
V 23	9 - एकादश रुद्रों में	**शंकर**	**V 24**	13 - पुरोहितों में	**बृहस्पति**
	10 - यक्ष व राक्षसों में	**कुबेर**		14 - सेनापतियों में	**स्कन्द**
	11 - आठ वसुओं में	**अग्नि**		15 - जलाशयों में	**समुद्र**
	12 - शिखर वाले पर्वतों में	**सुमेरु पर्वत**			
V 25	16 - महर्षियों में	**भृगु**	**V 26**	20 - वृक्षों में	**पीपल का वृक्ष**
	17 - शब्दों में एक अक्षर में	**ओंकार**		21 - देवर्षियों में	**नारद मुनि**
	18 - सब प्रकार के यज्ञों में	**जप यज्ञ**		22 - गन्धर्वों में	**चित्ररथ**
	19 - स्थिर रहने वालों में	**हिमालय पर्वत**		23 - सिद्धों में	**कपिल मुनि**
V 27	24 - घोड़ों में	**उच्चै:श्रवा घोड़ा**	**V 28**	27 - शस्त्रों में	**इन्द्र का वज्र**
	25 - श्रेष्ठ हाथियों में	**ऐरावत हाथी**		28 - गौओं में	**कामधेनु**
	26 - मनुष्यों में	**राजा**		29 - धर्ममय काम में	**कामदेव**
				30 - सर्पों में	**सर्पराज वासुकी**

V 29	31 - नागों में	**शेषनाग**	**V 30**	35 - दैत्यों में	**प्रह्लाद**
	32 - जलचरों का अधिपति में	**वरुण देवता**		36 - गणना में	**समय**
	33 - पितरों में	**अर्यमा पितर**		37 - पशुओं में	**मृगराज सिंह**
	34 - संयम रूप में	**यमराज**		38 - पक्षियों में	**गरुड़**
V 31	39 - पवित्र करने वालों में	**वायु**	**V 32**	43 - सृष्टियों का	**आदि-अन्त-मध्य**
	40 - शस्त्रधारियों में	**श्रीराम**		44 - विद्याओं में	**अध्यात्म विद्या**
	41 - मछलियों में	**मगर**		45 - परस्पर विवाद में	**वाद (तत्त्व निर्णय)**
	42 - नदियों में	**भागीरथी गंगाजी**			
V 33	46 - अक्षरों में	**अकार**	**V 34**	51 - सर्व के हरण में	**मृत्यु**
	47 – समासों में	**द्वन्द्व समास**		52 - उत्पन्न होनेवालों में	**उत्पत्ति का हेतु**
	48 - काल का	**महाकाल**		53 - स्त्रियों में **कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा**	
	49 - धारण करने वालों में	**धाता**			
	50 - सब ओर मुख वाला -	**विश्वतोमुखं**			
V 35	54 - गायन योग्य श्रुतियों में	**बृहत्साम**	**V 36**	58 - छल करने वालों में	**जुआ**
	55 - छन्दों में	**गायत्री छन्द**		59 - तेजस्वियों का	**तेज**
	56 - महीनों में	**मार्गशीर्ष**		60 - जीतने वालों में	**विजय भाव**
	57 - ऋतुओं में	**वसन्त**		61 - अनेक संकल्पों में	**निश्चय भाव**
				62 - सात्विक पुरुषों का	**सात्विक भाव**
V 37	63 - वृष्णिवंशियों में	**वासुदेव - मैं**	**V 38**	67 - दमन करने वालों का	**दण्ड**
	64 - पाण्डवों में	**धनंजय - तू**		68 - जीतने की इच्छा वालों में	**नीति**
	65 - मुनियों में	**वेदव्यास**		69 - गुप्त रखनेयोग्य भावों का रक्षक	**-मौन**
	66 - कवियों में	**शुक्राचार्य कवि**		70 - ज्ञानवानों का	**तत्त्वज्ञान**

V 39 71 - **सर्वभूतानां बीजं** - सब भूतों की **उत्पत्ति का कारण मैं** हूँ।

इस प्रकार भगवान् ने अपनी मुख्य-मुख्य विभूतियाँ बतायीं एवं कहा कि इनकी आराधना करो परन्तु सभी विभूति आराध्य नहीं हैं जैसे **जुआ** (द्यूत) कभी न खेलो तथा **अन्न** विभूति है परन्तु चन्दे का अन्न, गणिका (वैश्या) का अन्न, राजा का अन्न एवं चण्डिकान्न - मॉस इत्यादि खाना वर्जित है, इसे खाने से मनुष्य पतित होता है।

प्रश्न – भगवान् ने ये सृष्टि क्यों बनाई?

उत्तर – करुणावश! जिससे जीव सोता न रहे व अपने धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष रूप पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करे। वे ही इस सोये हुए जीव को जगाते हैं। सृष्टि के रूप में भगवान् ही अनेक रूपों में प्रकट होते हैं और देह में आत्मा रूप से प्रकट होते हैं परन्तु जीव अनात्म वस्तुओं में आसक्त होकर उन्हें 'मैं' और 'मेरा' मानकर दु:खी होने लगता है एवं न तो स्वयं को और न उनकी सृष्टि को परमात्म रूप देख पाता है अत: पुन: पुन: जन्म-मरण को प्राप्त होता है। तब भगवान् करुणा करके अवतार व गुरु रूप में प्रकट होकर इस जीव को ज्ञान देते हैं। जो जीव भगवान् की भक्ति करता है भगवान् उसके साथ पक्षपात भी करते हैं।

V 39 सम्पूर्ण प्राणियों का बीज मैं हूँ तथा यह जो चर-अचर सृष्टि दीख रही है वह मेरे सिवाय कुछ नहीं है अत: चर-अचर दोनों ब्रह्म ही हैं, जो ऐसा जानता है वह महात्मा है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेव: सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ:।। BG - 07.19 **।।**

V 40 हे परन्तप! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है, मैंने अपनी विभूतियों का यह विस्तार तो तेरे लिये संक्षेप से कहा है।

V 41 भगवत् शक्ति में विषमता नहीं है। पूर्व-पूर्व के कर्मानुसार विशिष्ट प्रकार का जो यन्त्र बन जाता है उस यन्त्र अर्थात् अन्त:करण में विषमता है, भगवत् शक्ति उसमें वैसा ही काम करती है। जैसे एक ही बिजली भिन्न भिन्न यन्त्रों से भिन्न भिन्न काम कराती हैं उदा०- पंखे में हवा, हीटर में गर्मी, फ्रिज में ठण्डक, मिक्सी में पीसना आदि। अब यदि भगवत् दर्शन करना है तो देखिये जहॉ भी विभूति, श्री व ऊर्जा शक्ति है वह मेरे ही तेज के एक अंश का रूप है।

1. **विभूति** – अर्थात् विशिष्ट बनने की सामर्थ्य
2. **श्री** – अर्थात् सौन्दर्य, सम्पदा, आदर
3. **ऊर्जा** – अर्थात् शक्ति

अत: जहॉ भी विभूति, श्री व ऊर्जा है वहॉ भगवान् के दर्शन करो।

V 42 अर्जुन! तुम इन सब विस्तारों को जानकर क्या करोगे? एक के विज्ञान से सर्व का ज्ञान प्राप्त करो। मैंने तो अपने एक अंश से ही सम्पूर्ण जगत को धारण कर रखा है तथा मैं तो स्वयं अपने स्वरूप में स्थित हूँ।

'यह तो नदिया एक, घाट बहुतेरे'

।। इति ।।

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-10	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
14	केशव	केशि असुर को मारने वाले, लम्बे सुन्दर बाल वाले विष्णु
15	पुरुषोत्तम	सर्वोत्तम पुरुष अर्थात् ब्रह्म
15	भूत भावन	भूतों को उत्पन्न करने वाले
15	भूतेश्वर	भूतों के ईश्वर
15	जगत्पते	जगत के स्वामी
15	देवदेव	देवों के देव
17	योगिं	योगेश्वर
18	जनार्दन	याचना करने वालों का कल्याण करने वाले

Verse No.	Chapter-10	अर्जुन के सम्बोधन
1	महाबाहो	महा बलशाली, धर्म रक्षण व धर्म संवर्धन करने वाला
19	कुरुश्रेष्ठ	कुरु वंश में श्रेष्ठ
20	गुडाकेश	घुँघराले बाल, निद्रा पर विजय प्राप्त करने वाला
24	पार्थ	पृथा (कुन्ती) का पुत्र, प्रेम का सम्बोधन
32, 39, 42	अर्जुन	असीम् पुण्यों को अर्जित करने वाला, सरल स्वभाव वाला
37	धनंजय	प्रदीप्त ज्ञानाग्नि, राजसूययज्ञ में विजय एवं अपार धन प्राप्त करने वाला

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
42	0	7	35

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

विश्वरूपदर्शनयोगो नाम

एकादशोऽध्यायः

(55 श्लोक)

प्रस्तावना

इस अध्याय में सगुण-साकार ब्रह्म का दर्शन है। दसवें अध्याय में भगवान् ने अपनी विभूतियों का वर्णन किया एवं कहा कि इस जगत को मैं अपनी विभूतियों से व्याप्त करके अपने एक अंश में धारण करके स्थित हूँ अतः भगवान् के इस ऐश्वर्य, सोपाधिक विश्व-विराट का प्रत्यक्ष दर्शन करने की इच्छा से अर्जुन बोले :–

V 01 अर्जुन कहते हैं – मुझ पर अनुग्रह-करुणा करके आपने ये गुह्य वचन कहे हैं कि आपकी आज्ञा से पृथ्वी दृढ़ है (**धारिणी शक्ति**), जल रसीला है तृप्ति देता है (**आप्यायिनी शक्ति**), तेज तेजस्वी है (**प्रकाशिनी शक्ति**), वायु प्राण देता है (**प्राणिनी शक्ति**) तथा आकाश अवकाश देता है (**श्रावणी शक्ति**)। सम्पूर्ण जगत अपनी अपनी मर्यादा में स्थित है। मेरा मोह नष्ट हुआ है – शरीर को आत्मा समझना ही मोह है तथा जो वस्तुएं हमारे जन्म से पहले की हैं उन्हें अपना समझना भी मोह ही है। 'यह मेरी और यह तेरी' करके अपने मन को कठोर बना लेना व अपने हृदय में हिंसा को स्थान देना – यह मोह है। बड़ी युक्ति से आपने ज्ञान दिया।

मैं अरु मोर तोर तैं माया, जेहि बस कीन्हे जीव निकाया ।।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई, सो सब माया जानेहु भाई ।।

V 02 हे कमल पत्राक्ष! शुद्ध, पवित्र, कोमल व असंग कृष्ण – मैंने आपसे जगत की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय विस्तार में सुनी तथा आपकी अव्यय महिमा को जाना, अव्यय महिमा का अर्थ है आत्म रूप से ईश्वर का बोध होना जिससे फिर कभी अपने स्वरूप से विचलित न हो अतः आत्मा की ही अव्यय महिमा है और यही यर्थाथ ज्ञान है – श्रीकृष्ण ने यह स्पष्ट रूप से बता दिया।

V 03 जैसा आपने अपने को बताया आपके उसी ऐश्वर्य को मैं देखना चाहता हूँ। आपने ज्ञान तो करा दिया बस अब आपके विश्व रूप को देखना चाहता हूँ, आपके ऐश्वर्य **'ईश्वर'** रूप को देखना चाहता हूँ। मैं ऐसा चाहता हूँ कि मुझे कोई साधन, कोई उपाय भी न करना पड़े और दर्शन हो जाए अर्थात् आपकी करुणा हो जाए।

V 04 ईश्वर कृपा का दर्शन

हे प्रभो! अर्थात् सर्वसमर्थ तथा हे योगेश्वर! अर्थात् सर्व योग को देने वाले आप अपनी अव्यय अविनाशी आत्मा का दर्शन मुझे कराओ। यदि मैं दर्शन के योग्य नहीं भी हूँ तो मुझे योग्य बना लो – चाहे एकाग्र बनाकर और चाहे अपने आलिंगन के स्पर्श द्वारा।

V 05 श्रीभगवानुवाच

हे पार्थ! अर्थात् प्रथनशील (विस्तार को प्राप्त होने वाले) तुम ब्रह्म से, विश्वात्मा से एक होने वाले हो, देखो मेरे ऐश्वर्य रूप को देखो। सैंकड़ों-हज़ारों यानि असंख्य-अगणित रूप जो हम देख रहे हैं ये सब भगवान् के ही रूप हैं। हमें दिखाई पड़ने वाले नाना प्रकार के वर्ण अर्थात् रंग रूप, आकार तथा क्रियात्मक समग्र प्रपंच (समष्टि) मेरा ऐश्वर्य रूप है अर्थात् विश्व रूप है। ईश्वर रूप तो स्वत: सिद्ध है उसका निर्माण नहीं होता उसका (सगुण-साकार/अवतार का) दर्शन होता है। भगवान् का शरीर शुद्ध सत्वगुणी माया से निर्मित होता है जबकि एक देह धारी व्यक्ति (व्यष्टि) का शरीर जो पंचमहाभूतों के सम्मिश्रण से बना है, वह तो दैव अर्थात् प्रारब्ध के अनुरूप कर्मानुसार बने हैं जैसे पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता, दानव। सभी व्यष्टि शरीर भगवान् के एक समष्टि शरीर में उसी प्रकार जुड़े हैं जैसे एक वृक्ष में शाखाएं, टहनियॉं, पत्ते, फल और फूल।

V 06 हे भारत! ज्ञान में संलग्न अर्जुन! अब मेरी देव सृष्टि देख – 12 आदित्य, 11 रुद्र, 8 वसु, दोनों अश्विनी कुमार व 49 मरुत् गणों को देख तथा अन्य बहुत आश्चर्य रूप देख। यहॉं जानो कि सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? परमात्मा को देखने वाला, परमात्मा को जानने वाला, वक्ता, वचन व श्रोता सब आश्चर्य रूप हैं क्योंकि एक परमात्मा ही सब रूपों में है।

V 07 हे गुडाकेश!

आधिभौतिक अर्थ – सुन्दर घुँघराले केश वाला, सौन्दर्य सूचक।
आधिदैविक अर्थ – अपनी वीरता से भ०शंकर को प्रसन्न कर पाशुपतास्त्र प्राप्त करने वाला।
आध्यात्मिक अर्थ – संयमी, जिसने पॉच चीज़ों पर विजय प्राप्त की है –

1- प्रमाण अर्थात् वृत्तियों पर निरोध **2-** विपर्यय **3-** विकल्प **4-** निद्रा **5-** स्मृति पर विजय

तुम यह चर एवं अचर सम्पूर्ण जगत (जगत = गच्छति इति जगत अर्थात् जो भी परिवर्तनशील है), मेरे शरीर के एक अंश में देखो। ये पर्वत, ये लहलहाता समुद्र, ये नदियॉं, ये धरती जो सूर्य की परिक्रमा कर रही है सब मेरे शरीर में देखो। जन्म देखो, जीवन देखो व मृत्यु देखो। तुम्हारे मन में जो संशय है कि हम जीतेंगे अथवा वे जीतेंगे? वह भी देख लो।

V 08 तुम मेरे इस विश्व-विराट स्वरूप को प्राकृत चक्षुओं से नहीं देख पाओगे, आओ मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूँ :—

1 **निम्न दृष्टि** – प्राकृत चर्म चक्षुओं से जो संसार दीखता है यह पंचभौतिक है।

2 **अन्तर्दृष्टि** – वेदान्त प्रमा जिससे यह देखा जाता है कि अधिष्ठान रूपी श्रीकृष्ण चिन्मय सत्ता में यह सम्पूर्ण जगत एकांश में अध्यास रूप से स्थित है। मैं चिन्मय सत्ता ही माया से जीव-ईश्वर व चराचर जगत रूप में भासता हूँ। यही मेरा योग-ऐश्वर्य दर्शन है, विश्वरूप दर्शन है। भक्त में यह भावना रूप है और ज्ञानी में ये प्रमा रूप है।

3 **ब्रह्म दृष्टि / आत्म दृष्टि** – मैं ब्रह्म ही सर्वभूतों में आत्मा रूप से स्थित हूँ।

जीव दृष्टि से सृष्टि है → अत: सृष्टि है → **मत्स्थानि सर्व भूतानि** ।।BG – 09.04।।
ईश्वर दृष्टि से सृष्टि नहीं है → अत: सृष्टि नहीं है → **न च मत्स्थानि सर्व भूतानि** ।।BG – 09.05।।
अत: सृष्टि है भी और नहीं भी है इसलिये प्रकृति को **अनिर्वचनीय** कहा है।

V 09 To V 14

संजय उवाच – भगवान् को **महायोगेश्वर** कहा – सर्व योग जिसके हाथ में है तथा **हरि:** कहा अर्थात् जो प्रारब्ध चुरा लेते हैं – हरति दु:खम्, हरति पापम्, हरति अज्ञानम्। अर्जुन द्वारा विराट के दर्शन की इच्छा होने पर भगवान् (महात्मा) ने उसे अपने ही शरीर में पृथक पृथक रूप से विभक्त जगत को दिखा दिया, सम्पूर्ण जगत एक में स्थित है। जब ज्ञान में **'मैं जानने वाला'** तथा **'यह जाना जाने वाला'** ऐसा भेद न रहे तो यह शुद्ध ज्ञान ही **अनुभव** कहलाता है अर्थात् द्रष्टा-दृश्य दोनों परमात्मा अथवा आत्मा हैं। भगवान् के विराट्-रूप दर्शन में स्वयं को भी देखते हुए अर्जुन को यही मालूम नहीं पड़ा कि वह विराट् से पृथक है अथवा इस विराट् के साथ एक है जिससे अर्जुन के हृदय में आश्चर्य रूप अद्भुत रस उत्पन्न हुआ और उसने शिरसा प्रणाम कर पुन: पुन: नमन किया।

अर्जुन द्वारा विश्व रूप दर्शन का कथन

V 15 To V 31

अर्जुन उवाच – अर्जुन को भगवान ने अपना जो - जो रूप दिखाया उन रूपों को देखकर अर्जुन उनकी व्याख्या करते हैं :— समस्त देव सृष्टि, समस्त भूत विशेष, ब्रह्माजी एवं अनेक जातियों के उरग (सर्प), अनेक बाहु, उदर, मुख व नेत्र देख रहा हूँ। आप अनादि अनंत हैं, किरीट, गदाधारी, चक्रधारी हैं, दुर्निरीक्ष्य हैं, अक्षर हैं, परं ब्रह्म हैं, परं निधान हैं, शाश्वत्धर्मगोप्ता हैं, सूर्य-चन्द्र आपके नेत्र हैं, आपका आदि मध्य अन्त नहीं, आपसे समस्त दिशायें परिपूर्ण हैं। आपके उग्र-रूप को देखकर तीनों लोक भयभीत हो रहे हैं।

* **सक्रिय विश्वरूप दर्शन** – सभी आपके मुख में दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं, सिद्ध समुदाय स्वस्ति वचन से आपकी स्तुति कर रहे हैं * **अलौकिक रूप दर्शन** – 11 रुद्र, 12 आदित्य, 8 वसु, 2 अश्विनी कुमार, 49 मरुत गण, पितृगण, गन्धर्व, यक्ष, असुर तथा सिद्ध संघ आपको आश्चर्य युक्त होकर देख रहा है * **विकराल रूप दर्शन** – जिसे देखकर व्यथा का वर्णन * **मृत्यु रूप दर्शन** * **मुख में प्रवेश के दृष्टान्त** – जैसे नदियाँ वेग से समुद्र में प्रवेश करती हैं तथा पतंगे दीप शिखा में प्रवेश करते हैं। V-31 में अर्जुन पूछते हैं - हे भयंकर उग्ररूप वाले आप कौन हैं? आप 'सृजन अथवा संहार' क्या करने को उद्यत हैं?

विश्वरूप का रहस्य

यदि हम इस शरीर को देखें तो यह शरीर विश्वरूप का ही प्रारूप अथवा नमूना है, जैसे इस शरीर में है वैसे ही समूचे ब्रह्माण्ड में है – **'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'**। जिस प्रकार चमड़े से ढके रहने के कारण शरीर ऊपर से देखने में तो सुन्दर लगता है लेकिन भीतर शिराएं हैं, मॉस है, वसा-चर्बी है, वायु भी चलती है, मल-मूत्र हैं, कोटि-कोटि कीटाणु हैं (कोई रोग के, कोई आरोग्य के)। कोई सद्भाव का स्थान है जैसे सिर का अगला भाग, कोई दुर्भाव का स्थान है जैसे सिर का पिछला भाग। शरीर में असंख्य कोशिकाएं होती हैं जो प्रतिदिन पैदा होती और मरती हैं। यदि हम शरीर को ठीक ठीक जॉच लें तो विश्व-विराट का ज्ञान हो जायेगा। परन्तु मनुष्य स्त्री, पुरुष, पुत्र, धन, सम्बन्धों व पद-प्रतिष्ठा में इतना व्यस्त है कि जॉचता ही नहीं, स्वयं को खो देता है।

विश्वरूप का रहस्य यही है कि जो कुछ हुआ है, हो रहा है, आगे होगा सब भगवान के शरीर में है। उसमें अच्छा - अच्छा कह कर राग करने की अथवा बुरा - बुरा कह कर द्वेष करने की आवश्यकता नहीं है। शरीर तो अत्यन्त अपवित्र है, इससे जो भी निकलता है जैसे केश, नाखून, थूक, खॅखार, मल-मूत्र सभी अपवित्र हैं – इसे लेकर अभिमान कैसा? इस संसार में मन को व्यग्र

व उद्विग्न न करो, सहज भाव से रहो। जन्म-मृत्यु को भी सहज भाव से देखो। यह केवल दर्शन-अदर्शन रूप हैं।

अदर्शनम् – (1) न दीखने का नाम – **नाश**
(2) दुनिया को भूल जाने का नाम – **मृत्यु**
दर्शनम् – (1) दीखने का नाम – **उत्पत्ति**
(2) शरीर को मैं मानने का नाम – **जन्म**

V 32 To V 34

श्रीभगवानुवाच – एक विश्व है जो सच्चिदानंद ब्रह्म के एक अंश में स्फुरित-स्पंदित होता है, उस विश्व में हम सब हैं। विश्व एकरूप होते हुए भी बहुरूप है अर्थात् निज कर्मों व उपासना के अनुसार एक विश्व ही प्राणियों को मधुर-रूप, दिव्य-रूप, कठोर-रूप, उग्र-रूप व वीभत्स-रूप में अर्थात् अनुकूल-प्रतिकूल व अलौकिक दिखाई देता है। विश्वरूप परमात्मा ही प्राणियों को महादशा, अन्तर्दशा व उग्रदशा के रूप में उपलब्ध होता है। भक्त ऐसा मानता है कि सभी रूप परमात्मा के हैं परन्तु उग्र परिस्थितियों में व्यथित होकर भगवान् से प्रार्थना करता है कि उग्र-रूप को शान्त करके मधुर-रूप दिखावें तथा हमारा मनोबल बढ़ावें। ज्ञानी ऐसा जानता है कि परमात्मा तो एक, अद्वय, अखण्ड चिन्मय सत्ता है तथा जीव, जगत, ईश्वर सब माया जनित आविद्यक हैं। यही पारमार्थिक सत्य है – **अजातवाद**।

V 32 **श्रीभगवानुवाच** – मैं लोकों का क्षय करने के लिये प्रवृद्ध, बढ़ा हुआ काल हूँ तथा लोकों के संहार के लिये प्रवृत्त हूँ। तेरे युद्ध न करने पर भी प्रतिपक्षी सेना के योद्धा नहीं रहेंगे अर्थात् इन सबका नाश हो जायेगा। भगवान् चिन्मय सत्ता हैं, उनका प्रभाव काल है तथा उसी काल में चिन्मय आश्रित कर्म 'फल' रूप में परिणित होते हैं। न भगवान् मारते हैं और न जीव मारता है, अत: मरने का हेतु अथवा किसी भी भोग का हेतु निज-कर्म एवं भगवान् का प्रभाव काल है जो फल बनता है।

V 33 & V 34 **भगवान के ५ आदेश** :— हे अर्जुन!
1- **उत्तिष्ठ** – उठो,
2- **यशो लभस्व** – यश प्राप्त करो,
3- **जित्वा शत्रून्** – शत्रु पर विजय प्राप्त करो,
4- **भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम्** – समृद्ध राज्य का भोग करो,
5- **निमित्त मात्रं भव** – तू केवल निमित्त मात्र बन जा।
भगवान ने कहा चारों शूरवीर 'भीष्म, द्रोण, कर्ण, जयद्रथ' तथा और भी बहुत से शूरवीर मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं अत: तू केवल निमित्त मात्र बन, भय मत कर, नि:संदेह तू युद्ध में वैरियों को जीतेगा, इसलिये युद्ध कर।

V 35 **संजय उवाच** – इन वचनों को सुनकर अर्जुन गद्गद् होकर पुन:.पुन: प्रणाम करता है।

V 36 To V 46
विश्वरूप दर्शन से अर्जुन का अपने शरीर में जो **'मैं'** पन का अभिमान था वह टूट गया तथा वह भगवान् को नमस्कार करके बोला —

अर्जुन उवाच – आपके नाम के संकीर्तन से सत्कर्मी भक्त हर्ष व अनुराग को प्राप्त होता है, आपका नाम साक्षात् चिन्तामणि है। नाम व नामी में कोई भेद नहीं है।
(1) **कीर्तिदा** एवं (2) **यशोदा** दोनों कथा के नाम हैं – इनसे ही क्रमश: आराधना वृत्ति **'राधा'** व परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण **'चेतन वृत्ति'** के रूप में हृदय में उत्पन्न होते हैं। दोनों का अनादि नित्य सम्बन्ध है तथा ये दोनों प्रहर्ष-रूप श्रीकृष्ण व अनुराग-रूपा श्रीराधा जी हृदय में भगवान् के प्रकीर्तन से आते हैं।

हे भगवन् ! आप ही एकमात्र उचित विषय हैं, आप ही सत्कर्मी के लिये हर्ष का विषय, दुष्कर्मी के लिये कालरूप-दण्डरूप तथा साधकों के लिये समर्पण का हेतु हैं। आपकी महिमा को जानकर कौन नमन नहीं करेगा? आप ही आदिदेव हैं, पुरुष हैं, पुराण-सनातन हैं, परं निधान हैं। आप ही जाानने वाले हैं, आप ही जानने योग्य हैं, आप से ही समस्त जगत व्याप्त हैं। आप ही वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, कश्यपादि प्रजापति एवं ब्रह्माजी के भी पिता-प्रपितामह हैं। आप अनंत वीर्य व अमित विक्रम हैं। मैंने मूढ़ता से, प्रमाद से, अज्ञानतावश आपकी अवज्ञा व परिहास किया है, हे अच्युत्! मैं आपसे अपने सभी अपराध क्षमा करवाता हूँ। आप पिता ही नहीं अत्यन्त पूजनीय भी हैं। आपके समान इस त्रिलोकी में और कोई नहीं है। जैसे पिता पुत्र के, मित्र मित्र के, पति प्रिया का अपराध क्षमा करता है वैसे ही आपका मुझे क्षमा करना उचित ही है। हे जगन्निवास! मैं आपके इस उग्र रूप से भयभीत हो रहा हूँ अत: मुझे अपना सौम्य रूप जो मेरा मित्र है वह दिखाइये। मैं पुन: आपका वासुदेव पुत्र **'चतुर्भुज रूप'** देखना चाहता हूँ, आप उसी सौम्य रूप में स्थित होइए।

V 47 To V 49

श्रीभगवानुवाच - हे अर्जुन! मैं तुझसे प्रसन्न हूँ। तत्त्वत: तो मैं निष्क्रिय चेतन सत्ता हूँ, अव्यवहार्य हूँ परन्तु तेरी भक्ति की अपेक्षा व अनुग्रह बुद्धि से युक्त मुझ परमेश्वर ने अपने आत्म-योग अर्थात् ऐश्वर्य शक्ति की सामर्थ्य से यह परम तेजोमय विश्वरूप तुझे दिखाया है यह अद्भुत रूप तेरे अतिरिक्त पहले किसी और ने नहीं देखा है। यह रूप न वेद पाठ से, न यज्ञों के सम्पादन से, न दान से तथा न उग्र तपों से ही देखा जा सकता है। मेरे इस घोर रूप को देखकर तू भयभीत न हो, तू पुन: अपना इष्ट रूप देख एवं अपना **चतुर्भुज रूप** दिखाया।

V 50 **संजय उवाच** – तत्पश्चात् भगवान ने भयभीत अर्जुन को आश्वस्त कर पुन: अपना सौम्य **'द्विभुज कृष्ण'** रूप दिखाया।

V 51 **अर्जुन उवाच** – हे जनार्दन! अब मैं आपको सखा रूप में देखकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त हुआ हूँ।

V 52 To V 55

श्रीभगवानुवाच

*** विश्वरूप दर्शन की दुर्लभता एवं प्रभाव का कथन – महिमा गान ***

V 52 मेरे जिस विश्वरूप का दर्शन तूने किया है वह सुदुर्दशम् है अर्थात् ऐसा दर्शन होना अत्यन्त ही कठिन व दुर्लभ है, देवतागण भी इस रूप के दर्शन की आकॉक्षा करते हैं।

V 53 मेरे इस विश्वरूप को न तो वेदों के पारायण से, न तप से, न गौ-भूमि-स्वर्ण दान से और

न ही यजन-पूजन से देखा जा सकता है। जीव को संकीर्णता का त्याग कर विराट से जुड़ना ही साधना है।

- देह → परिवार → संस्था → समाज → नगर → प्रान्त → राष्ट्र → विश्व विराट

इस मायामय नामरूप जगत में जिसमें अनेक गुण व दोष हैं, धर्ममय व्यवहार करते हुए यह प्रमा बनी रहे कि यह जगत ब्रह्म का विवर्त एवं माया का परिणाम है। वही संत है जो तत्त्वग्राही है। साधक **'व्यक्ति-उन्मुख'** नहीं अपितु **'विराट-परमात्मानुमुखी'** होता है। **'सर्व नामरूप परमात्मा ही हैं'** – जो ऐसी भावना करता है वह **भक्त** है तथा **'सर्व नामरूप मिथ्या हैं'** एक परमात्मा ही इस रूप में दीख रहा है – यह **ज्ञानी** है।

*** भगवान् के ज्ञान का, दर्शन का व उनमें प्रवेश करने का हेतु क्या है? ***

V 54 **ज्ञातुं** – हे अर्जुन! हे परन्तप! अनन्य भक्ति द्वारा विश्वरूप परमेश्वर का **परोक्ष ज्ञान** अर्थात् शास्त्रों द्वारा जानना शक्य है।
द्रष्टुं – साक्षात् **अपरोक्ष ज्ञान** स्वयं आत्म रूप **(द्रष्टा साक्षी रूप)** में देखा जा सकता है।
तत्त्वेन प्रवेष्टुं – यह प्रवेश तत्त्वत: है, ज्ञान से जीवत्व भंग हुआ, **स्वयं को ब्रह्म जाना**।
अत: अनन्य भक्ति से ज्ञातु, द्रष्टुं व प्रवेष्टुं शक्य है।

प्रवेश 2 प्रकार से है —

1- उपासना से भावना जनित प्रवेश – **विराट में**
2- ज्ञान से तत्त्वत: प्रवेश – **ब्रह्म में**

*** अनन्य भक्ति को बढ़ाने के लिये साधना ***

1- भक्त की दृष्टि – **भगवद: अन्यत्र पृथग् न कदाचिद् -**
(भक्ति निष्ठा रूप) (भगवान् के अतिरिक्त और कुछ नहीं - ऐसी भावना)
1- भगवान् से मुख्य सम्बन्ध
2- अन्य सबसे से गौण सम्बन्ध

2- ज्ञानी की दृष्टि – **सर्वं अपि करणै: वासुदेवाद् अन्यत्र न उपलभ्यते**
(ज्ञान रूपी प्रमा) (भगवान् के अतिरिक्त और कुछ नहीं - ऐसा ज्ञान)

V 55 अत: हे पाण्डव! जो पुरुष/भक्त :—

मत्कर्मकृत् – मेरे लिये सेवक भाव से कर्तव्य कर्म के पुष्प मेरे चरणों में अर्पित करता है।

मत्परम: – मेरे ही परायण होकर मुझमें ही परम गति वाला हो, जिसे मेरा ही वरण हो व मुझ पर ही निर्भर हो।

मद्भक्त: – अपनी समस्त भावनाओं का केन्द्र मुझे ही बनावे, मुझसे मुख्य सम्बन्ध हो–**'मनहिं सबहिं राम के नाते'**, बाकी सबसे गौण सम्बन्ध होवे

संगविवर्जित: – प्रिय में राग रहित हो, धन-पुत्र-मित्र-स्त्री एवं बन्धु वर्ग में जिसकी प्रीति न हो, बस कर्तव्य पूर्ति होवे।

निर्वैर: – सर्वभूतों में वैर रहित–द्वेष रहित होवे, अधर्म का प्रतिकार हो परन्तु अनिष्ट करने वालों के प्रति द्वेष न होवे।

ऐसा अनन्य भक्ति से युक्त भक्त मुझे ही प्राप्त होता है – **स माम् एति**। इस अध्याय का पर्यावसान भक्ति में हुआ है।

उपसंहार

विश्वरूप का अर्थ है – वही प्रेरक है, वही कर्ता है, वही वक्ता है, वही श्रोता है, एक ही परमात्मा भरपूर हो रहा है। वही सारथि रूप से द्विभुज कृष्ण है, वही चतुर्भुज रूप से विष्णु है, वही विश्वरूप है और वही सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म हमारी आत्मा है।

- **ब्रह्म-आत्मा ऐक्यम् = अयमात्मा ब्रह्म** – हमारा तुम्हारा जो स्वरूप है **आत्मा** वह **ब्रह्म** है, **सोऽयमात्मा** – यह जो **ब्रह्म** है वह हमारा तुम्हारा स्वरूप **आत्मा** ही है।

- **जीव, जगत, ईश्वर सब परमात्मा, ब्रह्म ही है।**

।। इति ।।

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-11	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
2	कमल पत्राक्ष	कमल पुष्प की पंखुड़ी के सदृश नयन वाले
3	परमेश्वर	परम ईश्वर अर्थात् भगवान
3	पुरुषोत्तम	सर्वोत्तम पुरुष अर्थात् ब्रह्म
4, 9	योगेश्वर	बिना योग कराये योग का फल देने वाले
15	हे देव!	भगवान् का ज्योतिर्मय स्वरूप
16	विश्वेश्वर	सम्पूर्ण विश्व के स्वामी
16	विश्वरूप	भगवान् का सगुण-साकार रूप
20	महात्मन्	अक्षुद्र चित्त वाले महान् आत्मा
23	महाबाहो	महा बलशाली
24, 30	हे विष्णो!	सर्वव्यापी, व्यापक ब्रह्म
25, 37, 45	हे देवेश!	देवों के ईश्वर
25, 37, 45	हे जगन्निवास!	सम्पूर्ण जगत के आधार-अधिष्ठान
36	हृषीकेश	अन्तर्यामी
37	अक्षरं परं	सच्चिदानन्द
38	हे अनन्तरूप !	सर्वत्र व्यापी – सर्व रूप
40	हे अनन्तवीर्य !	अनन्त सामर्थ्यवान्
41	हे कृष्ण !	श्याम वर्ण, हृदय को आकर्षित करने वाले, विष्णु के आठवें अवतार
41	हे यादव !	हे यदुवंशी!
41	हे सखेति !	हे सखे!
46	विश्वमूर्ते	भगवान् का सगुण-साकार रूप
46	सहस्त्रबाहो	सहस्त्र भुजाओं वाले
51	जनार्दन	जन्म-मृत्यु की पीड़ा से मुक्त करने वाले, असुरों का वध करने वाले

Verse No.	Chapter-11	अर्जुन के सम्बोधन
5	पार्थ	केवल परमात्मा को चाहने वाला, प्रथनशील – विस्तार को प्राप्त होने वाला, कीर्तिवान्, सूक्ष्म बुद्धि वाला
6	भारत	ज्ञान में रति/प्रीति रखने वाला, महाराज भरत का वंशज
7	गुडाकेश	घुँघराले बाल, निद्रा पर विजय प्राप्त करने वाला
13, 55	पाण्डव	धवल अन्त:करण वाला
14	धनंजय	प्रदीप्त ज्ञानाग्नि, राजसूययज्ञ में विजय एवं अपार धन प्राप्त करने वाला
47, 54	अर्जुन	असीम् पुण्यों को अर्जित करने वाला, सरल स्वभाव वाला
54	परन्तप	शत्रु को तपाने वाला

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
55	8	33	14

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

भक्तियोगो नाम

द्वादशोऽध्यायः

(20 श्लोक)

प्रस्तावना

7वें से 11वें अध्याय तक 'तत् पद्' अर्थात् परमात्मा के निर्गुण-निराकार व सगुण-साकार दोनों रूपों का वर्णन हुआ है।

V 01 & 02 अर्जुन का प्रश्न

निर्गुण-निराकार व सगुण-साकार उपासकों में से योगवित्तम अर्थात् किसकी साधना श्रेष्ठ है? अर्जुन ने पंचमोऽध्यायः में भी इसी प्रकार पूछा था कि मेरे लिये कर्मसंन्यास व कर्मयोग में कौन कल्याणकारी, सुगम व श्रेष्ठ है?

योगवित्तम - योग अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति का उपाय। उस योग को जो जाने वह **योगविद्** एवं जो जानने वालों में जो श्रेष्ठ हो वह **योगवित्तम** कहलाता है।

सगुणोपासक - जो विश्व-विराट रूप, चतुर्भुज नारायण रूप, द्विभुज कृष्ण रूप, बाल गोपाल, द्वारकाधीश, बाँके बिहारी, नाथद्वारा आदि रूप की उपासना करता है।

किस प्रकार करता है - **'सतत युक्ता व नित्य युक्ता'** – जिसे सर्व देश, सर्व काल व सर्व विषय में केवल भगवान् का ही स्मरण रहता है कि सर्वरूप परमात्मा ही है, जिसे भगवान् से ही प्रेम है और जो भगवान् की ही प्रसन्नता के लिये सर्वकर्म करता है।

भक्त के लक्षण -
- **मत्कर्मकृत्** - मेरे लिये ही कर्म करने वाला
- **मत्परमः** - मेरे ही आश्रय वाला, मुझे ही सर्वोत्तम व सर्वश्रेष्ठ मानने वाला
- **संगविवर्जितः**- संसार में किसी से आसक्ति नहीं
- **निर्वैरः** - संसार में किसी से वैर नहीं

संसार के व्यवहार में - **'नदी-नाव संयोग',** संसार में सबसे कार्मिक सम्बन्ध, भगवान् से मुख्य सम्बन्ध, बाकी सबसे गौंण सम्बन्ध **– 'मनियत सबहीं राम के नाते'**।

मय्यावेश्य - जिसने अपने मन को इस शरीर से हटाकर विराट रूप अथवा चतुर्भुज रूप में आविष्ट कर दिया है।

श्रद्धया परयोपेताः - जिसकी भगवान् में अखण्ड श्रद्धा है - ऐसा भक्त सर्व देश में, सर्व काल में, सर्व कर्म व सर्व भोग करते हुए मुझसे ही जुड़ा हुआ है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्,
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।। BG - 09.27 ।।

यह भक्त युक्ततम अर्थात् सर्वोच्च भक्त है ऐसा मेरा मत है। यह तो मुरलीमनोहर हो गया, अन्तर्यामी नारायण हो गया, विराट हो गया क्योंकि इसने अपना मन मुझमें डाल दिया है। ये सगुणोपासक **'अपर' ब्रह्मनिष्ठ** है। इन भक्तों में ही **'परं' ब्रह्म** को जानने की जिज्ञासा का उदय होता है। अब इनकी जिज्ञासा का विषय **'अक्षर ब्रह्म'** है।

V 03 निर्गुण अक्षरोपासक

यदि पहले सगुण-साकार की उपासना की जाये तो निर्गुण-निराकार की उपासना सुगम हो जाती है। तुलसीदासजी ने कहा है —

भरि लोचन विलोकि अवधेसा,
तब कहिहौं निर्गुण उपदेसा।।

निर्गुण सगुण का भेद – * सगुण उपासना करने में सुगम
* निर्गुण उपासना करने में अधिक क्लेश

- निर्गुण चुपचाप अकेला बैठा है, किसी को अपनी ओर बुलाता नहीं।
- सगुण अपने गुण प्रकट करके नाचकर, गाकर, सम्बन्ध जोड़कर अपने भक्तों को अपनी ओर खींच लेता है अत: सगुण उपासना सरल है।

*** निर्गुण अक्षरोपासक की यात्रा, लक्षण, रहनी एवं फल ***

यात्रा – निर्गुण उपासक नामरूप प्रपंच से विरक्त होकर अक्षर ब्रह्म की जिज्ञासा करके श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं के पास जाकर वेदान्त का श्रवण-मनन-निदिध्यासन करते हैं। एवं स्वयं आवरण भंग करके परमात्मा से एक हो जाते हैं।

पर्युपासते – (1) निर्गुण निराकार को उपास्य बनाकर ओ३म् अक्षर का जप व ओ३म् के अर्थ का चिन्तन, यहाँ ओम् से अक्षरब्रह्म की उपासना बताई है।
(2) 8 लक्षणों से लक्षित अक्षरब्रह्म का तैलधारावत् चिन्तन – सजातीय प्रवृत्ति - विजातीय तिरस्कृति (संसार चिन्तन नहीं)।

चिन्तन का विषय –

1 **अक्षर** – 'न क्षरति' अर्थात् ब्रह्म
2 **अनिर्देश्यम्** – प्रमाण का विषय नहीं है अत: निर्देश सम्भव नहीं। स्वयं रूप में **'मैं'** रूप से जाना जाता है।
3 **अव्यक्त** – द्रष्टा अव्यक्त है परन्तु **'मैं'** रूप से जाना जाता है।
4 **सर्वत्रगम्** – सर्वव्यापी है।
5 **अचिन्त्य** – अव्यक्त होने से बुद्धि के चिन्तन का विषय नहीं अपितु मन-बुद्धि के चिन्तन को देखने वाला है।
6 **कूटस्थ** – निहाई की भाँति कुछ न करता हुआ स्थित – अविकम्प।
7 **अचलं** – पर्वत की भाँति अचल, एक जगह से दूसरी जगह नहीं जाता।
8 **ध्रुवं** – नित्य, काल में परिवर्तित नहीं होता।

V 04 लक्षण और रहनी –

1 **सम्यक व्यवहार** – सर्व इन्द्रियों का सम्यक नियमन,
देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण सब अनुशासित एवं बन्धु रूप।

2 **धीर बुद्धि** – सर्वत्र समबुद्धि,
सर्वकाल में, इष्ट-अनिष्ट प्राप्ति में बुद्धि सम रहती है। सुख में हर्ष नहीं, दु:ख में व्यथित नहीं।

3 **कोमल चित्त** – सर्व भूत हिते रता:,
अनासक्त, परन्तु कोमल भाव से सबकी सेवा।

फल – जो उपासक इन लक्षणों से युक्त अक्षर ब्रह्म की उपासना करते हैं ऐसे जिज्ञासु भक्त ही ज्ञानी बनते हैं और ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही हैं अत: वे मुझे ही प्राप्त होते हैं।

V 05 अक्षर उपासना में क्लेश अधिक क्यों?

निर्गुण उपासना में अनुशासन, मर्यादा, असुविधा व असुरक्षा अधिक होने से कठिन है तथा प्रबल देहाभिमान होने से क्लेश अधिक होता है अत: इसके लिये विवेक, वैराग्य और षट्क सम्पदा होना अति आवश्यक है। यही निर्गुण उपासना जब सगुण उपासना के बाद की जाती है तो देहाभिमान के गलित हो जाने से सरल हो जाती है।

V 06 & 07 भक्ति की सुगमता

1. विशेष कर्म की अपेक्षा नहीं
2. कर्म सम्बन्धी नियम नहीं
3. अधिकारी भेद नहीं

सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य – संन्यस्य = मेरे प्रति, जो अपने सर्व कर्म मेरे सामने रख देता है चाहे पाप हों अथवा पुण्य, कुछ भी नहीं छिपाता। यदि भगवान् के हाथ से दण्ड भी मिलेगा तो भी बहुत अच्छा क्योंकि पाप से भी छुड़ाने वाले भगवान् ही हैं।

जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये,
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये।।

मत्पर: – जिसका मुझ भगवान् पर परम विश्वास है, जो मुझे ही सर्वश्रेष्ठ मानता है व जिसे मेरे बल पर ही विश्वास है अपने बल पर नहीं। यदि हम अपने कर्म से पार उतरेंगे तो आप करतार कैसे?

अनन्येनैव योगेन –
- अन्य अर्थात् संसार का त्याग
- केवल इष्ट से अनन्य रूप से जुड़ना

ऐसा भक्त ईश्वर से केवल ईश्वर को चाहता है अन्य कुछ नहीं। ऐसा विश्वास कि हममें साधन व उपाय करने की सामर्थ्य नहीं है अत: आप ही आकर हमें अपने से मिला दो।

मां ध्यायन्त: उपासते – मेरे पास बैठकर मेरा चिन्तन उतने ही मनोयोग से करे जैसे लोभी धन का तथा कामी नारी का चिन्तन करता है।

फल – ऐसा भक्त जो मृत्यु रूप संसार सागर में डूब रहा है उसको आकर भगवान् स्वयं उठा लेते हैं, वे समुद्धर्ता बनते हैं।

समुद्धर्ता – जो संसार से ज़बरदस्ती हरण करता है।
कैसे – अत्यन्त शीघ्रता से।

किसका – जो **मय्यावेशितचेतसाम्** है – जिसने अपना मन बुद्धि अर्थात् चित्त भगवान् में मिला दिया है, अपनी कोई मर्ज़ी नहीं - **'जो थारी राय सो म्हारी राय'**।

V 08 **अब भगवान् सर्वकर्म समर्पण एवं अनन्य भाव को सरल करके बताते हैं।**

वह ऐसी कौन सी दो चीजें हैं जो आत्मा और परमात्मा के बीच में आकर खड़ी हो जाती हैं जिसके कारण आत्मा अपने को परमात्मा से अभिन्न अनुभव नहीं करता, वह हैं – (1) **मन** (2) **बुद्धि** — इन दोनों का समर्पण कैसे करें?

1 पहले नम्बर की बात – 'श्रवण-मनन', फल → 'ऊर्ध्व गति'

- **'मन - बुद्धि'** स्वत: ही ब्रहम चिन्तन में लगती है।
- मन प्रेम रूप है, वह कोई पृथक तत्त्व नहीं है। मन जिस विषय का चिन्तन करता है उसी विषय का आकार धारण कर लेता है।

मय्येव मन आधत्स्व – अर्थात् मुझे पहचानो – **मयि सर्व मिदं प्रोतं .....।। BG - 07.07।।**

1- या तो सर्वरूप में भगवान् हैं – विश्व-विराट (इसमें कामी, क्रोधी, लोभी, ऋषि, मुनि सब हैं)

2- या तो अपनी आत्मा हैं भगवान् – (अत: आप सदैव भगवान् में स्थित हैं)

मुझे पहचानो और मुझमें अपने मन को रख दो अथवा मेरे विराट रूप में अपने मन को रख दो अन्यथा मन का अपहरण हो जाता है।

मयि बुद्धिं निवेशय –

1. बुद्धि के उत्पत्ति स्थान और प्रेरक भी भगवान् हैं अत: बुद्धि से भगवान् का ही चिन्तन करो, इस जड़ संसार का नहीं।
2. आपकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण हो कि आप प्रत्येक रूप में परमात्मा को ढूँढ लें।
3. परमात्मा की बुद्धि व मन में अपनी बुद्धि व मन को मिला दो – वो जो करते हैं वह ठीक है, हमारे मन में सहिष्णुता लाने के लिये दु:ख भेजते हैं तथा उल्लास लाने के लिये सुख भेजते हैं।

फल – इस प्रकार मन और बुद्धि को हृदय में स्थित अन्तर्यामी में डालकर निश्चिन्त हो जाओ, तुम मुझमें ही निवास करोगे इसमें कोई संशय नहीं। भगवान् कहते हैं कि तुम तो सदैव से ही मुझमें निवास करते हो बस ये मन-बुद्धि ही तुम्हें खींचकर संसार में ले जाते हैं, तुम्हारी दृष्टि मुझ पर जाती ही नहीं। अत: यहॉ दो निर्देश हैं, यह भगवान् पर पूर्ण निर्भरता से ही सम्भव है :—

1. मन–बुद्धि को भगवान् में अर्पित कर दो।
2. अर्पण के समकाल ही भगवान् में निवास करो।

V 09

2 दूसरे नम्बर की बात – 'ध्यान योग', फल → 'मन - बुद्धि' की एकाग्रता

अब यदि तुम अपने मन और बुद्धि का मुझमें समाधान नहीं कर सकते अर्थात् अपनी मन-बुद्धि को मुझमें सदैव नहीं रख सकते तो 2 निर्देश हैं —

a) **अभ्यास योग करो –** मन-बुद्धि को बार बार मुझमें लगाओ अर्थात् समर्पण का अभ्यास करो। यह मन मेरा नहीं भगवान् का है, यह बुद्धि मेरी नहीं भगवान् की है, यह मन-बुद्धि अल्पज्ञ-अल्पशक्तिमान की नहीं अपितु सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान की

है। व्यर्थ ही मैं इस मन-बुद्धि को अपना माने बैठा हूँ, जिसका सब कुछ है उसी की है यह मन-बुद्धि।

अभ्यास – नाम जप, रूप ध्यान, गुण चिन्तन, लीला श्रवण, धाम ध्यान।

b) **भगवान् का वरण करो –** भगवान् को प्राप्त करने की इच्छा।

V 10

3 तीसरे नम्बर की बात – 'कर्म योग', फल → 'अन्त:करण शुद्धि'

भगवान् कहते हैं कि यदि मन-बुद्धि के समर्पण का अभ्यास नहीं बनता तो मेरे लिये कर्म करने वाला बनो, सर्व कर्म मेरे लिये करो (यह साधना कर्म करने से पहले की है अत: कर्म से पहले संकल्प)।

कर्मयोग का स्वरूप –

- भगवान् की आज्ञानुसार कर्मासक्ति-फलासक्ति त्याग कर सेवा रूप से भगवान् के लिये कर्म करना।
- भगवान् की प्रीति कि लिये कर्म करना।
- स्वयं को भगवान् का सेवक मानना।
- फल को प्रसाद बुद्धि से ग्रहण करो, (**फल – सिद्धि की प्राप्ति** अर्थात् **अन्त:करण शुद्धि**)

V 11

4 चौथे नम्बर की बात – 'कर्म फल त्याग', फल → 'अन्त:करण शान्ति'

यदि कर्म करने से पहले यह संकल्प याद नहीं रहता कि मैं यह कर्म भगवान् के लिये कर रहा हूँ तो कर्म करने के बाद उसका फल भगवान् को समर्पित कर दो। भगवान् कहते हैं उस फल को अपनी और मत खींचो, मेरी ओर आने दो – **सर्वकर्मफलत्याागम्**। यदि आप फल न चाहकर संयम पूर्वक कर्तव्य कर्म करेंगे तो आपका अन्त:करण निष्काम अर्थात् शुद्ध हो जायेगा। अत: **यतात्मवान्** (सर्व इन्द्रियों को वश में करके) होकर सर्वकर्मफलत्याग करो। फल बुद्धि को प्रसाद बुद्धि में बदलना **'सर्वकर्मफलत्याग'** है। अनुकूल व प्रतिकूल दोनों फलों के लिये स्वीकृति सामर्थ्य होनी चाहिये।

- सुख रूपी फल के भोग से – कृतज्ञता बोध व विनय बढ़े।
- दु:ख रूपी फल के भोग से – तितीक्षा (सहनशीलता) व पाप क्षयं बोध बढ़े।

चार प्रकार से कर्म करो

1. नि:स्वार्थ भाव से कर्तव्य कर्म करें – (फल की इच्छा त्याग कर)
2. अन्त:करण शुद्धि के लिये सत्कर्म करें – (कर्मासक्ति त्याग कर)
3. भगवान् की प्रसन्नता के लिये कर्म करें (भगवत् प्रीत्यर्थ) – (कर्मासक्ति-फलासक्ति त्याग कर)
4. जिज्ञासा के लिये कर्म करें – (चतुष्ट्य साधन के लिये षट्क सम्पदा अर्जित करके)

V 12 श्रेयता के तारतम्य से

भगवान् ने कहा कि चौथे नम्बर की बात 'सर्वकर्मफलत्यागम्' सबके लिये सुगम है तथा इसका फल हृदय में तुरन्त शान्ति देने वाला है अत: इसकी स्तुति करते हैं।

a) **अभ्यास** – ज्ञान-रहित (बिना जाने) अभ्यास।

b) **ज्ञान –** ज्ञान-रहित अभ्यास की अपेक्षा ज्ञान-युक्त (ज्ञान सहित) अभ्यास श्रेष्ठ है।

c) **ध्यान –** चिन्तन करके उसका रहस्य समझ लें, किसी को जानना एक बात है और उसके ध्यान में तदाकार हो जाना दूसरी बात है अत: केवल ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है।

d) **कर्मफलत्यागम् –** ध्यान से कर्मफल त्याग श्रेष्ठ है अर्थात् ध्यानरूप कर्म का फल छोड़ दें अथवा सर्वकर्म के फलों का त्याग करें तो इससे भी कर्म तत्काल शान्तिरूप बन जायेगा।

12th अध्याय में	ज्ञानी भक्त के लक्षण बताए हैं	-	**V 13 – V 20**
2nd अध्याय में	कर्म की प्रधानता से स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताए हैं	-	**V 55 – V 72**
13th अध्याय में	जिज्ञासु के लक्षण बताए हैं	-	**V 07 – V 11**
14th अध्याय में	विवेक व ज्ञान की प्रधानता से ज्ञानी पुरुष का वर्णन है	-	**V 19 & V 22**
18th अध्याय में	जो साधक है उसकी प्रधानता से ध्यान-योगी की रहनी बतायी है	-	**V 49 – V 56**

V 13 & 20

अब भगवान् ज्ञानी भक्त के लक्षण बताते हैं और कहते हैं कि ज्ञानी भक्त से मुझे विशेष प्रेम है, वह मुझे अतीव प्रिय है।

V 13

1 **अद्वेष्टा** — जिसमें द्वेष न हो – भगवान् ही विश्व-विराट के रूप में प्रकट हैं अत: किसी से द्वेष न करो। **द्वेष का वंश –** द्वेष का बेटा–**क्रोध**, क्रोध की बेटी–**हिंसा**, हिंसा का बेटा–**विद्रोह**। यदि जीवन में द्वेष आ जाए तो पहले तो व्यक्ति जलता है एवं हृदय में रहने वाले भगवान् को ताप पहुँचता है, दु:ख देता है अत: हमें अपने हृदय में द्वेष को स्थान नहीं देना चाहिये।

2 **मैत्र** — सबसे मैत्री करो, मनुष्य पशु-पक्षी पेड़-पौधे सबके ऊपर प्रेम की वर्षा करो। सुखी के साथ मित्रता करो, उसके सुख में सुखी हो जाओ, द्वेष न करो।

3 **करुण:** — अच्छा काम करने वाले से मैत्री व दु:खी के ऊपर करुणा करो। जो बुरा काम करता है उससे द्वेष न करो तथा दु:खी पर करुणा करो।

4 **निर्मम** — करुणा करो लेकिन ममता करके बँध मत जाओ, मेरा-मेरा मत करो यह दु:ख देता है।

5 **निरहंकार** — 'हमारी तो किसी से ममता नहीं' ऐसा अहंकार न करो। ऐसा मानो कि मैं भगवान् का हूँ तथा सब भगवान् के हैं। बल, बुद्धि, जाति, कुटुम्ब, धन, पद, यश का अहंकार न करो, ये कभी भी साथ छोड़ देते हैं।

6 **सम दु:ख सुख** — जब ममता निवृत्त होती है तब ममता वाला अहंकार निवृत्त होता है तथा उसके बाद यह व्यक्ति सुख-दु:ख में सम होता है अत: ममता को संसार से हटाकर भगवान् में लगाओ। जानो कि सुख-दु:ख देने वाला अन्य कोई नहीं अपितु हमारे प्यारे भगवान् ही हैं।

7 **क्षमी** — कोई अपराध करे तो क्षमा कर दो।

V 14

8 **सन्तुष्ट:** — जो है वही पर्याप्त है, उचित है।

जानकी नाथ सहाय करें जब, कौन बिगाड़ करे नर तेरी।।
जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये,
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये।।

अन्तर्यामी रूप में भगवान् मेरे हृदय में और विश्व के रूप में भगवान् प्रति क्षण हमारी ऑखों के सामने रहते हैं अत: जो सदैव संतुष्ट रहता है, वही भाग्यवान् है, वही सन्त है।

9 **सततं योगी** जो सदैव भगवान् के साथ जुड़े रहते हैं।

10 **यतात्मा** सदैव भगवान् के साथ जुड़े रहने का प्रयास।

11 **दृढ़ निश्चय** यह प्रयास वही करता है जो दृढ़ निश्चय वाला होता है।

12 **मयिअर्पितमनोबुद्धि** जिसने मुझमें मन-बुद्धि अर्पित किया है अर्थात् जो मुझसे ही प्रेम व मेरा ही विचार करता है मेरा वह ज्ञानी भक्त मुझे प्रिय है।

V 15

13 **यस्मान्नोद्विजतेलोको** लोक में न किसी से उद्वेग को प्राप्त होता है न किसी को उद्विग्न करता है क्योंकि यह विश्वरूप के रूप में परमात्मा का दर्शन कर रहा है जो साक्षी से अभिन्न है अत: हम से भगवद् सृष्टि को कोई भय नहीं और हमें भगवद् सृष्टि से कोई भय नहीं।

14 **हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मक्तो** **'हर्ष, अमर्ष, भय, उद्वेग से मुक्त'** – क्योंकि वह भगवान् का भक्त है एवं भगवान् को प्रिय है। भगवान् में भगवान् की भगवन्मयी लीला हो रही है अत: भगवान् से अथवा साक्षी से किसे हर्ष-अमर्ष (असहिष्णुता) भय व उद्वेग प्राप्त होगा। संसार की चीज़ें प्राप्त होने पर **हर्ष वृत्ति** (दर्प) को प्राप्त होता है जो धर्म का उल्लंघन कराता है। ऐसे ही **अमर्ष** से संसार में विमत को सुनने की सामर्थ्य नहीं होती। भय व उद्वेग भी संसार से ही प्राप्त होता है।

V 16

15 **अनपेक्ष:** जो शरीर, इन्द्रिय तथा उनके विषय व अपने सम्बन्धियों से कोई अपेक्षा नहीं रखता, वह तो परमात्म प्रेम से तृप्त है।

16 **शुचि:** 1- **बाह्य शुद्धि** = घर, वस्त्र, धन, अन्न की **कर्म** से व शरीर की **स्नान** से।
2- **अन्त:करण की शुद्धि** = वाणी की शुद्धि **पारायण** व **स्वाध्याय** से, मन की **सत्य** से, जीवात्मा की **तप** से एवं बुद्धि की शुद्धि **ज्ञान** से होती है।

17 **दक्ष** पारंगत व चतुर होता है, असावधानी नहीं होती।

18 **उदासीन** संसार में लोग जिस प्रवाह में बह रहे हैं उनसे ऊपर रहना चाहिये।

19 **गतव्यथ** किसी भी चुनौती का सामना करना चाहिये।

20 **सर्वारम्भपरित्यागी** फल प्राप्ति के लिये विशाल आयोजन का संकल्प न लें – भगवान् कहते हैं कि यह भक्त मुझे प्रिय है।

V 17 परिस्थिति निरपेक्ष जीवन का वर्णन – द्वन्द्व राहित्य जीवन

21 **न हृष्यति** इष्ट प्राप्ति में हर्ष नहीं।

22 **न द्वेष्टि** अनिष्ट प्राप्ति में द्वेष नहीं।

23 **न शोचति** बीते हुए के लिये शोक नहीं।

24 **न कांक्षति** भविष्य के लिये कोई आकांक्षा नहीं।

25 **शुभाशुभपरित्यागी** शुभ-अशुभ जो आता है उसे छोड़ता जा रहा है परन्तु जिसके हृदय में भगवान् का प्रेम है वह भगवान् को प्यारा है।

V 18 **वृत्ति निरपेक्ष जीवन का वर्णन**

भक्त का लक्षण यह है के वह सर्व वृत्तियों को भगवद् रूप देखता है अथवा वृत्ति दृश्य रूप देखता है —

26 **शत्रु-मित्र में सम है** – राग-द्वेष व्यवहार का प्रेरक नहीं।
27 **मान-अपमान में सम है** – बुद्धि के तल पर।
28 **शीत-ऊष्ण में सम है** – शरीर के तल पर।
29 **सुख-दुःख में सम है** – मन के तल पर।

V 19

30 **तुल्य निदा स्तुति** – निंदक-प्रशंसक सभी की जीभ में भगवान् बैठे हैं।
31 **मौनी** – संयत वाक्।
32 **सन्तुष्ट** – शरीर की स्थिति मात्र से सन्तुष्ट, जो मिल जाए उसमें खुश रहो।
33 **अनिकेत** – घर में ममता नहीं, भगवान् ही को घर बनाओ।
34 **स्थिर मति** – बुद्धि को स्थिर रखो।

V 20 **उपसंहार**

भगवान् ने इन 8 श्लोकों का नाम **'धर्म्य अमृत'** रखा। इन धर्मों के पालन से तुम वैसे ही बन जाओगे जैसा इसमें कहा गया है। श्रद्धापूर्वक मेरे परायण होकर इन धर्मों का पालन करो, यही **पर्युपासना** है। ऐसा भक्त मुझे अतीव प्रिय है, उससे मैं अत्यन्त-अत्यन्त प्रेम करता हूँ।। इति ।। —०००—

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-12	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
0	-	-

Verse No.	Chapter-12	अर्जुन के सम्बोधन
9	धनंजय	अग्नि के समान तेजस्वी एवं उत्साह व पौरुष का त्याग न करने वाला

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
20	0	1	19

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम

त्रयोदशोऽध्यायः

(34 श्लोक)

13वॉ अध्याय वेद, उपनिषद, पुराण, इतिहास सबका सार है।

V 01 **क्षेत्र** - (क्षेत्र अर्थात् **'मेरे'**, इन्हें ज्ञान नहीं है)

क्षेत्र शरीर को कहते हैं, इसमें पंचभूत रचित स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीनों शरीर आ जाते हैं। (**स्थूल श०**– नाम-रूप वाला, **सूक्ष्म श०**– 19 तत्त्वों का ज्ञान नेत्र से जाना जाने वाला, **कारण** श०– अपने स्वरूप का अज्ञान रूप, जिससे स्थूल व सूक्ष्म शरीर उत्पन्न होते हैं) ये शरीर खेत के समान हैं, ये क्षण क्षण में क्षीण होते हैं तथा इनमें खेत के समान कर्म रूपी बीज बोने से कर्म फल प्राप्त होते हैं। ये समस्त क्षेत्र माया का कार्य होने से असत्-जड़-दुःख रूप है।

क्षेत्रज्ञ - (**क्षेत्रम्** = क्षेत्र + **ज्ञ** = ज्ञान/जानाति अतः क्षेत्रम् जानाति इति **क्षेत्रज्ञ** अर्थात् **आत्मा** /**जीव** / **'मैं'**) जो इस शरीर के भीतर बैठकर इस शरीर को जानता है, देखता है वह क्षेत्रज्ञ है। क्षेत्रज्ञ किसान के समान है। आत्मा को न जानना (अज्ञान) ही माया है तथा यह संसार अज्ञान जनित है, मायामय है अतः ज्ञान से संसार का बाध होता है।

V 02 **जीवात्मा-ईश्वर की एकता**

भगवान् कहते हैं कि क्षेत्रज्ञ (आत्मा/जीव) रूप से मैं एक परमात्मा ही सब शरीरों में अविभक्त रूप से बैठा हूँ। इस क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विवेक से जो तत्त्व ज्ञान होता है, अपने निर्विकार रूप का ज्ञान होता है वह ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है।

V 03 **प्रतिज्ञा वाक्य**

अब भगवान् विकार सहित क्षेत्र एवं प्रभाव सहित क्षेत्रज्ञ को संक्षेप में बताते हैं।

V 04 जो भी भगवान् बताते हैं उसे श्रुति, युक्ति एवं ऋषियों की अनुभूति से सिद्ध करते हैं। ऐसा होने से क्षेत्रज्ञ (जीव) संशय रहित होकर स्वयं को आत्मा-ब्रह्म जानता है।

V 05 & 06 **क्षेत्र की विकार सहित व्याख्या**

क्षेत्र के विकार – यह क्षेत्र माया रूप है। ब्रह्म से छाया रूप माया का प्रादुर्भाव होता है, इसे ही अव्यक्त कहते हैं ■ अव्यक्त (मूल प्रकृति) → महत्तत्त्व (समष्टि बुद्धि) → अहंतत्त्व (समष्टि मन) → पंचतन्मात्रा → पंच ज्ञानेन्द्रियॉ + पंच कर्मेन्द्रियॉ + मन → पंचविषय = यह 24 क्षेत्र के विकार हैं ■ अतः ईश्वर से सृष्टि के प्रादुर्भाव की प्रक्रिया का ज्ञान ही क्षेत्र का ज्ञान है।

क्षेत्र के धर्म – शरीरों में परस्पर व्यवहार होने से अन्त:करण में जो भाव उत्पन्न होते हैं वे क्षेत्र के धर्म हैं और वह हमारे जानने में आते हैं

1	इच्छा	–	सुख के विषय प्राप्त करने की इच्छा।
2	द्वेष	–	दु:ख के विषयों को न चाहना।
3	सुख	–	प्रसन्नता रूप अनुकूल भावना।
4	दु:ख	–	कष्ट रूप प्रतिकूल भावना।
5	संघात चेतना	–	स्थूल शरीर में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त जो चेतना होती है एवं मृत्यु पर शरीर के क्षय होने पर लुप्त हो जाती है।
6	धृति	–	बुद्धि पूर्वक जो हम अपने जीवन में धारण करते हैं।

जनम-मरण हैं देह के सुख-दु:ख मन के जान,
भूख-प्यास गुण प्राण के साँख्य शास्त्र निर्वाण।।

ये सब धर्म क्षेत्र के हैं। अज्ञानता से क्षेत्रज्ञ इन धर्मो को अपने में मानकर सुखी-दु:खी, पापी-पुण्यात्मा, भूखा-प्यासा, जन्मने-मरने वाला मानता है लेकिन ज्ञान पश्चात् क्षेत्रज्ञ जीव स्वयं को इन धर्मो से मुक्त, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप आत्मा-ब्रह्म जानता है।

V 07 To 11 आत्म ज्ञान एवं जीवन मूल्य

इस ज्ञान के लिये कुछ गुण समूहों का सेवन अधिकारी के लिये आवश्यक है, ये 20 गुण जीवन मूल्य हैं।

1	श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव	11	अहंकार का अभाव
2	दम्भाचरण का अभाव	12	जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि में दु:ख एवं दोषों का बार-2 विचार करना
3	अहिंसा	13	विषयों में आसक्ति का अभाव
4	क्षमा भाव	14	पुत्र, स्त्री, गृह, धन में ममता का न होना
5	मन-वाणी की सरलता	15	प्रिय-अप्रिय प्राप्ति में सदा सम-चित्त रहना
6	श्रद्धा-भक्ति सहित गुरु की सेवा	16	अनन्य योग से युक्त भगवान् का चिन्तन
7	तन-मन-बुद्धि व वाणी की शुद्धि	17	एकान्त व शुद्ध देश में रहने का स्वभाव
8	अन्त:करण की स्थिरता	18	विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय से विरक्ति
9	मन-इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह	19	अध्यात्म ज्ञान में नित्य स्थिति
10	भोगासक्ति का अभाव	20	तत्त्व ज्ञान दर्शन

ये सभी गुण समूह गुरु, सन्त-संग व सत्संग से सरलता से प्राप्त होते हैं। ये 20 गुण ज्ञान के साधन होने से **'ज्ञान'** कहे जाते हैं तथा इनके विपरीत अतिमानित्वम्, दम्भ, हिंसा, विक्षेप, अशौच आदि अवगुण **'अज्ञान'** साधन समुदाय हैं।

ज्ञेय तत्त्व

V 12 To 17

V 12 जब 20 गुणों के पालन से ज्ञान की योग्यता आती है तब सूक्ष्म वस्तु **'ज्ञेय'** का ज्ञान होता है। यह ज्ञेय वस्तु ही परमात्मा है जो सब भूतों में स्थित है, एक जैसा है तथा सर्व गुणों का आधार-अधिष्ठान है। जब इस निर्गुण का स्वयं के रूप में ज्ञान होता है तब गुणों के कारण हमारे जीवन में राग-द्वेष नहीं आते। अपने में अभिमान व हीनता का भाव भी नहीं आता। यह ज्ञेय वस्तु परमात्मा ही क्षेत्रज्ञ रूप से हमारे शरीर में स्थित है। यह अनादि है, परम है अर्थात् देश-काल-वस्तु के परिच्छेद से रहित है तथा बृहत् होने से ब्रह्म है। न इसे सत् न असत् कहते हैं, यह दोनों से परे है।

V 13 यही निर्गुण-निराकार ब्रह्म माया से विश्व-विराट रूप धारण करता है।

V 14 यह सोपाधिक ब्रह्म **'सर्वेन्द्रियगुणाभासं'** रूप से सर्व भूतों का धारण - पोषण करता है तथा निरुपाधिक **'सर्वेन्द्रियविवर्जितम्'** रूप से असक्त व निर्गुण है।

V 15 यह ज्ञेय परमात्मा सब चर-अचर भूतों के अन्दर-बाहर-मध्य में व्याप्त है तथा सर्वत्र व्याप्त होने से अखण्ड है। शरीर के बाहर इसको परमात्मा व शरीर उपाधि के भीतर इसे ही आत्मा कहते हैं। सूक्ष्म होने के कारण यह अज्ञानियों के लिये दूर अर्थात् अविज्ञेय है तथा ज्ञान साधन सम्पन्न अधिकारी के लिये अत्यन्त निकट उसकी आत्मा ही है।

V 16 यह निरुपाधिक ब्रह्म तत्त्व अखण्ड होते हुए भी चराचर भूतों में विभक्त सा लगता है जैसे एक अखण्ड आकाश अनेक घटों में पृथक-पृथक घटाकाश सा भासता है। यही ब्रह्म माया उपाधि से **'प्रभविष्णु'**–ब्रह्मा रूप से सृष्टि की उत्पत्ति, **'भूतभर्तृ'**–विष्णु रूप से स्थिति व **'ग्रसिष्णु'** शंकर रूप से संहार करता है। अविद्या में ही ये लीला हो रही है।

V 17 सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी यह ज्ञेय तत्त्व दिखाई नहीं देता तो क्या यह **'तम'** अन्धकार रूप है? भगवान् कहते हैं कि यह ब्रह्म तत्त्व ज्योतियों की भी ज्योति है, परम ज्योति **'स्वप्रकाश'** है तथा अन्य सभी ज्योति जड़ एवं **'परप्रकाश'** हैं।

5 बाह्य ज्योति – सूर्य, चन्द्र, तारा गण, विद्युत, अग्नि
9 अन्तर्ज्योति – 5 ज्ञानेन्द्रियॉ व चतुष्ट्य अन्त:करण

यह **'ज्ञेय'**(ब्रह्म), **ज्ञान** (ज्ञान के 20 साधन) द्वारा **ज्ञानगम्य** (आत्मा रूप से जानने में आता) है। ज्ञेय ब्रह्म सबके हृदय में आत्मा रूप से स्थित है अत: अहम् रूप से जानने में आता है – **'अहम् ब्रह्मास्मि'**।

V 18 **उपसंहार**

विकार सहित क्षेत्र (V 05 & V 06) को जानकर एवं 20 ज्ञान साधन (V 07 To V 11) का सेवन करके अधिकारी भक्त मुझ ज्ञेय का स्वरूप तत्त्व से जानकर मेरे ही स्वरूप (V 12 To V 17) को प्राप्त हो जाता है।

V 19 अब क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ को प्रकृति और पुरुष रूप से बताते हैं, दोनों ही अनादि हैं अर्थात् जिनका आदि न हो क्योंकि ब्रह्म तो सदैव है उसका अन्त भी नहीं है तथा प्रकृति तो ब्रह्म में छाया रूप है। छाया वास्तविक नहीं होती अत: छाया को छाया रूप जानकर उसका अन्त होता है। यह प्रकृति त्रिगुणमयी होने से विकार व गुणों से युक्त है।

प्रकृति का परिणाम (विकार) – महत्तत्त्व, अहंतत्त्व, पंचतन्मात्रा, 10 इन्द्रियॉ, मन, पंचविषय = 23 तत्त्व
गुण – जगत में व्यवहार करने में उत्पन्न वृत्तियॉ

सत्व – ज्ञान व सुख
रज – काम, क्रोध, लोभादि से दु:ख
तम – आलस्य, निद्रा, प्रमाद से मोह

V 20 & 21 **प्रकृति ही कार्य-करण की उत्पत्ति का हेतु है – 24 तत्त्व**

कार्य – पंचभूत रचित स्थूल देह व पंच विषय - (10 तत्त्व)
करण – पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, चतुष्ट्य अन्त:करण - (14 तत्त्व)

पुरुष सुख-दु.:ख के भोग में हेतु है – यद्यपि पुरुष चेतन सत्ता मात्र है पर अविद्या से कार्य-करण रूप प्रकृति में स्थित होकर गुणों का संग करके स्वयं को स्थूल व सूक्ष्म शरीर मान लेता है और स्वयं को —

1. पाप-पुण्य का कर्ता,
2. सुख-दु:ख का भोक्ता,
3. जन्म-मरण का धरता मानकर सद्-असद् योनि में बार-बार जन्म लेता रहता है अत: पुन: पुन: जन्म का कारण नासमझी, अविवेक, अविचार है जो विवेक-विचार से दूर होता है।

V 22 पुरुष का वास्तविक अर्थ एवं उपाधिकृत नाम

वास्तविक अर्थ :— पुरुष – पूर्णत्वात् पुरुष: – सत्-चित्-आनंद से पूर्ण सच्चिदानन्द ब्रह्म।
पुरुष – पुर शयनत्वात्वा – 9 द्वाररूपी पुर में रहने वाला आत्मा, ब्रह्म।

उपाधिकृत नाम :—

1- **उपद्रष्टा** — ईश्वर-जीव-जगत का साक्षी, अत्यन्त समीप रह कर तटस्थ भाव से देखने वाला।

2- **अनुमन्ता** — यथार्थ सम्मति देने वाला – अन्तर्यामी, सुहृद्।

3- **भर्ता** (जीव रूपा) — मेरी आभास रूपा चेतन प्रकृति जो समस्त जगत (दे०इ०म०बु०प्रा०) को सत्ता-स्फूर्ति देती है व भरण पोषण करती है।

4- **भोक्ता** — यही आभास रूपी चेतन अनुकूल व प्रतिकूल विषय प्राप्त करके सुख-दु:ख का भोक्ता बनता है।

5- **महेश्वर** — महान् ईश्वर जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय होती है तथा जो परम स्वाधीन एवं स्वतंत्र है तथा नित्य शुद्ध बुद्ध स्वरूप है।

6- **परमात्मा** — यही परम आत्मा है अर्थात् अविद्या-माया से आत्मा रूप माने हुए शरीर, प्राण, मन, बुद्धि इन सबसे आत्मा परम है, केवल चिन्मय सत्ता है।

7- **देहेऽस्मिन् पुरुष: पर:** — यह आत्मा (पुरुष) जो अव्यक्त माया से परे है इसी देह में स्थित है। परमात्मा एक अद्वय तत्त्व है शेष सब नाम औपाधिक हैं।

V 23 फल सहित पुरुष-प्रकृति प्रकरण का उपसंहार

जो व्यक्ति **पुरुष** अर्थात् **जीवात्मा** को सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म जानता है तथा प्रकृति व उसके विकार-गुण को मायामय जानता है वह इस संसार में सर्व व्यवहार करते हुए भी कर्मों व उनके फलों से नहीं बँधता, उसे कोई विधि.निषेध नहीं। ऐसा विद्वत पुरुष जीवन मुक्त है। ऐसे ज्ञानी के संचित व आगामी कर्म नाश हो जाते हैं। प्रारब्ध कर्म भोग कर क्षय हो जाते हैं क्योंकि प्रारब्ध ईश्वर संकल्प के आधीन है। **'प्रारब्ध नाशात् प्रतिभान नाशात्'** – उसका पुन: जन्म नहीं होता – **विदेह मुक्ति**, उसके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता।

आत्मदर्शन में साधन

V 24 & 25

1 **ध्यान योग** — अध्याय - 6 — शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि से आत्म चिन्तन – मन एकाग्र होता है।

2 **सॉख्य योग** — अध्याय - 2 — आत्म–अनात्म विवेक।

3 **कर्म योग** — अध्याय - 3 — कर्मासक्ति–फलासक्ति शिथिल करके ईश्वर प्रीति के लिये कर्म करना – इससे अन्त:करण शुद्ध होता है।

4 **श्रद्धा से गुरु वाक्य श्रवण** — जो 1, 2, 3 करने में असमर्थ है परन्तु शास्त्र व गुरु वाक्य में श्रद्धा रखकर ब्रह्म की भावना करता है ऐसा साधक भक्त भी मृत्यु संसार सागर से पार हो जाता है।

V 26 **क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ का ज्ञान**

(एवं क्षेत्रज्ञ व ईश्वर का एकत्व ज्ञान कैसे मोक्ष साधन है यह बताते हैं–)

इस संसार में जो भी स्थावर-जंगम अथवा चर (मनुष्य, पशु, पक्षी) व अचर (पर्वत, वृक्ष आदि) उत्पन्न होते हैं वे सब क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के आविद्यक संयोग से होते हैं क्योंकि जड़-चेतन का संयोग सम्भव नहीं है अत: ये जगत प्रतीति मात्र है, कल्पित है तथा क्षेत्रज्ञ वास्तव में ब्रह्म ही है।

V 27 **सम्यक् दृष्टि**

जो पुरुष समस्त नाशवान प्राणियों में एक अविनाशी ब्रह्म-समं को स्थित देखता है वही सम्यक् देखता है, यही यथार्थ ज्ञान है।

V 28 **यथार्थ ज्ञान का फल**

जो पुरुष सर्व विनाशी भूतों में एक समभाव से स्थित अविनाशी ईश्वर को ही देखते हैं वे अपने शरीर के नाश से स्वयं आत्मा का नाश नहीं मानते। सब शरीर मायिक सृष्टि है जहॉ गुण गुणों में वर्तते हैं, ऐसा जानने वाला परं गति को प्राप्त करता है।

V 29 सर्व कर्म अर्थात् मन, वाणी व काया से किये जाने वाले समस्त कर्म प्रकृति/माया राज्य में हैं तथा क्षेत्रज्ञ/आत्मा सर्व कर्मों का द्रष्टा-साक्षी होने से अकर्ता है – यही यथार्थ दृष्टि है।

V 30 व्यक्ति जिस काल में शास्त्र व गुरु उपदेश पश्चात् भूतों के पृथक-पृथक भाव को एक आधार-अधिष्ठान रूप ब्रह्म में देखता है एवं संसार को माया से ब्रह्म का ही विस्तार देखता है वह उसी समय ब्रह्म को ही प्राप्त होता है।

V 31 यह आत्मा **अनादि** है, **निर्गुण** है, अविनाशी एवं निरवयव है अत: यह परमात्मा इन शरीरों में आत्मा रूप से स्थित होने पर भी न कुछ करता है और न ही लिप्त होता है – **'न करोति न लिप्यते'**।

V 32 **निर्लिप्तता का दृष्टान्त**

जैसे आकाश सर्व व्याप्त है परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म होने से किसी से भी लिप्त नहीं होता, असंग ही रहता है वैसे ही आत्मा भी सर्वत्र देहों में व्याप्त होकर भी किसी देह के गुण-दोष से लिप्त नहीं होता क्योंकि वह तो आकाश से भी सूक्ष्म है।

V 33 **अकर्तापन का दृष्टान्त**

जिस प्रकार एक सूर्य स्वयं कुछ कर्म नहीं करता परन्तु सभी प्राणी इस संसार में उसके प्रकाश में भॉति-भॉति के कर्म करते हैं उसी प्रकार यह आत्मा भी कुछ कर्म नहीं करता, वह सर्व क्षेत्र को प्रकाशित करता है एवं क्षेत्र में भॉति-भॉति के कर्म होते हैं।

V 34 गुरु व शास्त्र के उपदेश से जो क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के भेद को जानता है वह इस कार्य-कारण रूप प्रकृति से, इस प्रपंच से मुक्त होकर परम ब्रह्म को प्राप्त होता है।

क्षेत्र - मायामय = दृश्य, असत्-जड़-दु:खरूप, विकारी, नाशवान् - (24 तत्व) – मिथ्या/प्रतीति मात्र
क्षेत्रज्ञ - ब्रह्म/आत्मा = सच्चिदानन्द, द्रष्टा, निष्कलं, निष्क्रियं, शान्तं, निरंजनं – यथार्थ तत्व, एकरस

जीव–ईश्वर की ब्रह्म से एकता

लक्ष्यार्थ	वाच्यार्थ

ब्रह्म ← **ईश्वर** { ब्रह्म + शुद्ध विद्या माया + प्रतिबिम्ब }

ब्रह्म ← **क्षेत्रज्ञ/जीव** { कूटस्थ आत्मा + मलिन अविद्या माया (बुद्धि) + प्रतिबिम्ब }

ईश्वर = सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान है अत: अपने को, माया को व जीव सबको जानता है।
जीव = अल्पज्ञ-अल्पशक्तिमान है अत: वह न स्वयं को, न ईश्वर को, न माया को जानता है पर ईश्वर की शरण लेने से ईश्वर अथवा उनके कृपा पात्र गुरुजन से 'स्वयं को' जान सकता है व मुक्त हो सकता है।

यदि ईश्वर व जीव में माया भाग का त्याग कर दें तो प्रतिबिम्ब का भी बाध हो जाता है तथा केवल ईश्वर-साक्षी ब्रह्म व जीव-साक्षी कूटस्थ आत्मा रहता है जो वस्तुत: एक हैं अत: **ईश्वर और जीव का लक्ष्यार्थ ब्रह्म है**, अत: क्षेत्रज्ञ को यह ज्ञान हुआ कि वह अविद्या से लथपथ बुद्धि में पड़ने वाला प्रतिबिम्ब जीव नहीं है अपितु जीव साक्षी कूटस्थ आत्मा ही क्षेत्रज्ञ का स्वरूप है जो वस्तुत: ब्रह्म ही है।। इति ।।

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-13	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
0	-	-

Verse No.	Chapter-13	अर्जुन के सम्बोधन
1, 31	कौन्तेय	कुन्ती पुत्र, क्षत्राणी पुत्र की गरिमा का भान कराने वाला
26	भरतर्षभ	भरतवंश में उत्तम
2, 33	भारत	ज्ञान में रति/प्रीति रखने वाला, महाराज भरत का वंशज

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
34	0	0	34

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

गुणत्रयविभागयोगो नाम

चतुर्दशोऽध्यायः

(27 श्लोक)

इस अध्याय में सनातन सिद्धान्त का निरूपण है। यह आत्मा ब्रह्म है, ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है अतः यह देहादि भी ब्रह्म से न्यारे नहीं हैं। इसे समझाने के लिये नयी शैली का प्रयोग किया है किन्तु सिद्धान्त पुराना है इसलिये — व्यतिरेक = तुम देह को देखने वाले हो अतः देह से न्यारे हो तथा अन्वय = जब तुम ब्रह्म हो तो तुम से न्यारे यह देहादि कहाँ हैं अतः अन्वय से सर्वात्मभाव–सर्वात्मबोध होता है।

- **भगवान् कहते हैं जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के अध्यास से है।**
- **क्षेत्र अर्थात् प्रकृति में जन्म-मरण तथा करण हैं परन्तु वह कहती है कि हे पुरुष! यह सब आपको भोगना पड़ेगा। पुरुष असंग है पर उसे अपने स्वरूप का अज्ञान है अतः कहता है कि मैं जन्मता हूँ, मैं मरता हूँ, मैं करण वाला हूँ और फिर सुखी-दुःखी होता है।**
- **क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ दोनों ईश्वर के परतन्त्र हैं अतः जब ईश्वर सामने आता है तब वह प्रकृति से कह देते हैं कि तूष्णी चुप हो जाओ और पुरुष से कहते हैं कि तुम मेरी जाति के हो, तुम सच्चिदानन्द ब्रह्म हो। जब पुरुष ईश्वर से मिल जाता है तो प्रकृति मर जाती है।**

V 01 & 02 **इस ज्ञान की स्तुति, महिमा व फल**

यह ज्ञान सभी ज्ञानों में उत्तम ज्ञान है। इसको जानकर मननशील मुनि अन्तःकरण की शुद्धि प्राप्त कर परां सिद्धि को प्राप्त करते हैं। जैसे अग्नि व सूर्य का आश्रय लेने पर ठण्डक चली जाती है, अँधेरा चला जाता है उसी प्रकार ज्ञान का आश्रय लेने पर अज्ञान चला जाता है तथा परमात्मा का साधर्म्य प्राप्त हो जाता है। वे जन्म-मरण से मुक्त हो जाते हैं।

V 03 & 04 यहाँ **'महद्ब्रह्म'** प्रकृति को कहा है जो मेरी पत्नी है। वही योनि अर्थात् कारण है, माता है तथा मैं गर्भ स्थापित करने वाला (प्रेरक-चेतन) बीजप्रद पिता हूँ। गर्भ अर्थात् चिदाभास हिरण्यगर्भ रूपी पुत्र की उत्पत्ति। यही सर्व योनियों में समस्त मूर्तियों को उत्पन्न करता है।

बीजप्रद पिता	-	महादेव	- ईश्वर	(प्रेरक चेतन)
भूतों की माता	-	जगदम्बा	- महद्ब्रह्म	(समष्टि सृष्टि रूप से भासमान ब्रह्म)
पुत्र	-	हिरण्यगर्भ	- चिदाभास	(चेतन का आभास)

V 05 प्रकृति से ही 3 गुण उत्पन्न होते हैं। प्रत्यक्ष तो शरीर है, गुण अनुमित होते हैं। यह जो हड्डी, माँस, चर्म हैं इसके कारण-रूप गुण का अनुमान करो तो वह **तम** है। यह जो बोलना, चलना, कूदना व अन्य क्रिया हैं इनमें जिस गुण का अनुमान करते हैं वह **रज** है। इसमें जो सुखाकार, दुःखाकार, घटाकार, पटाकार वृत्ति हैं उनके कारण-रूप से जो अनुमित गुण है वह **सत्त्व** है।

यह जो ज्ञान हो रहा है, क्रिया हो रही है, निद्रा-प्रमाद हो रहा है यह सब प्रकृति के गुणों से हो रहा है परन्तु जो द्रष्टा-साक्षी परमात्मा है, प्रत्यक् चैतन्य आत्मा है वह इन गुणों से तादात्म्य कर अपने को बॉंध लेता है। वास्तव में गुण माने रस्सी अत: गुण वह है जो गुणी को बॉंध ले, इसलिये प्रकृति के गुण ही द्रष्टा को बॉंध लेते हैं तथा प्रकृति के ये गुण ही द्रष्टा को मुक्त भी कर देते हैं। अत: बन्ध और मोक्ष द्रष्टा के धर्म नहीं हैं अपितु प्रकृति के ही धर्म हैं।

V 06 गुणातीत पर गुणों का आरोप करना एवं उसको नहीं पहचानना एक अपराध है। सत्त्व गुण साधक भी है और बाधक भी।

सत्त्वगुण साधक है –

- रजोगुण की प्रवृत्ति, अशान्ति नहीं और तमोगुण का आलस्य, निद्रा, प्रमाद नहीं।
- निर्मल होने से सब कुछ साफ़-साफ़ स्पष्ट दीखता है।
- सत्त्वगुण अनामयम् है – दु:ख व तमस नहीं है, ऐसा होने से ज्ञान का साधक है परन्तु इसी सत्त्वगुण से लोग बन्धन में पड़ जाते हैं।

सत्त्वगुण बाधक है –

- सत्त्वगुण में थोड़ी देर सुख, आनन्द व प्रकाश रहा परन्तु जब रजोगुणी व तमोगुणी वृत्ति आई तो दु:खी होने लगे।
- सत्त्वगुण में आसक्ति का हो जाना ही सत्त्वगुणी बन्धन है।
- अपने को चिन्मात्र, गुणातीत, निर्विशेष, निर्धर्मक ज्ञान स्वरूप परमात्मा न जानकर स्वयं को सत्त्वगुणी मानना ही बन्धन है।

V 07 रजोगुण का बन्धन स्वरूप

रजोगुण अन्त:करण को रंग देता है। रजोगुण की उत्पत्ति आसक्ति व तृष्णा से होती है। एक तो उससे चिपक कर एक हो गये और दूसरे यह आगे भी मिले ऐसी तृष्णा हो गयी, यही आशा पाश है। रजोगुण किस प्रकार बॉंधता है? — यह करो, वह करो तो यह मिलेगा, वह मिलेगा अत: जीव को कर्मासक्ति-फलासक्ति से बॉंधता है।

V 08 तमोगुण द्वारा जीव के बन्धन का स्वरूप

तमोगुण की उत्पत्ति **अज्ञान** अर्थात् **स्वरूप विस्मृति** से होती है।

अज्ञान – असंग **'आत्मा'** व दृश्य **'प्रकृति'** इन दोनों के पृथक्त्व के बोध से रहित दोनों का तादात्म्य। यही प्रमाद, आलस्य व निद्रा रूप होकर सबको बॉंधता है।

प्रमाद – प्रमाता-प्रमेय का स्फुरण तो सर्वत्र होता है लेकिन कोई उसको यथार्थ मानकर मोहित हो जाता है, बॅंध जाता है और कोई स्फुरण को अयथार्थ मानकर उसकी अनेकरूपता में नहीं बॅंधता, केवल स्फुरण मात्र जानकर आनंद लेता है।

आलस्य – कर्तव्य का स्मरण होने पर भी उसके करने में रस नहीं अपितु अरस होना, यह अरसरूपता ही आलस्य है।

निद्रा – विश्राम रूप से बॉंधता है।

V 09 उपसंहार – तीनों गुणों द्वारा बन्धन का स्वरूप

सत्त्वगुण – 'हर समय सुख बना रहे' इस आसक्ति से बॉंधता है। जानो कि 'सुख-दु:ख' दिन-रात की तरह आते-जाते हैं अत: इन्हें आते-जाते देखो।

रजोगुण – कर्म में नियुक्त कर कर्मासक्ति से बॉंधता है।

तमोगुण – बुद्धि के ज्ञान को ढक कर प्रमाद में आसक्त कर देता है।

V 10 गुण परिवर्तनशील हैं

1. स्वाभाविक रूप से – a) प्रात: काल – सत्त्व अधिक
   b) दिवस काल – रजस अधिक
   c) रात्रि काल – तमस अधिक
2. साधना से –
   - रज व तम को दबाकर **सत्त्वगुण** बढ़ता है।
   - रज व सत्त्व को दबाकर **तमोगुण** बढ़ता है।
   - तम व सत्त्व को दबाकर **रजोगुण** बढ़ता है।

V 11, 12 & 13

विवृद्ध गुणों के लक्षण व उनकी पहचान

V 11 विवृद्ध सत्त्वगुण का लक्षण

विवृद्ध सत्त्वगुण का लक्षण है **'ज्ञान की वृद्धि'** – शरीर के सभी द्वारों में प्रकाश अर्थात् ऑख से बढ़िया दिखता है, कान से बढ़िया सुनता है। इसी प्रकार जब ज्ञान सूक्ष्म होता है तो वह सब जगह मर्मभेदी दृष्टि से जो अच्छाई छिपी है, परमेश्वर छिपा है उसको देख लेता है। किन्तु जब ज्ञान दुर्बल होता है तब वह परमेश्वर-पर्यन्त नहीं पहुॅच पाता, दोष-पर्यन्त ही पहुॅचता है। अत: जब लोगों में दोष दीखने लगे तब यह मत सोचना कि यह दोषी है अपितु यह समझना कि हमारी ऑख कमज़ोर है।

V 12 विवृद्ध रजोगुण के लक्षण

1. **लोभ** – जब मन में लोभ आये अर्थात् आये थे 2 रुपये के लिये, मिल गये 3 रुपये और सोचने लगे 10 रुपये का फ़ायदा – **लाभात् लोभ: प्रवर्धते**।
2. **प्रवृत्ति** – करते जाओ, करते जाओ।
3. **अशान्ति** – इसी प्रवृत्ति से तृप्ति नहीं होती, यही अशान्ति का कारण है।
4. **स्पृहा** – यह भी रहे, वह भी रहे। ये सभी रजोगुण की वृद्धि के लक्षण हैं।

V 13 विवृद्ध तमोगुण के लक्षण

1. **अप्रकाश** – समझ-बूझ का नाश हो जाता है।
2. **अप्रवृत्ति** – कुछ करने को मन नहीं करता।
3. **प्रमाद** – समय पर बात भूल जाती है।
4. **मोह** – मोहक अन्धकार छा जाता है।

जो भी गुण प्रवृद्ध होता है वही प्रभावी होता है। अन्य दो गुण निष्प्रभावी होते हैं पर निर्व्यवहारी नहीं।

V 14 & 15 मरण काल में गुणों की स्थिति के अनुसार गति

मरण काल में यदि –

- **सत्त्वगुण** प्रवृद्ध है तो – देवताओं के निर्मल उत्तम लोक में जाते हैं।
- **रजोगुण** प्रवृद्ध है तो – कर्मासक्त मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।
- **तमोगुण** प्रवृद्ध है तो – वृक्ष, पर्वतादि मूढयोनियों में जन्म लेते हैं।

V 16 गुणों के फल – पुरुषार्थ का क्षेत्र

सुकृत कर्म का अर्थ – सोच समझकर शास्त्रानुकूल कर्म सावधानी से करना जिससे बाद में पछताना न पड़े।

- सुकृत (सात्विक) कर्म का फल निर्मल होता है।
- रजोगुण का फल दु:ख है, अशान्ति है।
- तमोगुण का फल अज्ञान है, बेहोशी है।

V 17 उपसंहार – गुणों के लक्षण सूत्र रूप से

- सत्त्वगुण से ज्ञान,
- रजोगुण से लोभ व
- तमोगुण से प्रमाद, मोह व अज्ञान (अविवेक) होता है।

V 18 उपसंहार – गुणों के अनुसार गति सूत्र रूप से

सत्त्वस्थाः	–	सुकृत कर्म करने वाले ऊर्ध्व लोकों में जाते हैं	– ऊपर उठते हैं।
राजसाः	–	रजोगुणी मनुष्य लोक में उत्पन्न होते हैं	– मध्य में रहते हैं।
तामसाः	–	दुष्कृत कर्म करने वाले अधोगति प्राप्त करते हैं	– नीचे गिरते हैं।

इन गुणों को पहचान लो ये तीनों गुण ही बॉधते हैं – एक सोने की, एक पीतल की और एक लोहे की ज़ंजीर है। ये तीनों ही बन्धन का दु:ख देते हैं। हमारे सत्कर्मियों, उपासकों व योगियों ने सत्त्वगुण में इतनी महत्वबुद्धि कर दी कि गुणों से छूटने की इच्छा ही नहीं होती। अत: तमोगुण-रजोगुण को दबाकर सत्त्वगुण बढ़ाओ जिससे विवेक हो तथा मुमुक्षु होकर ज्ञान प्राप्ति हो। तुम्हें गुणातीत होना है, सत्त्वगुण में बॅधना नहीं है।

V 19 निगमन प्राण श्लोक

भगवान् कहते हैं तुम तो द्रष्टा आत्मा हो जो अकर्ता है अत: स्वयं को गुणातीत जानो। इन तीनों गुणों के अतिरिक्त और कोई कर्ता नहीं है। अब इन गुणों को आने जाने दो, बस इन्हें देखते रहो जैसे –

- गंगाजी के तट पर समय बीतना – **सत्त्वगुण** है।
- वहॉ कपड़े धोना व खाना बनाना – **रजोगुण** है।
- वहॉ जब नींद आ गयी तो वह – **तमोगुण** है।
- ये सब गुणों का खेल है। ऐसे भी तुम और वैसे भी तुम, गंगाजी के शीतल प्रवाह को देखने वाले भी तुम, कपड़े धोने वाले भी तुम, निद्रा आलस्य प्रमाद वाले भी तुम।
- **'तुम ज्यों के त्यों'** क्योंकि अब तुम परमात्मा हो, गुणातीत हो जीव नहीं। जो सृष्टि–स्थिति–प्रलय में एक जैसा है उसी का नाम परमात्मा है।

V 20 फल श्रुति – स्वयं को अमृत स्वरूप जानना

अर्जुन! इस देह में जो तीनों गुण आते-जाते रहते हैं इनको आने-जाने दो, ये गुण ही देह उत्पत्ति के कारण हैं, तुम तो मायाकृत तीनों गुणों के अतीत होकर रहो। जो गुण आता है उसे आने दो, जो गुण जाता है उसे जाने दो। जीवित अवस्था में ही इन तीनों गुणों का अतिक्रमण करके देह धारी विद्वान स्वयं को इन गुणों का द्रष्टा-साक्षी जानकर स्वयं को अमृत स्वरूप अनुभव करता है व जन्म-मृत्यु-जरा दु:खों से मुक्त होता है।

अर्जुन उवाच

V 21 हे भगवन्! ऐसे गुणातीत की पहचान कैसे करें? - 3 प्रश्न

1. 3 गुणों के अतीत जाने का उपाय क्या है?
2. जो तीन गुणों के परे है उसका आचरण कैसा है?
3. गुणातीत किन लक्षणों से पहचाना जाता है?

श्रीभगवानुवाच

V 22 ■ **सत्त्वगुणी** में प्रकाश अर्थात् ज्ञान सहित उसका परिवार आता है अर्थात् सुख व शान्ति।
■ **रजोगुणी** में प्रवृत्ति सहित उसका परिवार आता है – लोभ, कर्म, अशान्ति, स्पृहा, दु:खादि।
■ **तमोगुणी** में मोह का परिवार – आलस्य, निद्रा, प्रमाद आदि आता है।
अब ज्ञानी का यह काम नहीं कि उनके आने पर उन्हें रुकने के लिये कहे या द्वेष करे अथवा उनके जाने पर उन्हें ठहरने को न कहे या लौटने को कहे।

V 23 गुणातीत का आचरण

स्वयं ही उदासीन की तरह बैठा रहे अर्थात् गुणों को आते-जाते देखता रहे, अपने को क्या लेना-देना। कभी-कभी कोई गुण ज़ोर मारे तो विचलित नहीं होना चाहिये। ये तीनों गुण तो वर्तते ही रहते हैं। आओ हम बैठें, ये तो बच्चे हैं इन्हें खेलने-कूदने-झगड़ने दें। साधक में जब सत्त्वगुण आता है तो प्रसन्न होता है, जाने पर रोता है तथा जब रजोगुण-तमोगुण आता है तो उससे द्वेष करता है, रोता है। परन्तु गुणातीत जैसे दूसरों के साथ उदासीनता का व्यवहार करता है वैसे ही अपने कहे जाने वाले देह-इन्द्रिय-मन-बुद्धि के साथ भी उदासीनवत आचरण करता है। जब नींद आयी तो सो गया, जब घूमने का मन हुआ तो घूम आया, जब ज़ोर.ज़ोर से बोलने का मन हुआ तो बोल लिया। अच्छे गुण आने पर अभिमान नहीं, बुरे गुण आने पर ग्लानि नहीं।

गुणातीत का आचरण – अभिमान व ग्लानि से मुक्त होकर यह जीवन-मुक्त रहता है, अपने स्वरूप में स्थित रहता है।

V 24 & 25 गुणातीत के लक्षण

1. **सुख-दु:ख में सम** – जैसे रात-दिन बराबर होते हैं वैसे ही इनके लिये सुख-दु:ख बराबर हैं। जैसे कभी आकाश निर्मल-शान्त तो कभी आकाश में ऑधी-झंझावत, ऐसे ही चिदाकाश में कभी सुख कभी दु:ख।
2. **स्वस्थ:** – स्वावलम्बी व स्वरूप आत्मा में स्थिति।
3. **समलोष्टाष्मकॉचन:** – पदार्थ निरपेक्ष – मिट्टी, पत्थर, स्वर्ण में समान भाव। महत् बुद्धि नहीं है परन्तु उपयोग बुद्धि बनी रहती हे।
4. **प्रिय-अप्रिय में समान भाव** – मित्र-शत्रु में भेद नहीं क्योंकि चोला ही भिन्न है, चोले को पहनकर तो भगवान् ही आये हैं, वह तुम्हीं हो।
5. **धीर** – धैर्य न खोने पाए, बुद्धि को काबू में रखो।
6. **निन्दा-स्तुति में सम** – इस पर ध्यान मत दो क्योंकि निंदा-स्तुति शरीर को लेकर होती है तथा जो इस शरीर की निंदा करे वह हमारी ही मदद करता है क्योंकि शरीर की निंदा तो हम स्वयं भी करते हैं – मल-मूत्र, रक्त का बना मलिन शरीर।

क्षिति जल पावक गगन समीरा,
पंच रचित यह अधम शरीरा।।

7. **मान-अपमान तुल्य हैं** – मान से संसारी प्रसन्न होता है, अपमान से दु:खी होता है – प्रबल देहाभिमान है।
मान से साधक दु:खी होता है, अपमान से प्रसन्न होता है – देहाभिमान गलित है।
गुणातीत-सिद्ध के लिये मान-अपमान समान हैं।

8. **मित्रपक्ष-अरिपक्ष में समान** – जो खिलाये-पिलाये वह मित्र, जो कुछ नहीं देता वह अरि। सिद्ध दोनों पक्षों में समान क्योंकि शरीर को कभी चिकना भी देना चाहिये और कभी रूखा भी रखना चाहिये।

9. **सर्व आरम्भ का त्याग** – क्योंकि सर्व कर्म सदोष हैं अत: गुणातीत किसी कर्म का आरम्भ नहीं करता। संसार में **'हॉ'** करना ही दु:ख का मूल है एवं **'न'** करना दु:ख से छूटने का उपाय है अत: **'नेति-नेति'** महावाक्य से भी बड़ा है क्योंकि नेति-नेति में जो इति है उसका अर्थ **'तत्त्वमसि'** व **'अहम् ब्रह्मास्मि'** भी है अत: 'न' कहने में कल्याण है व 'हॉ' कहने में बन्धन।

V 26 गुणातीत होने का उपाय – अव्यभिचारिणी भक्ति साधन

1. **'त्वं पदार्थ प्रधान' गुणातीत होने का उपाय** – जानो कि आत्मा कर्ता नहीं है, गुण ही कर्ता हैं अत: आत्मा द्रष्टा व गुण दृश्य हैं।

2. **'तत् पदार्थ प्रधान' गुणातीत होने का उपाय** – परमात्मा भी गुणातीत है, आत्मा भी गुणातीत है अत: परमात्म चिन्तन करो तो भी गुणातीत व आत्म चिन्तन करो तो भी गुणातीत क्योंकि आत्मा-परमात्मा दोनों शब्दों का अर्थ गुणातीत है, ये दोनों एक ही हैं।

V 27 भगवत्स्वरूप की महिमा – आत्मा परमात्मा एकता

ब्रह्म की प्रतिष्ठा 'मैं' अर्थात् आत्मा हूँ जो अमृत है अर्थात् अविकारी है, अव्यय है अर्थात् निर्विकार है, शाश्वत अर्थात् नित्य है, धर्मरूप अर्थात् ज्ञान रूपी धर्म द्वारा प्राप्य है, एकान्तस्य अर्थात् अखण्ड-एकरस तथा सुखस्य अर्थात् आनन्द रूप है।

।। इति ।।

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-14	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
21	प्रभो	हे स्वामी!

Verse No.	Chapter-14	अर्जुन के सम्बोधन
4, 7	कौन्तेय	कुन्ती पुत्र, क्षत्राणी पुत्र की गरिमा का भान कराने वाला
5	महाबाहो	महा बलशाली
6	अनघ	हे निष्पाप!
8, 9, 10	भारत	ज्ञान में रति/प्रीति रखने वाला, महाराज भरत का वंशज
12	भरतर्षभ	भरतवंश में उत्तम
13	कुरुनन्दन	कुरु वंशज
22	पाण्डव	धवल अन्त:करण वाला

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
27	0	1	26

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

पुरुषोत्तमयोगो नाम

पंचदशोऽध्याय:

(20 श्लोक)

पन्द्रहवें अध्याय को 'शास्त्र' कहा गया है क्योंकि इसमें समस्त गीता का अर्थ संक्षेप में कहा है जो कि सर्व वेद-उपनिषद का सार है।

अनुबन्ध चतुष्ट्य

1. **विषय** – आत्मा और ब्रह्म का एकत्व।
2. **प्रयोजन** – इस ज्ञान को जानकर व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है, कृत्कृत्य होता है।
3. **अधिकारी** – असम्मूढ़, बुद्धिमान, अनघ (निष्पाप), भारत (ज्ञान में लगा हुआ)
4. **सम्बन्ध** – ज्ञान से प्राप्त

5 **विषय**		
V 01 - 03	–	संसार प्रकरण
V 04 - 06	–	मुक्ति प्रकरण
V 07 - 11	–	जीव प्रकरण
V 12 - 15	–	विभूति प्रकरण
V 16 - 20	–	ईश्वर प्रकरण

संसार प्रकरण

V 01 इसमें अश्वत्थ वृक्ष के रूप से मायामय संसार का वर्णन किया है जिसमें मूल ऊपर की ओर है व शाखा नीचे की ओर हैं।

मूल – सोपाधिक ब्रह्म मायापति ईश्वर है।
प्रधान शाखा – ब्रह्माजी हैं।
अन्य शाखा – जो ऊपर नीचे फैली हैं – वे 14 लोक हैं।
पत्ते – वेदों के छन्द हैं जो जीवन की शोभा बढ़ाते हैं।
पुष्प – धर्म-अधर्म रूपी कर्म हैं।
फल – सुख-दु:ख रूपी फल हैं।

यह मायामय संसार अश्वत्थ वृक्ष की तरह क्षण भंगुर है, नाशवान् है अत: दु:खरूप है। यह नित्य प्रवाही है, नित्य इसलिये क्योंकि इसका मूल सच्चिदानन्द ब्रह्म है। जो इस संसार को ऐसा जानता है वह वेदवित् है, सर्वज्ञ है।

V 02 **संसार वृक्ष का विस्तार**

'अन्य शाखाएं' ऊपर-नीचे फैली हुई हैं → 14 लोक जिनमें 84 लाख योनियॉ हैं।

7 ऊपर के लोक – **भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यलोक (ब्रह्म लोक)**
7 नीचे के लोक – **अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल**

इस वृक्ष पर जीव रूपी पक्षी बैठा है जो अपने गुण व कर्मो के अनुसार नवीन नवीन शरीर प्राप्त करके सर्व लोकों में धूमता है। मनुष्य को ही इस शरीर से नवीन कर्म करने की स्वतंत्रता है शेष सब भोग योनि हैं। मनुष्य ही धर्म-अधर्म को जान सकता है अतः जब वह राग-द्वेष से प्रेरित होकर कर्म करता है तो यही वासना रूपी जटाएँ उसे संसार रूपी वृक्ष से दृढ़ता से बॉध देती हैं – यही कर्मानुबन्ध है। यही जटाएँ वृक्ष के चारों ओर फैलकर जीव को परमात्मा के दर्शन नहीं होने देतीं।

V 03 लोक व्यवहार में इस संसार का जैसा रूप देखने में आता है विचार दृष्टि से वैसा नहीं उपलब्ध होता। विचार करने पर यह संसार स्वप्न के समान देखते-देखते नष्ट होने वाला है। यह जगत/संसार रज्जु में सर्प के समान व मृगतृष्णा में जल के समान भ्रम रूप है – **ईश्वर सृष्टि** (जगत = मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वतादि) **जीव सृष्टि** (संसार = मैं और मेरा पन)। जीव सृष्टि ही बन्धन का कारण है ईश्वर सृष्टि नहीं, अतः वैराग्य रूपी असंग शस्त्र से इस संसार वृक्ष की कर्मानुबन्धी जटाओं को भली-प्रकार काट कर ज्ञान के अधिकारी बनो।

मुक्ति प्रकरण

धर्म से – कर्म में सुधार करो, निष्काम कर्म से मन निर्मल करो।
भक्ति से – चित्त को एकाग्र करो।
ध्यान से – मन को निर्वासन करो, वैराग्यवान् बनो।

V 04 **अधिष्ठान का अन्वेषण**

वैराग्यवान् होकर अर्थात् राग-द्वेष का शास्त्र बुद्धि से नियमन करके परमात्मा के शरणागत होकर परमात्मपद की खोज करने का निर्देश – जिस पद को प्राप्त कर संसार में पुनः नहीं लौटना पड़ता।

शरणागति का लाभ – भगवान् की सहेतुकी कृपा होती है। कृपा का लक्षण है – भगवत् चिन्तन में मन लगना, साधना निष्ठ होना व गुरु की प्राप्ति होना, अतः शरणागत होकर परम पद की प्राप्ति के लिये संकल्प करके साधना करो।

V 05 **अधिकारी का वर्णन** (4 भाग)

1) निर्मान मोह जित संग दोष (मन, मोह, संग का त्याग) - त्याज्य रूप
2) अध्यात्मनित्या (संतों का संग व शरणागत) - ग्राह्य रूप
3) कामना व द्वन्द्व से मुक्त - अवान्तर फल
4) परम अव्यय पद की प्राप्ति - परम फल

संतों के संग व गुरु उपदेश से जो तुम्हें साधक देह प्राप्त हुआ है उसी को साधन-भजन-विचार से पुष्ट करो। इस हड्डी-मॉस-मल-मूत्र के शरीर का अभिमान छोड़ दो। इसी भाव से साधक देह में रह कर गुरु संरक्षण में परमात्मा को ढूँढो।

V 06 यह मेरा परम पद **'परम धाम'** परम प्रकाशमय है, स्वप्रकाश है। इसे सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि प्रकाशित नहीं करते अर्थात् नेत्र, मन व वाणी परमात्मा को प्रकाशित नहीं करते/नहीं जानते अपितु परमात्मा ही इन सबको प्रकाशित करते हैं अर्थात् सत्ता-स्फूर्ति देते हैं व सबको जानते हैं। वे ही एकमात्र चेतन द्रष्टा हैं शेष सब जड़ दृश्य हैं। यह धाम अपना घर है अत: वहाँ जाकर संसार में पुनरागमन नहीं होता। एक परमात्व तत्त्व ही ईश्वर, जीव और जगत के रूप में प्रतीत हो रहा है तथा यह अव्यय, अविनाशी तत्त्व ही मेरा यथार्थ स्वरूप है अत: स्वयं को **परमात्म रूप / ब्रह्मरूप** जानना ही ज्ञान है।

जीव प्रकरण

V 07 – 11

V 07 संसार में ये जो जीव है वह अविद्या से स्वयं को शरीर मानकर पाप-पुण्य का कर्ता, सुख-दु:ख का भोक्ता, जन्म-मरण का धर्ता एवं लोक-लोकान्तर में गमनागमन करने वाला मानता है जबकि यथार्थ में वह मुझ परमात्मा का ही सनातन अंश है, न कहीं आता है, न कहीं जाता है।

जीव परमात्मा का अंश कैसे है? दृष्टान्त –

1. जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में पड़े तो उसे सूर्य का अंश कहते हैं और जल उपाधि के नाश से 'प्रतिबिम्ब' बिम्ब में मिल जाता है। ऐसे ही अविद्या नाश से प्रतिबिम्ब रूपी जीव, ईश्वर रूपी बिम्ब में मिलकर वापिस नहीं आता।
2. जैसे 'घटाकाश' महाकाश का अंश है तथा घट के नाश से आकाश को ही प्राप्त होता है, वैसे ही अविद्या के नाश होने पर जीव परमात्मा को ही प्राप्त होकर पुन: संसार में नहीं आता।

V 08 **अज्ञानी जीव की संसार में गति**

अज्ञानी जीव को अपने गुण व कर्मों के अनुसार देह की प्राप्ति होती है एवं ऊर्ध्व अथवा अधोगति होती है। जैसे वायु गन्ध के स्थान से पुष्पों की गन्ध को लेकर जाता है वैसे ही यह जीव अपने साथ मन व इन्द्रियों को लेकर पुराने शरीर को छोड़ कर नये शरीर में जाता है।

V 09 इस शरीर में स्थित जीवात्मा श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिव्हा, घ्राण तथा छटे मन को आश्रय बनाकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषयों का सेवन करता है। जब जीव उपाधि को अर्थात् इस देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण को **'मैं'** व **'मेरा'** स्वीकार करता है तो पाप-पुण्य का कर्ता, सुख-दु:ख का भोक्ता व जन्म-मरण का धर्ता बनता है और उसे स्वर्ग-नर्क व ब्रह्म लोक को आना जाना पड़ता है।

V 10 इस देह से निकलते हुए, देह में स्थित हुए तथा इस देह में भोग करते हुए जीवात्मा को मूढ़ जन नहीं जानते। वे स्वयं को यह स्थूल व सूक्ष्म शरीर मानकर कर्ता-भोक्ता व जन्म-मरण का धर्ता मान लेते हैं। इस उपाधि को अपना स्वरूप मान लेना ही विमूढ़ता है, यही दु:ख का कारण है।

ज्ञानीजन जो ज्ञानचक्षु वाले हैं वे देखते हैं कि ये तीनों देह प्रकृति के 3 गुण सत्त्व-रज-तम से बने हैं। अन्त:करण में ही तीनों गुणों का उदय-विलय होता है। इन्द्रियाँ ही इन्द्रियों के विषयों में व्यवहार करती हैं। सर्व कर्म माया के क्षेत्र में हैं। यह जीव तो आत्मा है, परमात्मा है – निरुपाधिक, शाश्वत, अविनाशी, अकर्ता-अभोक्ता है।

V 11 प्रयत्न शील समाहित चित्त वाले योगी जिनमें व्यवहार, वाक्, भाव व विचार शुद्धि है, साधु स्वभाव है व सत्त्वगुण में स्थित हैं वह गुरु की आज्ञा में श्रवण-मनन-निदिध्यासन करते हैं तो अपनी सूक्ष्म बुद्धि से जानते हैं कि यह जीवात्मा ही परमात्मा है। यह तो पहले भी परमात्मा था परन्तु ऐसी बुद्धि उपलब्ध नहीं थी अत: गुरु से ज्ञान पश्चात् यह बुद्धि ऐसा निश्चय करती है कि मैं यह देह नहीं अपितु आत्मा हूँ जो वस्तुत: परमात्मा ही है, यही **मोक्ष** है। परन्तु **अकृतात्मन:** (प्राकृत, संसारी पुरुष) एवं **अचेतस:** (अविवेकी व असावधान पुरुष) स्वयं को आत्मा नहीं जान पाते क्योंकि उसकी गुरु व शास्त्र में श्रद्धा नहीं है।

विभूति प्रकरण

V 12 – 15

जिसे देख कर परमात्मा की महिमा का स्मरण हो वह मेरी विभूति है, इससे परमात्मा की उपासना सरल होती है।

V 12 सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि में जो तेज है वह मुझ परमात्मा का तेज है। सूर्य का तेज हमारे दाहिने नेत्र में, चन्द्रमा का तेज हमारे मन में व अग्नि का तेज हमारी वाणी में स्थित है। हम जो देखते हैं, जो सोचते हें तथा जो बोलते हैं वह सब **'मैं'** परमात्मा ही हूँ।

V 13 **परमेश्वर द्वारा पृथ्वी की धारण शक्ति का कथन**

परमेश्वर के कामना व आसक्ति रहित बल से यह पृथ्वी अपने स्थान पर स्थित है, नीचे नहीं गिरती तथा परमेश्वर ही प्राणियों द्वारा वर्णाश्रम धर्म का पालन कराके पृथ्वी में सर्व भूतों को धारण करते हैं।

परमेश्वर द्वारा पृथ्वी की पोषण शक्ति का कथन

मैं परमात्मा ही रस स्वरूप चन्द्रमा होकर पृथ्वी में उत्पन्न होने वाली सर्व औषधि जैसे धान, जौ, गेहूँ, आम, अमरूद व वनस्पति का पोषण करता हूँ, उन्हें पौष्टिक और स्वादिष्ट बनाता हूँ अत: भोजन सोमरूप परमात्मा है।

V 14 भगवान् ही इस सोमरूप भोजन को पचाने वाले वैश्वानर अग्निरूप भोक्ता हैं। मैं इस देह में वैश्वानर अग्नि बनकर प्राण-अपान वायु से युक्त होकर 4 प्रकार के अन्न पचाता हूँ।

1. **भक्ष्य** - चबाने वाले
2. **भोज्य** - पीने वाले
3. **चोष्य** - चूसने वाले
4. **लेह्य** - चाटने वाले

अत: इस उदर को यज्ञ वेदी बनाओ तथा विहित अन्न खाओ।

भोजन में 4 दोष

1 **स्वभाव दोष** – अपवित्र भोजन – मॉस, मदिरा, लहसुन, प्याज़ व छत्र।
2 **निमित्त दोष** – खाने में बाल, कीट, बीट पड़ जाना।
3 **आश्रय दोष** – भोजन बनाने वाला पात्र अथवा व्यक्ति अपवित्र।
4 **स्वत्त्व दोष** – द्रव्य दोष, बेईमानी के पैसे से प्राप्त भोजन।

इन ४ दोषों से रहित भोजन का भगवान् को भोग लगाकर प्रसाद रूप से ग्रहण करें तो कोई दोष नहीं लगता – **'जैसा खाये अन्न वैसा पाये मन'**।

भोजन में 4 गुण

1. **सौरभ्य** (उत्तम सुगन्ध)
2. **सौरूप्य** (सुन्दर रूप)
3. **सौरस्य** (स्वादिष्ट)
4. **सौहित्य** (पौष्टिक, हितकारी)

अत: भोजन विहित हो, 4 गुणों से युक्त हो, अल्प मात्रा में हो, ईश्वर अर्पित हो तथा भोजन का यथा-योग्य विभाजन करें – अतिथि, गाय, पक्षी, चींटी व श्वान के लिये।

V 15 मैं परमात्मा ही सबके हृदय में आत्मा रूप से स्थित हूँ परन्तु मुझे जानना इसलिये कठिन है क्योंकि कोई जानना नहीं चाहता तथा इसे बताने वाला भी दुर्लभ है।
3 बातें दुर्लभ हैं – (1) मनुष्यत्वं (2) मुमुक्षुत्वं (3) महापुरुष आश्रय।

- स्मृति, ज्ञान व अपोहनम् मैं हूँ
- मैं ही समस्त वेदों का कर्ता हूँ – (**ज्ञान**)
- मैं ही वेदों से जानने योग्य परमात्मा हूँ – (**ज्ञेय**)
- मैं ही वेदों के अर्थ को जानने वाला हूँ – (**ज्ञाता**)

अत: परमात्मा तो सर्वरूप है, जानने में सुलभ है परन्तु उस परमात्मा को सर्वरूप से जानने वाला महात्मा दुर्लभ है।

उपासना का स्वरूप – भगवान् कहते हैं मेरा सर्वरूप से दर्शन करो –

- तुम जो देखते हो, सोचते हो, बोलते हो वह मैं हूँ – **V 12**
- तुम मेरी ही गोद में हो, तुम्हारा आहार भी मैं हूँ – **V 13**
- तुम्हारे उदर में भोक्ता रूपी अग्नि भी मैं हूँ – **V 14**
- तुम्हारे हृदय में मैं ही आत्मा रूप से स्थित हूँ – **V 15**

अत: मुझ परमात्मा को संसार में मत ढूँढो अपितु अपने हृदय में देखो। या तो विवेक से जानो अथवा भक्ति से उसमें डूब जाओ।

ईश्वर प्रकरण

V 16 – 19

V 16 इस संसार में क्षर और अक्षर दो पुरुष हैं —

क्षर पुरुष – सब शरीर नाशवान् हैं, प्रकृति के विकार हैं अत: ये क्षर पुरुष कहे जाते हैं।

1. कार्य रूप हैं (जाग्रत-स्वप्न)
2. दृश्य हैं

अक्षर पुरुष –
यह प्रकृति माया शक्ति है, कूट (कपट) रूप से स्थित है अत: इसे कूटस्थ कहते हैं क्योंकि यह आवरण शक्ति से परमात्मा को छिपा देती है और विक्षेप शक्ति से जगत रूप में

दिखा देती है। यह क्षर की अपेक्षा से कुछ अविनाशी है अत: इसे अक्षर पुरुष कहते हैं। यह परम अक्षर नहीं है।

1. ये कारण रूप है (निद्रा/सुषुप्ति)
2. प्रकृति (निद्रा रूप माया) अव्यक्त है अत: इसका अनुमान किया जाता है।

श्री शंकराचार्यजी (अद्वैत सम्प्रदाय) –
एक चेतन ही कार्य की उपाधि से क्षर व कारण की उपाधि से अक्षर है। कार्य व कारण की उपाधि को छोड़कर वही पुरुषोत्तम ब्रह्म है।

कार्योपाधिक अयम् जीव: कारणोपाधिक ईश्वर:,
कार्य कारण ताम् हित्वा पूर्ण बोधोवशिष्यते ।।

रामानुजाचार्य (विशिष्ट अद्वैत सम्प्रदाय) –
क्षर पुरुष – साधारण जीव, अक्षर पुरुष – मुक्त जीव, पुरुषोत्तम – दोनों का नियन्ता व भोक्ता

मध्वाचार्य (द्वैत सम्प्रदाय) –
क्षर – साधारण जीव, अक्षर – माया श्री लक्ष्मीजी, पुरुषोत्तम – दोनों का नियन्ता

श्रीधर स्वामी का मत (अद्वैती वैष्णव) –
क्षर – जगत, अक्षर – जीव, पुरुषोत्तम – दोनों से विलक्षण

V 17 संक्षेप में क्षर, अक्षर व उत्तम पुरुष

क्षर	–	23 तत्त्व = 5 महाभूत, अहंकार, बुद्धि, मन सहित 10 इन्द्रिय, 5 विषय (जाग्रत-स्वप्न के शरीर)
अक्षर	–	(24 वॉ तत्त्व) प्रकृति/माया (निद्रा रूप)
उत्तमपुरुष	–	(25 वॉ तत्त्व) पुरुषोत्तम बताते हैं, यह क्षर-अक्षर दोनों से विलक्षण, अलिप्त (दोनों उपाधियों से रहित), नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप चेतन तत्त्व है।
परमात्मा	–	इसी उत्तम पुरुष को शास्त्र में स्थान-स्थान पर परमात्मा कहा है अर्थात् आत्मा का परम स्वरूप जो प्रकृति से परे, द्रष्टा-साक्षी है।
बिभर्ति	–	यह तीनों लोक में प्रविष्ट होकर जगत का आधार-अधिष्ठान सबका धारण-पोषण करता है।
ईश्वर	–	सबका शासन करने वाला प्रेरक जो सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान है।
अव्यय	–	लोकों के नाश से पुरुषोत्तम परमात्मा का नाश नहीं होता, वह अव्यय अविनाशी है।

V 18 ■ क्योंकि मैं क्षर पुरुष से अतीत हूँ अर्थात् मायामय अश्वत्थ वृक्ष जाग्रत-स्वप्न जगत से अतीत हूँ तथा अक्षर पुरुष मूल-प्रकृति निद्रा माया से भी अतीत हूँ अत: मैं निरुपाधिक हूँ एवं इसी कारण लोक और वेद में मैं पुरुषोत्तम रूप से विख्यात हूँ।

■ जीव चेतन व ईश्वर चेतन के एकत्व से लक्षित जो अखण्ड चेतन है वही निरुपाधिक अखण्ड चेतन पुरुषोत्तम है।

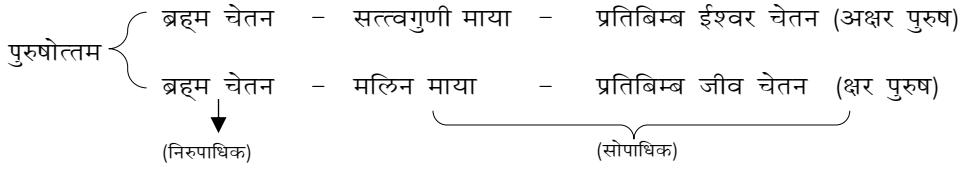

V 19 ज्ञान का फल व ज्ञानी की रहनी

हे ज्ञान में रत अर्जुन! जो असम्मूढ है अर्थात् बुद्धिमान है, निर्मान, निर्मोह, असंग, अध्यात्मनित्य तथा द्वन्द्वों से विमुक्त है तथा जो इस पुरुषोत्तम को आत्मा रूप से जानता है अर्थात् **'अहम्/मैं'** रूप से जानता है वह सर्वविद् है। ब्रह्म, माया, ईश्वर, जीव, जगत सबके रहस्य को जान लेता है। अब उसे कुछ करने की, कुछ प्राप्त करने की व कुछ जानने को शेष नहीं रहता। वह सर्व भाव से मुझे ही भजता है। अब इसकी सर्व क्रिया, सर्व भाव ईश्वर की आराधना है।

V 20 ज्ञान की स्तुति

भगवान् इस अध्याय में मोक्ष फल देने वाले अति गूढ़ तत्त्व ज्ञान को बता कर उसकी स्तुति करते हैं कि इसको जानकर कुछ और जानना शेष नहीं रहता, वह कृतकृत्य हो जाता है।

यहाँ पन्द्रहवें अध्याय को शास्त्र नाम से कहा गया है क्योंकि इस अध्याय में समस्त गीता शास्त्र संक्षेप से कहा गया है तथा इसमें सब वेदों का अर्थ निहित है। इसमें अधिकारी, सर्व साधन – कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग तथा जीव-ईश्वर-जगत का निरूपण करके उनके अधिष्ठान रूप ब्रह्म का पुरुषोत्तम रूप से प्रतिपादन किया है।

वक्ता – स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् हैं– अत: गुरु व आचार्य साक्षात् भगवान् हैं।
अधिकारी – अनघ-निष्पाप व भारत– ज्ञान में रत अर्जुन।
वेदान्त सम्प्रदाय का कर्ता – श्री वेद व्यास व श्री शंकराचार्य **'मैं'** हूँ।
फल – वेदवित्– जो पुरुषोत्तम को अपनी आत्मा जानता है तथा इस जगत प्रपंच को मायामय जानता है वह वेदविद् है, बुद्धिमान है
कृतकृत्य – ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होकर, कर्तृत्व-भोक्तृत्व भ्रान्ति की निवृत्ति होकर व्यक्ति कृतार्थ होता है।

।। इति ।।

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-15	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
0	.	.

Verse No.	Chapter-15	अर्जुन के सम्बोधन
19, 20	भारत	ज्ञान में रति/प्रीति रखने वाला, महाराज भरत का वंशज
20	अनघ	हे निष्पाप!

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
20	0	0	20

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम

षोडशोऽध्यायः

(24 श्लोक)

- **7 वें अध्याय में V 15 में दुष्कृतिनः एवं V 16 में सुकृतिनः कहा।**
- **दुष्कृतिनः को Ch 09 - V 12 में आसुरी, राक्षसी व मोहिनी प्रवृत्ति वाला कहा है।**
- **सुकृतिनः को Ch 09 - V 13 & 19 में महात्मा कहा, ये दैवी सम्पदा वाले हैं।**

अध्याय का प्रयोजन

- **दैवी सम्पदा मुक्ति का हेतु है अतः इसे धारण करो।**
- **आसुरी-राक्षसी प्रवृत्ति बन्धन का हेतु है अतः इसका त्याग करो।**

दैवी सम्पदा का प्रतिपादन

V 01 – 03 (26 दैवी गुण)

V 01 9 गुण

1. **अभय** – डर छोड़ो! डर से बुद्धि भ्रष्ट होती है। भय से बचने के लिये या दूसरों को भयभीत करने के लिये व्यक्ति ग़लत काम करता है अतः न स्वयं डरो, न दूसरे को डराओ।
   भय से मुक्ति का उपाय – धर्म का पालन, वैराग्य, अपरिग्रह, ब्रह्म ज्ञान
2. **सत्त्वसंशुद्धि** – सत् परमात्मा की भावात्मक स्थिति का नाम सत्त्वसंशुद्धि है अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धि। उसमें छल-कपट, झूठ बोलना, दूसरे को ठगना न आने पाए।
   अन्तःकरण शुद्धि का उपाय (कर्मयोग) – राग-द्वेष त्याग कर, ईश्वर प्रीति के लिये अपने - अपने वर्णाश्रम धर्म का समाचर रूप से पालन करना।
3. **ज्ञान योग व्यवस्थितिः** –
   ज्ञान व्यवस्थितिः – शास्त्र व गुरु से ज्ञान प्राप्त कर मनन, निदिध्यासन से उसे दृढ़ करना - **ज्ञान निष्ठा** (वस्तु तन्त्र)।
   योग व्यवस्थितिः – ज्ञान का अधिकारी बनने के लिये साधन करना (निष्काम कर्म, भक्ति व ध्यान) - **योग निष्ठा** (पुरुष तन्त्र)।
   फल – ज्ञान की योग्यता की प्राप्ति व मोक्ष प्राप्ति
4. **दान** – यथा शक्ति विभाग करके अन्न, वस्त्र, धन, भूमि, स्वर्ण, विद्या व अभय दान करो। द्रव्य दान भौतिक दान है। इसमें देश, काल व पात्र के अनुसार दान होता है। उसे भगवद् अर्पण करना **आधिदैविक** दान है। यह दान इष्ट देवता के लिये होता है। उस वस्तु से सम्बन्ध.विच्छेद मात्र **आध्यात्मिक** दान है। इस दान में पात्र की कोई परीक्षा नहीं।
   फल – धन शुद्धि, यश प्राप्ति, त्याग से ममता की न्यूवता, साधु स्वभाव का निर्माण।
5. **दम** – सम्यक् इन्द्रिय संयम। मनुष्यों में 3 प्रकार की प्रकृति होती है। लोभी के लिये दान, कामी के लिये दम तथा क्रोधी के लिये दया साधन है।
   फल – सभ्य सुसंस्कृत जीवन

6. **यज्ञ** – जैसे प्रकृति में निरन्तर नैसर्गिक प्रक्रिया हो रही है – सूर्य प्रकाश दे रहा है, गंगाजी जल दान कर रही हैं, पृथ्वी सबको धारण कर रही है, चन्द्रमा आह्लाद दे रहा है, वायु प्राण दान दे रही है उसी प्रकार से हम शरीर से वर्णाश्रम धर्म पालन करें, सबकी सेवा करें, मीठे वचन बोलें, भूखे को अन्न दें, प्रेम दृष्टि से देखें अथात् पूर्ण जीवन यज्ञमय बना दें।
   फल – पुण्य प्राप्ति से जीवन में अप्रत्याशित सहायता।
7. **स्वाध्याय** –
   - आत्म निरीक्षण करो, आत्म अध्ययन, ईश्वर विषयक ज्ञान करो।
   - स्वाध्याय अर्थात् गीता, रामायण, वेद का पारायण करो, जप करो, ध्यान करो, पढ़ो और पढ़ाओ। पराध्याय अर्थात् संसार चिन्तन मत करो।

   फल – वाणी दोष का निवारण।
8. **तप** – शारीरिक, वाचिक, मानसिक तप करो। कर्तव्य पूर्ति के लिये कष्ट सहना तप कहलाता है।
   फल – इससे तन, मन, वाणी की शुद्धि होती है।
9. **आर्जवम्** – सीधा सरल कपट रहित शुद्ध व्यवहार करो। जो मन में, वही वचन में और वही कर्म में भी, इसी का नाम आर्जवम् है।

V 02 11 गुण

1. **अहिंसा** – मन, वाणी व शरीर से किसी को कष्ट न देने का स्वभाव।
   फल – भय की न्यूनता, शान्ति व सर्वात्मभाव की वृद्धि।
2. **सत्यं** – वाणी से सत्य भाषण हो परन्तु वाणी मधुर, प्रिय व हितकर भी हो
   फल – सबका प्रिय व विश्वास अर्जन। सत्य भाषण, सत्य जिज्ञासा व परमात्मा के ज्ञान में साधन बनता है।
3. **अक्रोध** – क्रोध उत्पन्न होने पर उस क्रोध वृत्ति को शान्त करने की सामर्थ्य व उसके प्रति उदासीन होना।
   फल – तटस्थता, मन में शान्ति व बुद्धि की रक्षा।
4. **त्याग** – प्रिय वस्तु को हानिकारक जानकर तप बुद्धि से त्याग करना। वैराग्य में भी त्याग होता है परन्तु वैराग्य में उस वस्तु में रस बुद्धि नहीं है।
   फल – त्याग से जीवन सरल होता है व साधक पथ भ्रष्ट होने से बच जाता है।
5. **शान्ति** – सर्व दैवी गुणों की जननी
   1-काम की शान्ति – ब्रह्मचर्य 4-मोह की शान्ति – तटस्थता 7-आसक्ति की शान्ति – वैराग्य
   2-क्रोध की शान्ति – अहिंसा 5-मद की शान्ति – अमान 8-पारुष्य की शान्ति – मार्दवम् एवं
   3-लोभ की शान्ति – संतोष 6-मात्सर्य की शान्ति – सद्भाव दया
   फल – अन्त:करण की शान्ति आपको आत्म-ज्ञान का अधिकारी बनाकर अक्षय शान्ति प्राप्त कराती है।
6. **अपैशुनम्** – किसी की चुगली न करना क्योंकि चुगली करने से मित्रता व विश्वास का वध होता है, दूसरों के दोषों को न देखना, परचर्चा चाहे अच्छी हो या बुरी इसकी आदत नहीं डालनी चाहिये।
7. **दया भूतेषु** – सम्पूर्ण प्राणियों पर दया करनी चाहिये, कोमल चित्त होना चाहिये।
8. **अलोलुप्त्वम्** – अधिक लोभ न होवे, यदि किसी वस्तु की इच्छा हो तो उस इच्छा को मरने दो व उसे दोबारा न आने दो।
9. **मार्दवम्** – मृदुलता, चित्त की कोमलता, मोह-ममता से होने वाली कठोरता का अभाव।
   फल – साधु संग व साधु सेवा की प्राप्ति, गुरु वात्सल्य की प्राप्ति।
10. **ह्री** – लज्जा। लोक, शास्त्र, गुरुजन व वृद्धजन के सामने बेहयाई करने में लज्जा हो। बुरा कर्म करने में शर्म लगनी चाहिये।

फल – निषिद्ध आचरण का त्याग होता है।

11. **अचापलम्** – जो उचित-अनुचित एवं समय का विचार करके बोले व कर्म करे।
फल – मन की एकाग्रता सिद्ध होती है।

V 03 **6 गुण**

1. **तेज** – श्रेष्ठ पुरुषों की शक्ति जिससे वे दुर्जन से पराभूत नहीं होते अपितु दुष्ट जनों से उनके अन्याय आचरण का त्याग कराके श्रेष्ठ कर्म में लगाते हैं।
फल – तेजस्वी को कोई ग़लत कर्म करने को नहीं कहता।
2. **क्षमा** – क्रोध का अवसर प्राप्त होने पर भी चित्त में विकार न होना, द्वेष व प्रतिशोध वृत्ति का अभाव।
फल – क्षमा भाव होने से सबको अभय दान देता है कि सर्वजन मुझसे निर्भय हों।
3. **धृति** – उत्साह वृत्ति। असफलता होने पर भी कर्म को पूर्ण करने का स्वभाव, तत्परता का स्वभाव **'पूर्ण करूँ या जूझ मरूँ'**।
फल – यही **'धृति शक्ति'** साधक के स्वरूपावस्थान में सहायक है।
4. **शौचं** – बाह्य व आन्तरिक शुद्धता/पवित्रता। स्थान, वस्त्र व धन की शुद्धता तथा इन्द्रिय, मन, बुद्धि की शुद्धता।
5. **अद्रोह** – किसी से विश्वासघात न करने का स्वभाव, दूसरे की स्वच्छन्द वृत्ति पर आक्षेप न करना।
6. **नातिमानिता** – अपने में अतिशय पूज्य भाव न होवे। दूसरे को अपने से छोटा मत समझो व स्वयं अपनी बड़ाई मत करो।

■ इन 26 दैवी सम्पत्ति के सम्पादन से मनुष्य को साधुता, दिव्यता, अन्त:करण शुद्धि व क्रम से ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है ■

आसुरी सम्पदा का प्रतिपादन

V 04 **(6 मुख्य आसुरी गुण हैं)**

V 04 संक्षेप में आसुरी सम्पदा का निरूपण करके **V 06 – V 21** में उनका विस्तार किया है।

6 आसुरी गुण

1. दम्भ/पाखण्ड – जो गुण, जो धर्म अपने अन्दर न हो, उसको लोगों को दिखाना।
2. **दर्प** – 'अपने में बड़प्पन का भाव'- धन बल, जन बल, शरीर बल व बुद्धि बल से होने वाला गर्व। यह हर्ष की वृत्ति धर्म का अक्रिमण कराती है व गुरु का भी अपमान कराती है।
3. **अहंकार** – अभिमान। अपने में अतिशय पूज्य भाव रखना, **मैं-मैं** करना → जैसे दक्ष।
4. **क्रोध** – क्रोध से प्रतिशोध वृत्ति, दूसरे का अनिष्ट, हिंसा भाव व बुद्धि नाश अत: यह सर्वथा त्याज्य है।
5. **पारुष्य** – कठोर वचन, आक्षेप करना (ताना मारना), दूसरे को दु:खी करके सुखी होना।
6. **अज्ञान** – किसी भी बात को ठीक-ठीक न समझना, समझाने पर भी न मानना एवं उल्टा निश्चय होना।

V 05 **दैवी व आसुरी सम्पदा का फल** –

- दैवी सम्पदा संसार से मुक्त कराती है अत: दैवी सम्पदा अर्जित करो।
- आसुरी सम्पदा संसार में बन्धन कराती है अत: वह सर्वथा त्याज्य है।

आसुरी सम्पदा का विस्तार

V 06 – V 21

V 06 दो प्रकार के सर्ग अर्थात् मनुष्य समुदाय का संकेत करके आसुर सर्ग को विस्तार पूर्वक सुनने की आज्ञा, जिसको भली प्रकार जानने से ही उसका त्याग करना बन सकता है।

V 07 **स्वभाव** – इनकी दृष्टि कैसी है, इनका ज्ञान कैसा है, इनकी मान्यता कैसी है? ये प्रवृत्ति-निवृत्ति को नहीं जानते। ये अशुद्ध, दुराचारी, कपटी एवं मिथ्यावादी होते हैं।

V 08 **मान्यता** – इनकी मान्यता ऐसी है कि संसार झूठ पर ही चलता है, जगत में धर्म-अधर्म का कोई आधार नहीं है, ईश्वर नहीं है तथा सर्व भूत प्राणी काम से प्रेरित स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं।

V 09 **दृष्टि** – ऐसी दृष्टि वाले नष्ट आत्मन: हैं, परलोक साधन से भ्रष्ट हैं। ये अल्पबुद्धि, उग्रकर्म करने वाले, संसार का नाश करने के लिये ही उत्पन्न होते हैं।

V 10 **बुद्धि** – बुद्धि का आश्रय — दुष्पर - कभी न पूर्ण होने वाली कामना जो विषय भोगों के प्रति है उसका आश्रय लेकर दम्भ, मान व मद से ये युक्त होकर असद् आग्रह को ग्रहण करते हैं। ये अशुभ संकल्प को धारण करके जगत में सक्रिय होकर वर्तते हैं।

V 11 **चित्त** – चित्त की दशा — मृत्युपर्यन्त अपार चिन्ता से ग्रस्त रहते हैं। काम भोग के लिये तत्पर रहते हैं व इसी को परम पुरुषार्थ मानते हैं।

V 12 **चित्त** – सैंकड़ों आशा पाश से बॅधे हुए, काम-क्रोध के परायण होकर, विषय-भोगों की प्राप्ति के लिये अन्याय पूर्वक धन संचय करते हैं।

*** अब आसुरी विचार बताते हैं ***

V 13 – V 15

V 13 धन व सम्पत्ति की निरन्तर वृद्धि की कामना जिससे विख्याति हो।

V 14 ईश्वर भाव, भोगी, सिद्ध, बलवान, सुखी, सबके ऊपर शासन करने का भाव, शत्रुओं को मार डालने का भाव।

V 15 धनाढ्य हूँ, कुलीन हूँ, मेरे समान कोई नहीं है, सबको नीचा दिखाने के लिये विशाल स्तर पर यज्ञ कर अनादर भाव से दान करते हैं।

*** अब ऐसे ज्ञान दोष, कर्म दोष, भ्रान्त चित्त वालों की गति का वर्णन ***

V 16 **गति** – भ्रान्त चित्त, मोह जाल में फॅसे हुए तथा काम भोगों में अत्यंत आसक्त मनुष्य पापों का संचय करके वैतरणी आदि अशुद्ध नरकों में गिरते हैं।

V 17 **गति** – **आत्मसम्भाविता:** – स्वयं को महान् मानने वाले, **स्तब्धा:** – विनय रहित धृष्ट मनुष्य, **धन मानमदान्विता:** – धन से उत्पन्न मान और मद वाले, नाम मात्र के लिये दम्भ से अविधि पूर्वक यज्ञ करने वाले अशुद्ध नरकों में गिरते हैं।

*** ये असुर जन किन वृत्तियों का आश्रय लेकर बैठते हैं ***

V 18 **वृत्ति** – **अहंकार** – स्वयं को विशिष्ट मानना, **बलं** – काम-राग से युक्त बल, **दर्प** – धर्म का अतिक्रमण कराने वाली वृत्ति, **काम** – स्त्री-पुरुष के विषय में होने वाली काम वृत्ति, **क्रोध, अभ्यसूयका:** – परनिन्दा करने वाले, ये सन्मार्ग में स्थित पुरुषों की निंदा करने वाले होते हैं।

*** असुर स्वभाव वालों की अधोगति का वर्णन ***

V 19 **अधोगति** – **द्विषत:** – मेरे व साधु पुरुषों से द्वेष रखने वाले, **क्रूरान्** – क्रूरकर्म करने वाले, **नराधम** – नरों में अधम, **अशुभान्** – अशुभ कर्म करने वाले मनुष्यों को मैं बार-बार क्रूर कर्म करने वाले सिंह-व्याघ्रादि योनियों में फेंकता हूँ।

V 20 **प्रभु प्राप्ति नहीं** – ये प्रत्येक जन्म में अधम से अधम योनियों को प्राप्त करते हैं। इन्हें मेरी प्राप्ति अर्थात् मेरे द्वारा निर्देशित साधना मार्ग की प्राप्ति नहीं होती।

V 21 **3 मूल दोष** – अब नर्क प्राप्ति के मूल तीन दोषों का वर्णन करते हैं – **काम, क्रोध व लोभ**। इनमें प्रवेश मात्र से मनुष्य की आत्मा नष्ट हो जाती है। उसके लिये चारों पुरुषार्थ – **'अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष'** अप्राप्य हैं अत: इन तीनों दोषों का त्याग करना चाहिये।

V 22 **श्रेय साधनों से परम गति की प्राप्ति अर्थात् मोक्ष प्राप्ति** – आत्म कल्याण के लिये गुरु निर्देश, शास्त्राज्ञा व ईश्वर शरणागति लेकर साधन।

V 23 **शास्त्र विधि को त्याग कर इच्छानुसार कर्म करने वालों की निंदा** – ये न सिद्धि प्राप्त करते हैं और न इस लोक में सुख, न स्वर्ग न मोक्ष प्राप्त करते हैं।

V 24 **शास्त्र की महिमा व शास्त्रानुकूल कर्म करने की प्रेरणा**।

।। इति ।।

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-16	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
0	.	.

Verse No.	Chapter-16	अर्जुन के सम्बोधन
3	भारत	ज्ञान में रति/प्रीति रखने वाला, महाराज भरत का वंशज
4, 6	पार्थ	पृथा (कुन्ती) का पुत्र, प्रेम का सम्बोधन
5	पाण्डव	धवल अन्त:करण वाला
20, 22	कौन्तेय	कुन्ती पुत्र, क्षत्राणी पुत्र की गरिमा का भान कराने वाला

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
24	0	0	24

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम

सप्तदशोऽध्यायः

(28 श्लोक)

अध्याय का प्रयोजन

जिन मनुष्यों से अज्ञानता के कारण शास्त्र विधि का त्याग हो जाता है परन्तु जो वृद्धजनों का अनुसरण व कुल परम्परा को आदर्श मान कर श्रद्धा से पूजन करते हैं उनकी श्रद्धा अथवा निष्ठा कैसी है?

V 01 **प्रस्तावना रूप अर्जुन का प्रश्न** –

शास्त्र विधि को त्याग कर श्रद्धा से पूजन करने वाले मनुष्यों की निष्ठा कैसी होती है? उनकी पूजा कैसी है – सात्विक, राजसी अथवा तामसी?

V 02 **भगवान का उत्तर** –

'त्रिविधा भवति श्रद्धा' अर्थात् गुणों के अनुसार 3 प्रकार की स्वभावजा श्रद्धा जिसके हेतु –

(1) **जन्मान्तर कृतः** = पूर्व देह के में किये धर्म-अधर्मादि कर्म जिनसे हमें यह मनुष्य देह, परिवार व परिस्थिति मिलते हैं।

(2) **धर्मादिसंस्कारः** = धर्मादि कर्म व भोग के संस्कार जिनसे अन्तःकरण की बनावट निश्चित होती है।

(3) **मरणकाले अभिव्यक्तः** = मरण काल में जब बुद्धि शिथिल हो जाती है तब अवचेतन मन द्वारा जो संस्कार प्रकट होते हैं उनके समुदाय का नाम स्वभाव है जिससे श्रद्धा उत्पन्न होती है।

V 03 **श्रद्धा के अनुसार पुरुष का स्वरूप** –

सभी प्राणियों की श्रद्धा विशिष्ट संस्कारों से युक्त अन्तःकरण के अनुरूप ही होती है। जो जिस श्रद्धा वाला है वह वैसा ही है। **हेतु-फल सम्बन्ध** –

जैसा **स्वभाव** → वैसी **अन्तःकरण की रुचि** → वैसी **श्रद्धा** → वैसे **साधन** → वैसा ही **श्रद्धेय**

{**श्रद्धेय** = जिसकी आप पूजा करते हैं, उदा० देवता, यक्ष-गंदर्भ-किन्नर, भूत-प्रेत }

V 04 **कार्य रूपी लिंग से कारण रूप श्रद्धा का अनुमान** –

देव, यक्ष एवं प्रेतादि के पूजन से त्रिविध श्रद्धा युक्त पुरुषों की श्रद्धा की पहचान होती है अर्थात् सात्विक श्रद्धा वाले देवी-देवता की, राजसी श्रद्धा वाले यक्ष-गंदर्भ-किन्नर की व तामसी श्रद्धा वाले भूत-प्रेत की पूजा करते हैं।

V 05 अधिकांश मनुष्य शास्त्र विधि न जान कर जब स्वाभाविक श्रद्धा से कर्म करते हैं तो वह राजसी व तामसी श्रद्धा वाले ही होते हैं, सात्विक श्रद्धा वाला तो कोई एक ही होता है। शास्त्र विरुद्ध घोर तप करने वाले मनुष्यों के प्रेरक तत्त्व **'दम्भ, अहंकार व काम-राग'** से युक्त बल हैं।

V 06 अविवेकी मनुष्यों के आसुरी निश्चय से किये तप से भगवान् को कष्ट होता है।

V 07 आहार, यज्ञ, तप एवं दान के त्रिविध भेद सुनने के लिये प्रभु की आज्ञा जिससे सात्विक का ग्रहण व राजसी-तामसी का त्याग हो सके।

V 08 **सात्विक आहार के लक्षण** –

- **रस्याः** = रसीला भोजन
- **स्थिराः** = लम्बे समय तक क्षुधा निवृत्ति
- **स्निग्धाः** = चिकने पदार्थ
- **हृद्याः** = मन को प्रिय।

V 09 **राजसिक आहार के लक्षण** –

1. अति **कटु**
2. अति **खट्टा**
3. अति **नमक**
4. अति **गर्म**
5. अति **तीक्ष्ण**
6. अति **रूखा** व **दाहकारी**

ये परिणाम में दुःख, शोक व रोग देने वाले होते हैं।

V 10 **तामस आहार के लक्षण** –

1. **यातयामं** = अधपका
2. **गतरसं** = रस रहित
3. **पूति** = दुर्गन्ध युक्त
4. **पयुर्षितम्** = बासी
5. **उच्छिष्ट** = जूठा
6. **अमेध्य** = अपवित्र भोजन

V 11 **सात्विक यज्ञ के लक्षण** –

शास्त्र विधि से यज्ञ करना मेरा कर्तव्य है ऐसा मन में समाधान है। यह अफलाकांक्षी है, इसे फल की कोई इच्छा नहीं है।

V 12 **राजस यज्ञ के लक्षण** –

ये भी यज्ञ विधि पूर्वक करते हैं परन्तु दम्भाचरण के लिये फल को दृष्टि में रखकर यज्ञ करते हैं।

V 13 **तामस यज्ञ के लक्षण** –

यह यज्ञ विधि, अन्न दान, मंत्र, दक्षिणा व श्रद्धा सबके बिना केवल लोक लाज के लिये किया जाता है :–

1. **विधिहीनम्** = शास्त्र विधि से रहित
2. **असृष्टान्नम्** = अन्नदान से रहित
3. **मन्त्रहीनम्** = बिना मंत्रों के
4. **अदक्षिणम्** = बिना दक्षिणा के
5. **श्रद्धा विरहितं** = बिना श्रद्धा के किया जाता है

V 14 **शारीरिक तप का वर्णन** –

'देवता, ब्राह्मण, गुरु' इस शब्द से माता, पिता, आचार्य व वृद्ध को लें एवं

- **प्राज्ञ** = ज्ञानीजन का पूजन
- **आर्जवम्** = सरलता,
- **शौचम्** = पवित्रता
- **ब्रह्मचर्य** = वीर्य रक्षणम् एवं **अहिंसा** — शारीरिक तप हैं।

V 15 वाणी सम्बन्धी तप के लक्षण –

- **अनुद्वेगकरं** = क्षुब्ध न करने वाला
- **सत्यं** = यथार्थ
- **प्रियं** = मीठा
- **हितं** = हित करने वाला

} भाषण वाणी का तप है।

वेद व गीता का पाठ तथा नाम जप का अभ्यास वाक् शुद्धि, व्यवहार शुद्धि व ग्रन्थ स्मरण का हेतु है। यह भी वाणी सम्बन्धी तप है।

V 16 मानसिक तप के लक्षण –

- **मनः प्रसादः** = मन की प्रसन्नता
- **सौम्यत्वं** = मुख को खिलाने वाली वृत्ति अथवा परहित की भावना
- **मौनम्** = व्यवहार उपरामता, भगवत् चिन्तन व जप का स्वभाव
- **आत्मविनिग्रह** = शम व दम
- **भावसंशुद्धि** = छल कपट रहित सरल व्यवहार

} मानसिक तप हैं

V 17 सात्विक तप के लक्षण –

- श्रद्धा से युक्त
- फल को न चाहने वाला
- समाहित-शान्त चित्त से

} **'शारीरिक, मानसिक व वाचिक'** 3 प्रकार का तप करने वाला सात्विक तप कर्ता होता है।

V 18 राजसी तप के लक्षण –

जो तप सत्कार, पूजा व मान की अपेक्षा से दम्भपूर्वक दिखावे के लिये किया जाता है वह **अध्रुवम्** = अनिश्चित एवं **चलम्** = क्षणिक फल वाला राजस तप कहा गया है।

V 19 तामसी तप के लक्षण –

जो तप मूढ़तापूर्वक हठ से, स्वयं को पीड़ा पहुँचा कर, अशुचि के साथ दूसरे के अनिष्ट करने के लिये किया जाता है वह तप तामस कहा जाता है।

V 20 सात्विक दान के लक्षण –

दातव्यम् – दान देना मेरा कर्तव्य है ऐसी भावना, क्योंकि शास्त्र का निर्देश है। अपनी आय के दसवें हिस्से का दान करो तथा परिवार, समाज व राष्ट्र के ऋण से उऋण होने के लिये भी।

उचित देश व काल – अर्थात् जिस देश-काल में जिस वस्तु का अभाव हो उस वस्तु का दान करना व उचित पात्र अर्थात् भूखे, अनाथ, रोगी व भिक्षुक को अन्न, वस्त्र, औषधि का दान तथा श्रेष्ठ विद्वान की धनादि पदार्थों से सेवा प्रत्युपकार न चाहने की इच्छा से करना सात्विक दान है।

V 21 राजस दान के लक्षण –

जो दान क्लेश पूर्वक जैसे **'चन्दा रूप'**, प्रत्युपकार के प्रयोजन से अर्थात् दान के बदले में सांसारिक कार्य सिद्धि की आशा अथवा फल दृष्टि से मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, स्वर्ग प्राप्ति व रोगादि की निवृत्ति के लिये दिया जाता है वह दान राजस कहा गया है।

V 22 **तामस दान के लक्षण** –

जो दान अविवेक से, बिना सत्कार के, तिरस्कार पूर्वक, अयोग्य देश-काल में अयोग्य पात्र (नीच कर्म करने वाले, मॉस-मद्य का सेवन करने वाले) को दिया जाता है वह दान तामस कहा जाता है। यह केवल लोक-लाज के भय से किया जाता है।

V 23 **ओम् तत् सत् की महिमा** –

ब्रह्म का इन तीन नामों से निर्देश किया जाता है। उस ब्रह्म से ही सृष्टि के आदि काल में ब्राह्मण, वेद व यज्ञादि रचे गये।

*** ओम्, तत् एवं सत् के प्रयोग की व्याख्या ***

V 24 **ओम् इति** – कर्म शुद्धि के लिये **'हरि ओम्'** का उच्चारण

वेदवादी ब्राह्मणों की शास्त्र विधि से नियत **'यज्ञ, दान व तप'** रूप क्रियाएं '**हरि ओम्**' इस परमात्मा के नाम के उच्चारण से ही आरम्भ होती हैं। **हरि** कहने से ब्राह्मण ओम् उच्चारण का अधिकारी होता है व **ओम्** उच्चारण से कर्म शुद्धि होती है।

V 25 **तत् इति** – उद्देश्य शुद्धि के लिये अर्थात् **परमात्मा पर दृष्टि**

मोक्ष को चाहने वाले, कर्म के फल को न चाह कर **'यज्ञ, दान, तप'** रूप क्रियाएं **'तत् इति'** इस परमात्मा के नाम के उच्चारण करके आरम्भ करते हैं, भाव यह है कि यह सब ब्रह्म के लिये ही है।

V 26 **सत् इति** –

कर्म में सद्भाव व साधुभाव का आधान करने के लिये तथा प्रशस्त शुभ कर्मों से पहले **'सत् इति'** इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करते हैं।

V 27 यज्ञ, दान व तप में जो स्थिति है, भाव रूपता है, बल है वह **'सत्'** है। ईश्वर के लिये किये गये कर्म भी **'सत्'** हैं अत: '**ओम् तत् सत्**' के प्रयोग से **'यज्ञ, दान, तप'** की असात्विकता व विगुण दूर होते हैं तथा कर्म सात्विक व सगुण बना लिये जाते हैं, इस प्रकार कर्म निर्मल हो जाते हैं।

V 28 **अश्रद्धा से किये गये यज्ञादि कर्मों को इस लोक व परलोक में असत् व निष्फल बताना** –

हेतु :–

1- भगवत् प्राप्ति साधन मार्ग से बाह्य होने के कारण,
2- साधु पुरुषों द्वारा निन्दित होने के कारण,
3- निष्फल होने के कारण।

अत: अश्रद्धा से किये गये यज्ञादि कर्म इस लोक व परलोक में इष्ट फल देने में असमर्थ होने से **असद् हैं**।

।। इति ।।

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-17	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
1	कृष्ण	श्याम वर्ण, हृदय को आकर्षित करने वाले, विष्णु के आठवें अवतार

Verse No.	Chapter-17	अर्जुन के सम्बोधन
3	भारत	ज्ञान में रति/प्रीति रखने वाला, महाराज भरत का वंशज
12	भरतश्रेष्ठ	भरत वंश में श्रेष्ठ
26, 28	पार्थ	पृथा (कुन्ती) का पुत्र, प्रेम का सम्बोधन

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
28	0	1	27

ओ३म् तत् सत्

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता

मोक्षसंन्यासयोगो नाम

अष्टादशोऽध्याय:

(78 श्लोक)

यह अध्याय उपसंहार रूप है।

V 01 अर्जुन का संन्यास एवं त्याग दोनों के तत्त्व को पृथक - 2 रूप से जानने के लिये प्रश्न करना।

त्याग व संन्यास का तत्त्व निरूपण

V 02 – V 17

V 02 & 03 दार्शनिकों के 4 मत

1) कवय: – काम्य कर्मों का त्याग संन्यास है।
2) विचक्षण: – सर्व कर्मों के फल का त्याग ही त्याग है।
3) मनीषी – कर्ममात्र दोष युक्त हैं अत: त्यागने योग्य हैं परन्तु ऐसा होना असम्भव है।
4) विद्वान – यज्ञ, दान व तप त्यागने योग्य नहीं।

V 03 - 11 भगवान् का त्याग के विषय में निश्चित मत है कि यज्ञ, दान और तप त्यागने योग्य नहीं हैं अपितु आवश्यक कर्म हैं तथा ये कर्म भी कर्मासक्ति व फलासक्ति का त्याग करके करने चाहिये क्योंकि ये बुद्धिमान मनुष्य को अन्त:करण पवित्र करके उसे ज्ञान प्राप्ति का अधिकारी बनाते हैं। यह त्याग 3 प्रकार का कहा गया है —

a) **तामस त्याग** – नियत कर्मों का मोह से किया गया त्याग तामस त्याग है।

b) **राजस त्याग** – कर्तव्य कर्म करने में दु:ख है ऐसा समझ कर शारीरिक व मानसिक क्लेश के भय से कर्मों का त्याग कर संन्यासी बन जाना राजस त्याग है।

c) **सात्विक त्याग** – नियत कर्म करना हमारा कर्तव्य है अत: जो कर्मासक्ति व फलासक्ति का त्याग करके नियत कर्म करता है वह सात्विक त्याग है। यह सत्त्वगुण से युक्त एवं मेधावी है तथा **'ब्रह्म ज्ञान ही मोक्ष का एक मात्र साधन है'** ऐसा इसका दृढ़ निश्चय है।

सर्व कर्म संन्यास

- किसी भी अज्ञानी देहधारी द्वारा सम्पूर्णता से कर्मों का त्याग करना सम्भव नहीं है अत: कर्म फल का त्याग करने वाले को ही **त्यागी** कहते हैं।
- ज्ञानी ही स्वयं को अकर्ता व निष्क्रिय आत्मा जानकर **सर्व कर्म संन्यास** कर सकता है।

V 12 - 19 मृत्यु पश्चात् प्राप्त होने वाले 3 प्रकार के फल

- इष्ट फल – स्वर्ग प्राप्ति
- अनिष्ट फल – नर्क व तिर्यक योनि प्राप्ति
- मिश्रित फल – मनुष्य योनि प्राप्ति

सर्व कर्मों के होने में ५ हेतु का विवरण

1- अधिष्ठान – शरीर
2- कर्ता – साभास बुद्धि
3- करण – मन व 10 इन्द्रियॉ
4- पृथक् - 2 चेष्टा – प्राणों की क्रिया
5- दैवम् – इन्द्रिय व अन्त:करण के देवता

- ये पॉच हेतु मिलकर ही कर्म करते हैं कोई अकेला नहीं।
- शरीर, वाणी व मन से जो भी न्याय अथवा अन्याय पूर्वक कर्म होता है उन सब कर्मों के हेतु ये पॉच कारण हैं।

V 16 & 17 दुर्मति व सुमति की व्याख्या

दुर्मति – समस्त कर्मों के ये पॉच हेतु प्रकृति राज्य में हैं परन्तु जो अज्ञानी जन ऐसा न जानकर आत्मा को कर्ता-भोक्ता मानता है वह दुर्मति है और वह जन्म-मरण के बन्धन में पड़ जाता है।

सुमति – जो समस्त कर्म व उन कर्मों के पंच हेतुओं को प्रकृति राज्य में देखता है और स्वयं को आत्मा-द्रष्टा-साक्षी-अकर्ता-अभोक्ता जानता है वह ज्ञानी यथार्थ दर्शी सुमति है। उसकी बुद्धि कहीं लिप्त नहीं होती तथा संसार के सभी प्राणियों को मार कर भी वह पाप से नहीं बॅधता।

V 18 & 19 कर्म प्रेरक कौन है तथा कर्म संग्रह किनसे होता है

- **कर्म प्रेरक –** परिज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय हैं।
- **कर्म संग्रह –** कर्ता, करण, कर्म हैं।

V 20 - V 40 गुण मीमांसा

सत्त्व, राजस व तामस भेद से 6 विषयों की व्याख्या :–

1- ज्ञान
2- कर्म
3- कर्ता
4- बुद्धि
5- धृति
6- सुख

ज्ञान

सात्विक ज्ञान	–	जो सब शरीरों में एक अविनाशी सत्ता आत्मा को देखे – **अभेद दर्शन**
राजसिक ज्ञान	–	जो प्रत्येक शरीर में स्थित एक आत्मा को पृथक-2 देखे व राग-द्वेष करे – **भेद दर्शन**
तामसी ज्ञान	–	जो इस शरीर को आत्मा मानकर आसक्त रहते हैं। जो धन, प्रेम, सम्बन्ध, यश जैसे क्षुद्र विषय को सर्वस्व मानकर आसक्त रहते हैं।

कर्म

सात्विक कर्म – जो 'नियत कर्म' फलेच्छा, राग-द्वेष व कर्तव्य अभिमान से रहित होकर किया जाए।

राजसी कर्म – जो कर्मफल की इच्छा से अहंकार सहित किया जाए – यह कर्म परिश्रम, विक्षेप व चिन्ता देने वाला होता है।

तामसी कर्म – जो कर्म परिणाम व सामर्थ्य जाने बिना किया जाए व असावधानी एवं हिंसा युक्त हो तथा सबकी हानि करे।

कर्ता

सात्विक कर्ता – भगवान् का सेवक कर्मासक्ति-फलासक्ति रहित होने से उसका अहंकार शिथिल होता है तथा वह धैर्य एवं उत्याह से युक्त, सफलता-असफलता में सम एवं शान्त मन का होता है।

राजस कर्ता – जो कर्ता राग से पक्षपात व द्वेष के कारण शत्रुता करता है, फल की इच्छा वाला, लोभी व हिंसा युक्त अशुद्ध व्यवहार वाला है तथा पल में तुष्ट व पल में रुष्ट होता है।

तामसी कर्ता – असावधान, अकड़ वाला, कपटी, ज़िद्दी, कृतघ्न, आलसी, विषादी व थोड़े समय में होने वाले काम को बहुत समय में करने वाला।

बुद्धि

सात्विक बुद्धि – जो बुद्धि प्रवृत्ति-निवृत्ति, कार्य-अकार्य, भय-अभय के हेतु व बन्धन-मोक्ष को भली-भाँति जानती है।

राजसी बुद्धि – जो बुद्धि धर्म-अधर्म एवं कार्य-अकार्य का ठीक-2 निश्चय नहीं कर सके।

तामसी बुद्धि – जो बुद्धि धर्म को अधर्म व अधर्म को धर्म देखे अर्थात् विपरीत देखे जैसे हित को अहित व अहित को हित देखे।

धृति

सात्विक धृति – जो मन, इन्द्रिय व प्राणों की क्रिया को नियंत्रित कर चुने हुए लक्ष्य में लगाये, अनावश्यक क्षेत्र में न जाने दे। यह धृति आत्मनिष्ठ बनाती है।

राजसिक धृति – फल को चाहने वाला मनुष्य जिस धृति से धर्म, अर्थ, काम को अत्यन्त आसक्ति से धारण करता है, उसे इहलोक व परलोक के भोग प्राप्त होते हैं।

तामसी धृति – दुष्ट बुद्धि वाला जिस धृति से निद्रा, आलस्य, प्रमाद, भय, चिन्ता और विषाद को पकड़े रहता है छोड़ता नहीं, वह धृति तामस धृति है।

सुख

सात्विक सुख – सत्संग, भजन, ध्यान व आत्मचिन्तन सात्विक सुख है। प्रारम्भ में संसार में आसक्ति होने से ये विष-समान लगता है परन्तु बाद में ज्ञान-वैराग्य के परिपाक से यही सुख अमृत तुल्य होता है, यही प्रसाद सुख है।

राजस सुख – जो सुख प्रारम्भ में इन्द्रिय व विषय के संयोग से अमृत रूप लगता है वही परिणाम में विष तुल्य होकर 8 विषयों की हानि करता है :–
1- बल, 2- चरित्र, 3- रूप, 4- प्रज्ञा, 5- मेधा, 6- उत्साह, 7- धन, 8- समय

तामस सुख – निद्रा, आलस्य, प्रमाद व मादक पदार्थों से होने वाला सुख मनुष्य को मोहित करके उसका विनाश कर देता है।

V 41 - V 44 गुणों से छूटने का उपाय एवं वर्ण व्यवस्था

भगवान् कहते हैं इस संसार में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों का विभाग पूर्व जन्म के किये गुण व कर्मों के अनुसार स्वभाव से होता है। पूर्व जन्म के गुण व कर्मानुसार हमें नये जन्म में यह 10 विषय प्राप्त होते हैं :—

1-	देश	3-	कुल	5-	आयु	7-	जीविका	9-	सुख
2-	जाति	4-	धर्म	6-	ज्ञान	8-	धन	10-	मेधा

अत: अपने वर्णाश्रम के अनुसार नित्य कर्म करना ही गुणों से छूटने का उपाय है।

V 42 ब्राह्मण के कर्म - ये 9 गुण जिसमें प्रकट हों वे ब्राह्मण हैं।

1- मन का संयम (शम)
2- इन्द्रियों का संयम (दम)
3- धर्म पालन हेतु कष्ट सहना (तप)
4- शुद्धता (बाह्य व भीतरी शुचिता)
5- क्षमा
6- सरलता (आर्जवम्)
7- ज्ञानं
8- विज्ञानं
9- आस्तिक भाव (ईश्वर, वेद व गुरु में श्रद्धा)

V 43 क्षत्रिय के कर्म - ये 7 गुण जिसमें प्रकट हों वे क्षत्रिय हैं।

1- शूरवीरता
2- तेज
3- धैर्य
4- दक्षता - चतुरता
5- युद्ध में पीठ न दिखाना
6- दान देना
7- शासन करने का भाव

V 44 वैश्य कर्म – खेती करना, गायों की रक्षा करना व शुद्ध व्यापार करना।
शूद्र कर्म – तीनों वर्णों के मनुष्यों की सेवा करना।

V 45 - V 48 कर्मजा सिद्धि का वर्णन

अपने नियत वर्णाश्रम कर्म निष्काम भाव अर्थात् स्वार्थ त्याग कर भगवान् की प्रसन्नता के लिये करने से अन्त:करण की शुद्धि प्राप्त होती है, इसे ही **कर्मजा सिद्धि** अथवा **संसिद्धि** कहते हैं। अपना गुणरहित, रुचिरहित स्वधर्म भी दूसरे के गुणयुक्त परधर्म से श्रेष्ठ है क्योंकि स्वधर्म से वासना क्षय होकर चित्तशुद्धि होती है तथा परधर्म पालन से नई वासना का संचय होता है अत: स्वधर्म का कभी त्याग न करें। यह निष्काम भाव से किया हुआ स्वधर्म ही उपाय-रूप कर्मजा सिद्धि/संसिद्धि प्राप्त कराके उपेय-रूप **नैष्कर्म्य सिद्धि** अर्थात् **ज्ञान निष्ठा** (सॉख्य योग) प्राप्त कराता है।

V 49 - V 55 संन्यास (सॉख्य) योग – नैष्कर्म्य सिद्धि

कर्मों का दोष न लगे इसका उपाय है **सॉख्य योग**, ऐसा मनुष्य सॉख्य योग द्वारा ब्रह्म को आत्मा रूप से जानकर मुक्त होता है।

क्रम का वर्णन –

1-	संसिद्धि	–	कर्मजा सिद्धि	–	निष्काम भाव से स्वधर्म अनुष्ठान
2-	नैष्कर्म्य सिद्धि	–	सॉख्य योग	–	संन्यास पश्चात् ज्ञान निष्ठा
3-	परा निष्ठा	–	ब्रह्म की आत्मा रूप से प्राप्ति	–	स्वरूपावस्थान

V 51 - 53 ब्रह्मभूत होना – त्वं पद शोधन

लक्षण – सात्विक बुद्धि व धृति से युक्त, शब्दादि विषयों का त्याग, आवश्यक वस्तुओं में भी राग-द्वेष का त्याग, एकान्त में रहने का स्वभाव, सम्यक व हल्का भोजन करने वाला, वाणी-मन-शरीर का संयम करने वाला यति, नित्य आत्म चिन्तन करने वाला, वैराग्य आश्रित – लोक-परलोक के भोग की लालसा रहित।

छः वस्तुओं का त्याग – 1- अहंकार, 2- बल, 3- दर्प, 4- काम, 5- क्रोध, 6- परिग्रह

ऐसा अधिकारी ब्रह्मभूत कहलाता है, यह ब्रह्म प्राप्ति का अधिकारी है, इसने त्वं पद का शोधन किया है।

V 54 & 55 ब्रह्मभूत का ईश्वर की परम् भक्ति प्राप्त करना – तत् पद शोधन

यह ब्रह्मभूत परमात्मा की भक्ति प्राप्त करता है।

लक्षण – यह प्रसन्न मन वाला न तो किसी के लिये शोक करता है, न किसी की इच्छा करता है। सब प्राणियों में सम रहता है अर्थात् दूसरों के सुख-दुःख को अपने सुख-दुःख के समान समझता है।

पराभक्ति का लाभ – इस पराभक्ति को प्राप्त कर मेरी पहचान होती है। परिछिन्न आत्मा को अपरिछिन्न अधिष्ठान ब्रह्मरूप से जानता है, ईश्वर-जीव का भेद मिट जाता है और ब्रह्म साक्षात् अपरोक्ष द्रष्टा-साक्षी आत्मा के रूप में जाना जाता है। मुझे जानकर जीव तत्क्षण मेरा ही रूप हो जाता है – इसे ही चतुर्थ भक्ति कहते हैं।

V 56 - 58 संन्यास के अतिरिक्त ब्रह्म प्राप्ति का उपाय – राजविद्या

जो अनन्य भाव से शरणागत होकर मेरा आश्रय लेकर सर्व कर्म मेरे लिये ही करता है उसको मेरे प्रसाद से (1) योग-क्षेम (2) सत्संग (3) गुरु सानिध्य (4) ज्ञान प्राप्ति करा कर सब सुखपूर्वक अनायास रूप से अपना परम अविनाशी पद प्राप्त कराता हूँ। अतः केवल मेरे परायण होकर सर्व कर्मों को मन से मुझे अर्पण कर दे अर्थात् सर्व कर्मों व पदार्थों से अपनापन व ममता हटा ले और समबुद्धि होकर निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो जा।

- **भगवत् चिन्तन का लाभ** – दुर्गम संसार से तर जाता है।
- **मनमानी करने से हानि** – जो स्वयं को पंडित मानकर उपदेश ग्रहण नहीं करता उसका पतन हो जाता है, उसका विनाश निश्चित है।

V 59 - 62 जीव की परवशता की व्याख्या

भगवान् कहते हैं कि मोहवश जो तू यह कह रहा है कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा' तो प्रकृति तेरे क्षात्र स्वभाव के अनुसार तुझे बलात् युद्ध में लगा देगी क्योंकि सब प्राणियों के हृदय में स्थित मैं अन्तर्यामी ईश्वर अपनी माया शक्ति से सभी प्राणियों को कठपुतली की तरह उनके स्वभाव के अनुसार भ्रमण कराता हूँ। इस परवशता से निकलने का उपाय है मुझ अन्तर्यामी ईश्वर की शरण लेना, तब मेरी कृपा से जीव मेरा परम शान्त व शाश्वत परम धाम प्राप्त करता है।

V 63 उपदेश का उपसंहार

हे अर्जुन! मैंने गोपनीय से भी गोपनीय ज्ञान तुम्हें संनाया, यह ज्ञान गुरु-शिष्य परम्परा से ही प्राप्त होता है। परन्तु यदि यह ज्ञान श्रवण मात्र से नहीं हुआ तो पुनः पुनः विचार

अर्थात् **मनन** करो तथा संसार में सत्-बुद्धि व सुख-बुद्धि को हटाने के लिये पुनः पुनः विचार अर्थात् **निदिध्यासन** करो।

V 64 & 65 भगवान् की आज्ञा एवं प्रतिज्ञा

अर्जुन को अपना प्रिय भक्त जानकर भगवान् ने गीता के सार को पुनः सुनने की आज्ञा दी एवं परम गुह्यतम् वचन कहे और सत्य प्रतिज्ञा की।

सत्य प्रतिज्ञा – 'मन्मना' - तू मुझमें मन वाला हो, **मद्भक्तः** - मेरा ही भक्त हो, **मद्याजी** - मेरे लिये ही कर्म करने वाला हो, **माम् नमस्कुरु** - मेरे में ही महत् बुद्धि वाला हो। ऐसा होने पर तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है क्योंकि तू मुझे अत्यन्त प्रिय है।

V 66 द्वितीय अध्याय के प्रतिज्ञा वाक्य V 11 का उपसंहार

सम्पूर्ण धर्म अर्थात् सभी शुभ - अशुभ कर्म व उनके फलों को मुझमें समर्पित कर दे अर्थात् उनसे अपनापन और मेरापन हटा ले, सब कुछ मेरा सेवक बनकर कर। तू मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की शरण में आ जा, मैं तुझे सर्व पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

भक्त दृष्टि – सब परमात्मा है, यह विश्व भगवान् का विराट रूप है।
वेदान्त दृष्टि – मुझ अद्वय चिन्मय सत्ता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, वही माया से ईश्वर-जीव-जगत रूप में भासता है।

सम्प्रदाय विधि का वर्णन

V 67 – V 71

V 67 उपदेश किससे न कहा जाए

1. तप रहित
2. अभक्त
3. न सुनने की इच्छा वाले
4. भगवान् में दोष दृष्टि रखने वाले

V 68 & 69 वक्ता को फल

जो इस गीताशास्त्र को भक्ति कर्म मान कर श्रद्धालु भक्तों को सुनाएगा वह मुझे ही प्राप्त होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। मेरा उससे बढ़कर प्रिय कोई नहीं है।

V 70 गीताजी के पठन का फल

जो इस कृष्णार्जुन सम्वाद को पढ़ेगा उसके द्वारा मैं ज्ञान यज्ञ से पूजित होऊँगा।

V 71 गीताजी के श्रवण का फल

जो श्रद्धालु, दोषरहित मनुष्य गीताजी का श्रवण करता है वह पुण्य लोकों को प्राप्त होता हे तो अर्थ समझने वालों की तो बात ही क्या है।

V 72 भगवान् का अर्जुन से प्रश्न

- हे अर्जुन! तुम्हें यह गीता शास्त्र समझ में आया कि नहीं?
- क्या तुम्हारे अज्ञानजनित मोह का नाश हुआ जिसके लिये मैंने सुनाने का और तुमने सुनने का परिश्रम किया?

V 73 उपदेश की फल श्रुति

नष्टो मोह - मेरा अज्ञान जनित मोह नष्ट हुआ जो समस्त संसार रूपी अनर्थ का हेतु है।

स्मृतिर्लब्धा - आपकी कृपा से मैंने ब्रह्म को साक्षात् आत्मा **'मैं'** रूप में जाना है।

गत सन्देहः - अब मैं सन्देह रहित हूँ।

करिष्ये वचनं तव - अब मेरा कोई कर्तव्य नहीं क्योंकि कुछ भी प्राप्तव्य नहीं। अब इस शरीर रूपी संघात से वही होगा जो आपकी आज्ञा होगी।

श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद की महिमा

V 74 – V 78

यह अत्यन्त गोपनीय संवाद संजय ने साक्षात् योगेश्वर श्रीकृष्ण के मुख से सुना जिसे सुनकर वे अत्यन्त हर्षित हुए व भगवान् के विराट स्वरूप को स्मरण करके अत्यन्त विस्मित व पुलकित हुए।

संजय का निर्णय – जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनका योग है तथा धनुर्धर पार्थ रूपी उद्यमी जीव है जो तत्त्व का अनुसंधान कर रहा है, वहाँ यह 4 चीज़ें अवश्य हैं यह मेरा निश्चय है।

1. **श्री - समृद्धि** – a) भौतिक b) आध्यात्मिक
2. **विजय** – धर्म की अधर्म पर एवं ज्ञान की अज्ञान पर विजय
3. **भूति** – विकासोन्मुखी समृद्धि
4. **ध्रुव नीति** – उच्च व पवित्र विचार, मान्यता व सिद्धान्त

।। इति ।।

—०००—

श्रीमद्भगवद्गीता में सम्बोधन

Verse No.	Chapter-18	भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बोधन
1	महाबाहो	महाबलशाली
1	हृषिकेश	इन्द्रियों के स्वामी, अन्तर्यामी, सर्वज्ञ
1	केशिनिषूदन	वासुदेव
74	वासुदेव	सर्वव्यापी चेतन तत्त्व – सच्चिदानंद ब्रह्म, वसुदेवजी के पुत्र
75	योगेश्वरात्कृष्णा	योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण
76	केशव	केशि असुर को मारने वाले, लम्बे सुन्दर वालों वाले विष्णु
77	हरेः	श्रीहरि! जिनके स्मरण करने से पापों का नाश होता है
78	कृष्णो	नित्य सत्ता, चुम्बक

Verse No.	Chapter-18	अर्जुन के सम्बोधन
4	भरतसत्तम	भरतवंश में सर्वोत्तम
9, 34, 61, 76	अर्जुन	असीम् पुण्यों को अर्जित करने वाला, सरल स्वभाव वाला
13	महाबाहो	महाबलशाली
29, 72	धनंजय	अग्नि के समान तेजस्वी एवं उत्साह व पौरुष का त्याग न करने वाला
30, 31, 32, 33, 34, 35, 74, 78	पार्थ	पृथा (कुन्ती) का पुत्र, प्रेम का सम्बोधन
36	भरतर्षभ	भरतवंश में उत्तम
41	परन्तप	शत्रु को तपाने वाला
62	भारत	ज्ञान में रति/प्रीति रखने वाला, महाराज भरत का वंशज
78	धनुर्धरः	गाण्डीव धनुष धारण करने वाला

कुल श्लोक	संजय	अर्जुन	श्रीकृष्ण
78	5	2	71

ओ३म् तत् सत्

—०००—

सरस्वती स्तुति

*** अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपंचकम्, आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ***

अस्ति, भाति, प्रिय, रूप और नाम ये पाँच अंश हैं। इसमें पहले तीन अंश ब्रह्मरूप हैं और शेष दो अंश जगद्रूप हैं।

चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम, मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥ १ ॥

ब्रह्माजी के मुखरूपी कमलों के वन में विचरने वाली जो राजहंसी हैं वे सब ओर से श्वेत कांति वाली सरस्वती देवी हमारे मनरूपी मानस में नित्य विहार करें।

नमस्ते शारदे देवि काश्मीरपुरवासिनी, त्वामहं प्रार्थये नित्यं विद्यादानं च देहि मे ॥ २ ॥

हे कश्मीरपुर में निवास करने वाली शारदा देवी! तुम्हें नमस्कार है। मैं नित्य तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ, मुझे योग्य विद्या प्रदान करें।

अक्षसूत्रांकुशधरा पाशपुस्तकधारिणी, मुक्ताहारसमायुक्ता वाचि तिष्ठतु मे सदा ॥ ३ ॥

अपने चार हाथों में अक्षसूत्र, अंकुश, पाश और पुस्तक धारण करने वाली तथा मुक्ताहार से सुशोभित सरस्वती देवी मेरी वाणी में सदा निवास करें।

कम्बुकण्ठी सुताम्रोष्ठी सर्वाभरणभूषिता, महासरस्वती देवी जिह्वाग्रे संनिविश्यताम् ॥ ४ ॥

शंख के समान सुन्दर कण्ठ एवं सुन्दर लाल ओठों वाली सब प्रकार से आभूषणों से विभूषिता महासरस्वती देवी मेरी जिह्वा के अग्रभाग में सुखपूर्वक विराजमान हों।

या श्रद्धा धारणा मेधा वाग्देवी विधिवल्लभा, भक्तजिह्वाग्रसद्ना शमादिगुणदायिनी ॥ ५ ॥

श्रद्धा, धारणा और मेधा स्वरूपा ब्रह्माजी की प्रियतमा सरस्वती देवी भक्तों के जिह्वाग्र में निवास कर शम-दमादि संयम को प्रदान करती हैं।

नमामि यामिनीनाथलेखालंकृतकुन्तलाम्, भवानीं भवसन्तापनिर्वापणसुधानदीम् ॥ ६ ॥

जिनकी बालों की लटें चन्द्रकला से अलंकृत हैं तथा जो भवसंताप को शमन करने वाली सुधा नदी हैं उन सरस्वती रूपा भवानी को मैं नमस्कार करता हूँ।

यः कवित्वं निरातंकं भक्तिमुक्ती च वांछति, सोऽभ्यैर्च्यैनां दशश्लोक्या नित्यं स्तौति सरस्वतीम् ॥ ७ ॥

जो दोष रहित कवित्व का उपहार पाना चाहते हैं, जो भक्ति और मुक्ति के अभिलाषी हैं वे इन दस श्लोकों से सरस्वती माँ की स्तुति करें।

तस्यैवं स्तुवतो नित्यं समभ्यर्च्य सरस्वतीम्, भक्तिश्रद्धाभियुक्तस्य षण्मासात्प्रत्ययो भवेत् ॥ ८ ॥

जो इस प्रकार समर्पण एवं विश्वास सहित सदैव सरस्वती माँ की स्तुति करता है वह छः महीनों में सिद्धि प्राप्त कर लेता है माने उसे सरस्वती का प्रत्यक्ष होता है।

ततः प्रवर्तते वाणी स्वेच्छया ललिताक्षरा, गद्यपद्यात्मकैः शब्दैरप्रमेयैर्विवक्षितैः ॥ ९ ॥

वह जो बोलना चाहता है उसकी वाणी ललित शब्दों में प्रकट होती है तथा इच्छानुसार गद्य अथवा पद्य में अभिव्यक्त करने की क्षमता आ जाती है।

अश्रुतो बुध्यते ग्रन्थः प्रायः सारस्वतः कविः, इत्येवं निश्चयं विप्राः सा होवाच सरस्वती ॥ १० ॥

ऐसे सरस्वती भक्त को बिना सुना हुआ ग्रन्थ भी सुना हुआ हो जाता है माने उसका भी ज्ञान हो जाता है, ऐसी सरस्वती देवी की महिमा है।

मयि जीवत्वमीशत्वं कल्पितं वस्तुतो नहि, इति यस्तु विजानाति सनेछन्नपि मुच्यते ॥ ११ ॥
/ इति यस्तु विजानाति स मुक्तो नात्र संशयः ॥

मुझ में जो भी कोई जीवत्व अथवा ईश्वरत्व दिखाई पड़ता है वह तो कल्पित ही है। वस्तुतः जीवत्व अथवा ईश्वरत्व मेरे में है ही नहीं, इस तरह जो जानता है वह मुक्त ही है उसमें संशय नहीं।

अभेद दर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः, स्नानं मनोमल त्यागः शौच इन्द्रिय निग्रह ॥ १२ ॥

आत्म रूप से ब्रह्म को जानना ही अभेद दर्शन है, मन का निरोध ही ध्यान है, राग-द्वेष का त्याग ही स्नान है तथा इन्द्रिय संयम ही शौच है।

-000-

बीज मंत्र — उँ ऐं ह्रीं क्लीं श्री सरस्वत्यै नमः